श्री गिरधर वचनामृत

भाग २

संकलनकर्ता
चन्द्रशेखर श्रोत्रिय

प्रकाशक
शिव मुद्रण एवं प्रकाशन सहकारी समिति लि.
शिवसदन, काशीपुरी, भीलवाड़ा

प्रकाशक
शिवमुद्रण एव प्रकाशन सहकारी समिति
शिवसदन, काशीपुरी भीलवाडा (राज०)

प्रथम सस्करण
गुरु पौणिमा १९८३
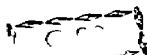
मूल्य
२5०० रुपिया

मुद्रक
शिवशक्ति प्रेस प्रा लि
वैद्यनाथ भवन
ग्रेट नाग राड, नागपुर-९

Shri Giridhar Vachanamrit Part-II
Edited by Chandrashekhar Shrotriya

निवेदन

नीति का एक वाक्य है :–

"साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव केवलम्"

'पढ़े लिखे व्यक्ति यदि गलत मार्ग पर चलने लग जाय तो राक्षस हो जाते हैं।' आज की नैतिकता रहित शिक्षा में कैसा समाज बन रहा है, इसे सब जानते हैं। जो अधिक शिक्षित है, वह उतना ही अधिक अनैतिकता की ओर दौड़ रहा है। भाई भाई को मार रहा है, माता-पिता का सम्मान न करना जैसे उन्नत होने की पहचान हो; चरित्र तो अब केवल पुस्तकों में लिखा रह गया है। भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, जीवन के अंग बन गये हैं। कोई स्थान ऐसा नही, जहाँ जीवन का वास्तविक स्वरूप दिखाई दे। ऐसे मे, सन्तो, महापुरुषो का सग, मार्गदर्शन करता है, पतितो का उद्धार करता है, भूलो हुओं को मार्ग बताता है। पर जो व्यक्ति सत्संग नही कर पाते, समय पर उपस्थित होने का अवसर न पाकर लाभान्वित नही हो पाते, उनको मार्गदर्शन कैसे मिले? प्रत्यक्ष सत्सग मे लाभान्वित न हो पाने के कारण वे प्रकाश से वञ्चित क्यो रह जाएँ? इसी बात को ध्यान में रखकर यह संकलन 'गिरधर वचनामृत' लिखना प्रारम्भ किया था। प्रथम भाग को लोगों ने खूब पसन्द किया। कई लोगों ने सकलन कर्ता को धन्यवाद देकर प्रोत्साहित भी किया। कतिपय आलोचनाएँ भी आयी, पर स्पष्टीकरण पर वस्तुस्थिति समझ कर साधुजनोचित प्रतिक्रिया भी हुई। इसी से प्रोत्साहित होकर यह दूसरा भाग लिखने का उपक्रम किया गया।

सन्त तो सन्त ही हैं, बहुत सी बातें वे ऐसी कह देते हैं जो समझ मे नही आ पाती। कही कही ऐसा लगता है जैसे विरोधाभास हो। शायद कही कुछ कटुता भी प्रतीत हो। पर सन्त वचन अमृत हैं। वे सदा ग्राह्य हैं, उन्हे व्यवहार में लेने पर ही लाभ है। दवा को मात्र देखते रहने से लाभ नही होता, उसे सेवन करना पडता है, जीवन में उतारना पड़ता है। कटुता या विरोधाभास भी मात्र प्रतीत हो सकते हैं। कही भी कटुता नही, मात्र कुनैन का कड़ुआपन हो सकता हैं। समझ के भेद से कही विरोधाभास लग सकता है। कही कहीं अर्थ गाम्भीर्य भी विरोधाभास की प्रतीति करवा सकता है। थोड़ा ध्यान से विचार करने से बात स्पष्ट हो जाती है। पर प्रश्न यह है कि ऐसा गाम्भीर्य क्यो रखा गया, बात सीधी सादी भाषा में क्यो नही कही गई? इस विषय मे निवेदन है कि जब तक श्रोता सामान्य रूप से सुनता रहेगा बात अन्तःकरण

तक नहीं पहुँचेगी, गहराई में नहीं जा पाएगी, ऊपर सतह पर रह जायेगी। पर यदि बात कुछ समझ मे नही आई, तो श्रोता बुद्धि लडायेगा, कुछ जोर लगाएगा और बात कुछ गहराई म पहुँचेगी। इसी पुस्तक का उद्धरण ले लें 'ज्ञान अथाह है, उसका पार नही, ज्ञान प्राप्त करते करते दिन बढ़ गया तो जीवन ही व्यर्थ गया।' इसमे 'दिन बढ़ गया' तत्काल श्रोता को समझ मे नही आया। इसके पूर्व तक प्रवचन म कोई श्रोता सामान्य स्तर तक रहा, वह मात्र प्रवचन सुन रहा था। वैसे ही जैसे हम बाजार मे निकले और पचासो वस्तुओं मनुष्यो पर हमारी दृष्टी तो पड़ पर हमारा पूरा ध्यान उधर न जाए। और अकस्मात कुछ ऐसी बात हमारे सामने आए जो तत्काल हमारा ध्यान अपनी ओर खींच ले। प्रवचन को सुनते सुनते अकस्मात् एसी बात श्रोता को सुनाई पडी जिसे उसने नही समझा और तत्काल उसका मन प्रवचन की ओर दौड़ा। यह एक श्रोता की बात हुई। इसस कुछ गहराई में कोई श्रोता प्रवचन सुन रहा है, श्रद्धावान है, मन भी लग रहा है प्रवचन मे। एक प्रवाह सा बन गया है, प्रवचन मे प्रस्तुत किये जा रहे विषय का। मन उस प्रवाह के साथ बह रहा है, डुबकी नही लगा रहा। अकस्मात ऐसा शब्द आया जो उसके समझ में नहीं आया। तत्काल मन की भूमिका बदली, लगाम बुद्धि के हाथ में आयी और शब्द पर गहराई से विचार हुआ। समझ म नही आया तो और शक्ति लगी, बुद्धि, मन की सारी शक्तियाँ केन्द्रित हुई। अब श्रोता ने अर्थ निकाला, कोई यात्री कहीं जा रहा है, मार्ग बियाबान है, बीच बीच मे कुछ दर्शनीय स्थल आ गये हैं, उन्हें देखता, समझता, मार्ग पहचानता चला जा रहा है। जो भी मार्ग सम्बन्धी कोई स्थान है, उसे बारीकी से देखता है। वह यह जानता है कि अभी गन्तव्य स्थान दूर है। पर मार्ग की गरिमा तथा यह विश्वास कि मार्ग सही है तथा श्रेष्ठ है उसे उलझाएँ रखते हैं। अब 'दिन बढ़ गया' सूर्यास्त हो गया। अब वह उस मार्ग के ज्ञान से क्या लाभ उठाएँ? गन्तव्य स्थान पर पहुँच बिना निस्तार नही और पहुँचना असम्भव हो गया। ऐसी ही अवस्था ज्ञान मार्ग की है। ठिकाने तक, प्रभु तक, पहुँचना असम्भव नही है ज्ञान मार्ग स। पर समय थोड़ा है, सूर्यास्त समीप है, जीवन वेला समाप्त होन को है। ज्ञान अनन्त है उसे प्राप्त किये बिना ठिकाना नहीं मिलता। समयाभाव बाधा है। यें या इसी आशय को अन्य बाते श्रोता सोच लेता है यहां सोचने से मतलब सारी बात एक क्षण में, क्षण म ही क्या, क्षणार्ध से भी कम समय में श्रोता के मस्तिष्क में कौंध जाती हैं। अब श्रोता का मन, बुद्धि भी साथ मे केन्द्रित हो गयी, उसकी भूमिका, जो अब तक सतह ही थी, गहराई म जा पहुँची, अब डुबकी *लगाने लगा और यहो अभीष्ट था वक्ता को। सीधी सादी भाषा म कहने के* लिए वक्ता को इतनी भारी बात स्पष्ट करनी पड़ती फिर भी चूंकी श्रोता सामान्य स्तर मे था, उसके यहाँ बात आयी गई हो जाती। भविष्य में भी, मनन करते समय भी, वह सामान्य ही रहती।

इसी तरह का एक अन्य उद्धरण- - 'इस गाडी का कोई मूल्य नही। इसमे रखे सामान का मूल्य है, अत इन गाडियो मे जो वस्तुएं हैं वे ही तो प्रमुख हैं और मूल्यवान है। अब गाडी सामान, वस्तुएं पदों पर विचारिये। ये सामान गाडी, सामान या वस्तुएं होती तो वहाँ सार्थक हो जाते पर बातचीत मे जिस प्रसग मे ये शब्द प्रयुक्त किये गए, निश्चित रूप से वहाँ गाडी या सामान जैसे पद अभिधा के अर्थ म सार्थक नही लगते और तत्काल श्रोता को कुछ सोचने का विवश कर देते हैं। और ज्या ही श्रोता ने बुद्धि को कसमसाया मन की भूमिका बदली। अब श्रोता गम्भीर से गम्भीरतम की ओर बढ़ चला यही तो है वक्ता का वक्तृत्व।

'वक्तुरेव हि तज्जाड्य श्रोता यत्र न वर्तते।' इसमें वक्ता का ही अपराध है, यदि श्रोता एकाग्र होकर नही सुन रहा है। सन्त तो फिर सन्त ही हैं। किस प्रकार के श्रोता को वे कह रहे है, उसका मनोयोग श्रवण मे कितना है, उसे कैसे मार्ग मे लाया जाए यह सब वे खूब अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है, यदि सन्त प्रवचन कर रहे हैं और श्रोता सुन कर भी, ध्यान से समझ कर भी अपने मलिन अतीत से छुटकारा पाकर उज्ज्वल भविष्य की ओर क्यो नही बढता ? एक गन्दा, बहुत गन्दा वस्त्र है, हम उसे साबुन लगाते है, उसे निर्मल करने को एक बार साबुन लगाया, धोकर देखा, कितना साफ हुआ। देखा अभी मैल है, फिर साबुन लगाया, मैल बहुत गहरा है, खूब धोया, कूटा पीटा, साफ कर देखा अभी भी गन्दा है। फिर साबुन लगाया अच्छी तरह मसला कर साफ किया, फिर भी जैसा खरीदा गया था वैसा नही हुआ, साचा अभी सुखा देते हैं फिर धोकर कुछ टिनापाल आदि लगाकर साफ करेंगे। अब यह तो हुई बात निर्जीव वस्तु की, जिसे आपने अपने हाथ से अलग नही होने दिया। चेतन मनुष्य एक बार सत्सग साबुन के सपर्क म आया, वहाँ से उठकर फिर उसी भवाब्धि पक म जा पड़ा। कालुष्य को साफ करने की फिर उत्कण्ठा हुई, फिर सन्त समागम रूपी साबुन के सम्पर्क मे आया, पर कुछ देर बाद वही कालुष्य का सम्पर्क ! अब हम कहे "हम इतनी बार सन्त सत्सग मे आए, पर हमारा मन निर्मल नही हुआ, हमको आत्म प्रत्यक्ष नही हुआ। अरे ! हम उन महान सन्तो के सत्सग मे गए थे पर फिर भी हम जैसे के तैसे।" ये विचार उसी मन मे उठने हैं जो सन्त साबुन के सम्पर्क मे आ चुका है।

इच्छा तो जागृत हुई है, यद्यपि अभी गन्दगी से छुटकारा नही मिला। अब नियमित रूप से मन को ऐसे साबुन के सम्पर्क म लाइए और थोडा गन्दगी से बचकर चलिए। गन्दगी में फर्राटे मे चलती मोटरो से थोड़ा दूर रहिए। जरा सतर्क रहिए आप निर्मल हो जाएगें। मन शुद्ध हो जाएगा। मन शुद्ध हो जाएगा, पर कब ? जब आप कई बार साबुन से इसे धो लेंगे और दुबारा गन्दगा

में नहीं लिपटेंगे, अन्यथा एक बार साबुन लगाया फिर गन्दगी में गिर पड़े तो सफाई नहीं होनेवाली, चाहे आप युगों युगों तक ऐसा करते रहे। ध्यान रहे, साबुन को दोष देने के पहले देखिए कि आपने अपना वस्त्र कितना गन्दा कर रखा है और उसे फिर गन्दगी से कितना दूर रखते हैं।

इस पुस्तक के विषय मे कुछ लिखा जाना, इससे पहले सद्‌गुरू श्री दाता के विषय मे कुछ लिखना चाहिए था क्योंकि जब तक वक्ता के बारे में विशेष ज्ञान न हो तब तक श्रोता पूर्ण रुचि प्रदर्शित नहीं कर पाता, और उन प्रवचनों के संग्रह को पाठक तभी पढेगा जब उसे प्रवचनकार का ज्ञान हो। श्री गिरधर वचनामृत भाग एक में इनके विषय मे कुछ विवरण दिया गया है जिससे पाठकों को अवश्य जानकारी हुई होगी। इस विषय में यहाँ एक सत्य घटना लिख देना उपयुक्त रहेगा। सन १९६२ या १९६३ के गुरुपूर्णिमा उत्सव की बात है। एक व्यक्ति अपने मित्र के साथ पुष्कर गए थे। संयोग से वे दोनो वहाँ पहुँच गये जहाँ श्री दाता विराज रहे थे। आध्यात्मिक विषय पर गहन चर्चा हो रही थी। विषय का गहन विवेचन सुनकर वे दोनों प्रभावित हुए। शिष्यवर्ग से सम्पर्क से उन्हें ज्ञात हुआ कि भक्त लोग इन्हे भगवान् या दाता के नाम से सबोधित करते हैं। कुछ समय बाद दोनो मित्र बाहर निकले। परस्पर वार्तालाप में एक मित्र ने कहा, "मैं इन्हें परमात्मा मानने को तैयार नहीं; हां ये महात्मा जरूर है।"

कुछ समय इधर उधर घूम कर जब वे दोनों वापिस वहाँ पहुँचे जहाँ श्री दाता विराजे हुए थे। श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी, जो राजस्थान के जाने माने शिक्षाविद एवं मनिषी है, श्री दाता के दर्शन करने आए। कुछ देर बाद श्री दाता ने जोशी से प्रश्न किया 'जोशीजी आप यह बताओ कि महात्मा और परमात्मा में बडा कौन ?" यह सुन कर वे मित्र आश्चर्य चकित रह गए कि जो बात बिल्कुल एकान्त में की थी, श्री दाता उसे कैसे जान गए ? जरूर ये ऊँचे सन्त हैं। श्री दाता में उनको श्रद्धा उत्पन्न हुई। पर चूँकी ये दोनो अच्छे पढे लिखे है, तर्क ने उनकी श्रद्धा को छिन्न भिन्न कर दिया बात आयी गयी हो गई। उन दोनो मे से एक मित्र जिन्हें हम श्री 'क' से अभिहित करेंगे, पूजा में विश्वास नहीं करते हैं, किसी कार्यवश एक बार अजमेर गए, वहाँ सायंकाल घूमने निकले तो हनुमान टेकरी पर पहुँच गये। भक्त लोग प्रणामादि कर रहे थे पर पर वे वहाँ दर्शक की तरह इधर उधर घूमते रहे। वहीं उन्होंने कुछ व्यक्तियों को बाते करते सुना कि श्री दाता पधारे हैं। जहाँ से श्री दाता के ठहरने के स्थान का मालूम कर के वहाँ पहुँच गए जहाँ श्री दाता विराज हुए थे। संयोग की बात, श्री दाता ने डाक्टरों एवं उपस्थित अन्य व्यक्तियों से कहा, 'देखो इतना' बडी महर है ! यह कहकर श्री दाता ध्यानस्थ हो गए।

सभी लोग श्री दाता के शरीर पर दृष्टि टिकाए उन्हें देखने लगे। श्री 'क' भी श्री दाता के शरीर पर दृष्टि टिकाए उन्हें देखने लगे। उनके लिए इस प्रकार किसी शरीर को यो देखना कोई महत्वपूर्ण बात नही थी। पर हुआ कुछ विचित्र ही। उन्होने देखा कि श्री दाता के शरीर की आकृति बदल रही है। उन्हें अचरज हुआ और गभीरता से देखने लगे। अब वहाँ श्री दाता के स्थान पर श्री हनुमान जी विराजे हुए थे। वे आँखे फाड फाड कर देखने लगे, "ऐसा कैसे हो सकता है। कही दृष्टि भ्रम तो नही, मुझे स्वप्न तो नही हो रहा है।" उन्होने अपने शरीर मे नाखून चुभाकर तसल्ली की कि वे जागृत अवस्था मे तो हैं ? वे सोचने लगे कि ऐसा कैसे हो सकता है ? बुद्धि और आँखें सभी उन्हें मानो कुछ आश्चर्य दिलाने को एक हो गये थे। उन्होने हनुमान जी को देखा। कुछ देर बाद श्री दाता बहिर्मुख हुए। सभी अपने अपने अनुभव बताने लगे। पर अब तक आर्य समाजी विचारधारा के श्री 'क' इतना साहस भी नहीं जुटा पाए कि जैसा देखा वैसा कह सकते।

प्रस्तुत पुस्तक में दर्शन शास्त्र का सरलतम विधि से सूक्ष्म विवेचन हुआ है। इसमे हमे गीता और अनेक उपनिषदो का सार देखने को मिलता है। भक्ति या समर्पण का सहारा लेकर मैं 'को तू' से एकाकार करना आदि शकराचार्य के अद्वैत की ओर ले जाता है। योगश्चित्तवृत्ति निरोध' योग दर्शन के इस सूत्र के अनुसार सारी चित्तवृत्तियाँ उस 'तू' की ओर मोडना ही श्री दाता को अभीष्ट है। मन और जल नीचे की ओर ही चलते हैं। इन्हे प्रयत्न से ही, शक्ति लगा कर ऊँचा उठाया जा सकता है। कर्म ही मुख्य है। 'माते सगोऽस्त्व कर्मणि' हे अर्जुन! अकर्म के सम्पर्क मे मत आओ।' गीता का यह उपदेश ही प्रवचन का आधार हैं, नींव है। इसी नीव पर चित्तवृत्तियो के निरोध रूपी महल मे तूं' से 'मैं' का मिलन करवाने का, शकराचार्य के अनुसार अद्वैत को 'एकमद्वितीय ब्रह्म' को प्रतिष्ठित करवाना प्रवचनकार को अभीष्ट है।

सन्त के पास सभी प्रकार के श्रोता आते हैं। कुछ उच्च शिक्षा सपन्न, कुछ पूर्णतया अशिक्षित। अब सबको समझ मे आए, इसलिये कभी कभी सरल देहाती भाषा मे, मेवाडी भाषा मे शब्द बोलने पडते है अत शुद्ध हिन्दी जानने वालो को कुछ असुविधा हो सकती हैं, पर प्रसगानुसार, आशय तो सब समझ सकते हैं। अत ऐसे शब्दो को यथावत् रख देना पडा है। पाठक इस असुविधा के लिए क्षमा करेंगे।

इस पुस्तक के प्रथम भाग मे दो वर्ष अर्थात् सन् ७८ एव ७९ के प्रवचनो का सग्रह है और इस दूसर भाग में ८० एव ८१ इन दो वर्षों का। उसमें भी जब जब सकलन कर्ता श्री दाता के चरणो के समीप रहा उस समय के प्रवचनो

का ही सकलन हुआ है। यो तो प्रवचन प्रतिदिन ही होते रहते हैं। जब भी उत्तम पात्र सामने आया कि अमृत बरसने लग जाता है पर सकलनकर्ता दूर रहता है। जब भी उसे समीप जाने का अवसर मिलता है, तभी वह कुछ एकत्रित कर पाता है। इसीलिये इसमे दिनांक लिखे गये हैं। ये प्रवचन तो उस महा समुद्र की कुछ ही बून्दें है।

सकलित प्रवचनो मे भी कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि पुनरावृत्ति हो रही है किन्तु यह तो प्रश्नकर्ता के प्रश्नो पर आश्रित है। जब प्रश्न एक ही विषय को लेकर किये जाए तो कुछ न कुछ तो दुबारा आ ही जाएगा। श्रोता भी सदा एक ही हो तब तो यह समव है कि पुनरावृत्ति न हो, पर श्रोता जब भिन्न भिन्न है और सभी एक ही विषय को, परमात्मा तत्व सम्बन्धी विषय को जानने को प्रश्न करे तब यह सभव है कि उत्तर मे पुनरावृत्ति हो। इसलिये इसे पुनरावृत्ति न समझा जाए। क्योंकि गन्दगी को साफ करने के लिए एक बार दो बार, कई बार साबुन लगाना पडता है। और वही साबुन लगाना पडता है, उसे हम पुनरावृत्ति होते हुए भी आवश्यक जान, लगाते हैं। ऐसा ही इसमे भी समझना चाहिये।

पुस्तक के सम्पादन मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से जिन सज्जनों ने सहयोग दिया, मैं उनका अन्तरात्मा से आभारी हूँ।

दासानुदास
चन्द्रशेखर श्रोत्रिय

विषय सूची

श्री गिरधर वचनामृत

भाग २

श्री गिरधरवचनामृत

भाग २

वन्दनाष्टक

त्वमेको देवाना विधिहरि शिवाना समुदय,
तदेक दत्त त्वामिह शरणमासाद्य सुधियः ।
लभन्ते विश्वात्मन् जगति सुर दुर्लंध्य पदवीम्,
जयन्त्यायुक्तास्ते उभयमपि लोक च स सुखम् ॥१॥

भावार्थ- हे दाता ! आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं, दत्तात्रेय रूप आपकी शरण प्राप्तकर समझदार व्यक्ति ससार में देवो से अप्राप्य पद प्राप्त कर लेते हैं और आसानी से दोनो लोको को पार कर लेते हैं ।

पटोयष्टिर्वेणुस्तववरद पूर्वोपकरणाः ।
तथा गोपालत्व समधि गतवान् द्वापर इव ॥
अर्थतान् ते भक्तान अवसि सकलान् पूर्ववदिह् ।
पर गीता योग वदसि सकलान् नैक मिति किम् ॥२॥

भावार्थ- हे दाता ! वस्त्रखण्ड, लकडी तथा वेणु ये तीन ही तुम्हारे उपकरण हे जो द्वापर मे थे, उस समय के समान अब भी गोपाल हो । तथा वैसे ही अपने भक्तो की रक्षा भी करते हो और सभी बाते तो आपकी द्वापर वाले रूप की तरह ही हैं, केवल एक बात भिन्न है । तब गीता ज्ञान केवल एक को दिया था पर अब आप गीता ज्ञान सभी को देते रहते हो । ऐसा क्यो है ?

अथ योग साख्य यदिदमहि वेदान्त मघहृत्,
पृथक्त्व स्वस्वंते शरण मिव ते प्राप्य मिलिता ।
लक्षन्त्यस्या वाण्यामति परमतत्व कलयितुम्,
त्वदीये य सृष्टि र्भवतुन कथवा तव वशे ॥३॥

भावार्थ– हे दाता ! योग सांख्य एवं वेदान्त जो प्रत्यक्षतः पृथक पृथक बात बताते है आपकी शरण में आकर मानो एक हो गए। आपकी वाणी में इन तीनो का एक ही आशय प्रभु पाणिनरूप एक ही ज्ञान स्पष्ट दिखाई देने लगता है। और फिर एसा क्यो न हो, यह सब आपकी ही तो सृष्टि है फिर आपके आदेशानुसार क्यो न चले।

प्रकृत्या पूर्णं त्व सृजसि भगवन विश्वमाखिलम् ।
तथाप्यपा पूर्णा प्रकृतिरवशिष्टा गुणनिध ।।
इद पूर्णं पूण त्रिविध मणि ते कारणमिह ।
अपूव पूर्णाना किमपि रचित सग्रह इव ।।४।।

भावार्थ –हे दाता! प्रकृति से आपने इस पूण विश्व का सृजन किया, फिर भी प्रकृति पूण की पूण रही उसमें काई कमी नही हुई। विश्व निर्माण में तीनो कारण भी पूर्ण ही है इनमें भी विश्व के निर्माण से कमी नही आई। यह आपने पूण वस्तुओ का अपूव भण्डार कैसे बना लिया। जिसमें से बहुत कुछ निकाल लेने पर उसकी पूणता में कमी नही आई।

ग्रहा विद्धा नद्धास्त्वयि गुण इवेमे मणि गणा ।
त्वमेवाग्र ध्वास्त शिरसि ननु मालेयमर्पित ।।
त्वमवास्से दृष्टा सृजसि सकलास्त्व ग्रहपतीन
त्वया हीन किञ्चिन्नहि सुरपते त वमसि किम ।।५।।

भावार्थ –हे दाता ! य सब ग्रह तुझ डोरी में गुथ और विधे हैं जैसे डोरी में मणिया गुथीविधी होती है। तुमने ही इन्हे गूथा है और यह माला तेरे ही सिर पर लपेटी हुई है। तुमही इस दृश्य के दृष्टा हो। तुम ही इन सब ग्रह प्रतियो का सृजन करने हो। सब जगह तुमही तुम हो। तुमसे रहित कोई स्थान नही, तो तुम क्या हो।

तत्वमासि' महावाक्यो ध्वनित होता है।

पुराणा शास्त्राणि श्रुतम इति सर्वेनहि गुणान ।
क्षमा गातु नर्तोत्यभवदन एवश्रुति रति ।।
क्य वा शक्यस्त्व जगति खलु गातु गुरुवर ।
समस्तविश्व वे भवति नहि सूच्यग्रवदपि ।।६।।

भावार्थः-हे दाता ! पुराण, शास्त्र एव वेद ये सब आपके गुणो का वर्णन करने में असमर्थ हैं और इसीलिये श्रुति में 'नेति' पद कहा है, और आपका गुणगान किया भी कैसे जा सकता है क्योंकि यह सब दृश्यमान जगत आपके लिये सूई के अग्र भाग के तुल्य भी नहीं है।

त्वया नीता. पारश्रुतमिह पुरा पागर जनाः।
न दृष्ट तत्स्वामिन् श्रुतमिह च सत्य न भवति ॥
इद सत्य कर्तुं जनमिममिदानी गुरुवर।
भवाब्ध पार मा मिह पतितमेक गमयतु ॥७॥

भावार्थ –हे दाता ! हमने सुना है कि आपने पहले कई धूर्त जनो को भवसागर से पार किया था, पर उसे देखा हमने नही और आज का संसार सुनी सुनाई बात पर विश्वास नही करता। कृपया मुझ एक पतित को भव पार कर दिखाइये जिससे इस बात की सत्यता प्रमाणित हो सके कि वास्तव में आपने पहले धूर्तों को पार उतारा था।

त्वमाराध्य. साध्य स्त्वमसि जगतामाध्यधहर.।
विधाता त्राता त्व सकल सुखदाता गुरुवर।
त्वदीय ये प्राप्ता श्चरणयुगल भक्त प्रवरा.।
सुराणा ते वन्द्या किमवर जनाना विभुवर ! ॥८॥

भावार्थ –हे दाता ! हे गुरुवर ! आपही आराध्य, साध्य एव जगत की आधिव्याधि हरने वाले हैं। आप विधाता, रक्षक और सभी सुखो को देनेवाले हैं। आपकी चरण शरण में जो भक्त प्रवर आगए हैं वे देवताओ के भी वन्दनीय हैं, सामान्य की तो बात ही क्या है।

० ० ०

भगवान के समीप कौन ?

"भगवान का दरबार बडा विशाल है। उस दरबार में सभी जीव समान है। वहाँ न कोई ऊँचा हैं और न कोई नीचा। उसका द्वार सभी के लिये खुला है।" ये शब्द श्री दाता ने शिवरात्रि के पर्व पर जिज्ञासु लोगो के बीच कहे। दिनाक १४-२-८० को शिवरात्रि के अवसर पर अनेक लोग विभिन्न स्थानो से श्री दाता के दर्शनार्थ दाता निवास आये थे। उन्होने वहाँ सत्संग और कीर्त्तन का खूब आनन्द लिया। जिज्ञासु लोगो ने श्री दाता से उस समय अनेक प्रश्न किये। उन प्रश्नों में से एक प्रश्न था –

जिज्ञासु——"भगवान के दरबार में नजदीक कौन है ? गरीब नजदीक है या अमीर। उसके दरबार में कौन ऊँचा है व कौन नीचा है ?"

श्री दाता——"भगवान का दरबार साधारण सा दरबार तो है नही। उसका दरबार तो अनोखा ही है। वहाँ तो जो उसका बन कर रहता है वही नजदीक है। जो प्राणी अपने मन का बन कर रहता है अर्थात् मन के कहे-कहे चलता है वह भगवान से दूर है। मनुष्य का अहकार और सुख, उसको भगवान से दूर ले जाता है। अहकार रहित होकर जो उसका बनता है उसके लिये वह निकट है। जो अमीर अपने धन के मद में अन्धे होकर रहते हैं उनके लिये भगवान को पाना सभव नहीं। कारण, उनको तो धन का आश्रय है। उनको भगवान के आश्रय की आवश्यकता ही नही है। इसके विपरीत गरीब को तो एक मात्र भगवान का ही सहारा होता है। गरीब सदैव ही अभावो से ग्रस्त रहता है, अत उसका जीवन दु खो से परिपूर्ण रहता है। दु ख में एक मात्र भगवान ही सच्चा साथी होता है। दु ख मनुष्य को भगवान के निकट ले जाता है।

"भगवान का दरबार बडा ही विचित्र है। वहाँ ऊँच-नीच का कोई भेद भाव नहीं। वहाँ सभी का प्रवेश है। आज शिवरात्रि का

पर्व है। भगवान शिव के मन्दिर में पूजार्य सभी को जाने का समान अधिकार हैं। कोई कह दे कि तुम नीच हो इसलिए मन्दिर में नही जा सकते हो। ऐसा मन्दिर हमें नही चाहिये क्योकि यह मन्दिर तो तुम्हारे मन का बनाया हुआ है। वह मन्दिर भगवान का कैसे हो सकता है? जो मन्दिर अपने मन का है उसमें भेदभाव हो सकता है किन्तु भगवान् के मन्दिर में भेदभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। सभी व्यक्ति उसके हैं। ये सभी जातिया उसकी हैं। कोई भी जाति छोटी व बडी नहीं होती। जाति तो कर्म से बनी है। सूत छाटने वाले को सूत्रकार; लोहे क काम करने वाले को लोहार, लकड़ी के काम करने वाले को खाती, छपाई के काम करने वाले को छीपा, चमड़े के काम करने वाले को चमार और सोने के काम करने वाले को स्वर्णकार कहते है। इस तरह सभी जातियाँ कर्म के आधारपर बनी हुई है। आप लोग ही बतावे कि कौनसा कर्म बडा है और कौनसा कर्म छोटा है। कर्म तो अपने अपने स्थान पर सभी बड हैं। कर्म के आधार पर धर्म को परिभाषा करना उचित नही। ऊंचा तो वही है जो भगवान् को ऊँचा माने। भगवान् को बडा मानने वाला ही बडा है। जो व्यक्ति स्वय को बड़ा मानता है वह बडा नहीं है।

"आप लोग किस को बडा मानते हो ? क्या यह बात आप लोग जानते हो ? आप लोगो के कोई धर्म-कर्म तो है नही। आप लोग या तो डण्डे को ही धर्म मानते हो या रूपचन्द जी को। सच्ची बात कहने वाला कड़वा लगता है। आजकल जो धर्म के ठेकेदार हैं उनमे अधिकतर भगवान् के पुजारी न होकर रूपचन्द जी के पुजारी हैं। आपने बडे बड़े मन्दिरो में इनके असली रूप को देखा ही होगा। कुए के कबूतर की तरह इन्हे अपने स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य कुछ दिखाई देता ही नहीं है। धर्म के ठेकेदारोने नामदेवजी को मन्दिर में जाने से रोका। उनका तर्क था कि नामदेवजी के मन्दिर में जाने से मन्दिर भ्रष्ट हो जावेगा। ऐसा क्या धर्म है जो एक आदमी के आने जाने से बिगड जाय। हमें तो ऐसा धर्म चाहिये जो कभी भी बिगड़ता न हो। हमें तो शाश्वत धर्म चाहिये। दाता ही शाश्वत है अतः दाता तो छत्तीस ही जातियो में एक रस व एक रूप है। जिस प्रकार हवा व पानी सभी जगह व्याप्त है उसी प्रकार

दाता सभी में व्याप्त है। न तो किसी में कम और न किसी में अधिक। सभी में समान रूप से वह समाया हुआ है। जो प्राणी उसका होकर उसी को मानता है वही बडा व ऊँचा है। आप लोग हरिजन को नीच कहते हैं किन्तु आप को मालूम है कि हरिजन तो हमारे अन्तर में भरा पडा है। उसको नीचा कहना और घृणा करना स्वय को नीचा कहना और घृणा करना है।

"आज अमीर लोग गरीब लोगो को हीन दृष्टि से देखते हैं यह बात अच्छी तो है नही। आपही बताव कि उनको अमीर बनाया किसने? आज ये गरीब न होते तो वे अमीर बनते कैसे? गरीबो के बल पर ही अमीर बने हैं। किन्तु धन के मद में अन्ध होकर वे अब उनसे घृणा करते हैं। गरीब लोगो को तो दाता का ही आधार है, इस लिये वे दाता के प्यारे हैं। अत गरीबो से घृणा करना दाता से ही घृणा करना हुआ। आज जो काम गरीब लोग या नीच कही जाने वाली जाति के लोग कर रहे हैं वही काम अमीर या ऊँच कही जाने वाली जाति के लोग कर रहे हैं। नीच जाति के लोग तो मरे हुए पशुओ की खाल खीचते हैं किन्तु अमीर एव उच्च वर्ण के लोग तो जीवित लोगो की खाल खीचते हैं। अब आप ही देखले कि ऊँच कौन है और नीच कौन है?

एक भक्त भगवन्। ये ब्राह्मण लोग तो निरन्तर भजन-पूजन करते है, वे जनेऊ धारण करते हैं और नित्य गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं। अत वे लोग तो निश्चित ही उच्च व पवित्र हैं।

श्रीदाता "जो वास्तव में ब्राह्मण हैं व तो उत्तम एव पवित्र होते ही हैं किन्तु वे लोग जो वश से ब्राह्मण हैं और वेश-भूषा से ब्राह्मण दिखाई देते हैं क्या वे वास्तव मे ब्राह्मण है? उनका व्यवहार एव आचरण तो सच्चे ब्राह्मण की भाँति ही होगा। सच्चा ब्राह्मण तो सभी में ब्रह्म ही को देखता है। उसके लिए तो सभी समान हैं। वह किसी में भेद नही करता। उसकी दृष्टि में तो सभी एक और अभेद हैं। यज्ञोपवीत धारण कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नही होता। जनेऊ पहनने से यदि कोई ब्राह्मण हो जाता तो वह तो प्रत्येक व्यक्ति कर लेता। उसी प्रकार

गायत्री मन्त्र पढ़ लेने मात्र से भी क्या होता है। जब तक उसके अनुसार चलना नहीं होता तब तक सब व्यर्थ है। राम नाम लेने मात्र से उद्धार हो जाता तो पालतू तोता तो निरन्तर रामनाम लेता ही रहता है। रामनाम को यदि ढङ्ग से लिया जाय तब ही वह फलदायक होता है। कहा भी है:-

' रामनाम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोय।
एकबार दशरथ कहे, कोटि यज्ञ फल होय ॥"

संसार की गति ही बड़ी विचित्र है। जब तक शिला के नीचे हाथ रहता है तब तक तो विनम्रता है। बद्रीनारायण की यात्रा में आपने देखा होगा कि विकट घाटियों में यात्री किस तरह तन्मय होकर हरि कीर्तन कर रहे थे। वे ही व्यक्ति नीचे मैदान में पहुँचते ही फिल्मी गाने गाने लग गए। यह है हम संसारियों की वास्तविक हालत।

एक भक्त : सब मनुष्यों को तो दाताने ही बनाया है, फिर मनुष्य मनुष्य में अन्तर क्यों है? एक साँचे से निकले हुए मनुष्य तो एक ही होने चाहिए।

श्री दाता——आप ठीक कहते हैं। वर्षा का पानी बरसते समय स्वच्छ होता है किन्तु भूमि के सम्पर्क में आते ही अस्वच्छ हो जाता है। इसमें वर्षा का पानी डालने वाला क्या करे? सङ्गति का प्रभाव तो पड़ता ही है। आप लोगों ने मूल को छोड़कर डाली शाखाओं को पकड़ रखा है। मूल को विसार देने पर भेद व अन्तर का होना स्वाभाविक है। भगवान चारभुजा साक्षात् रूप से गढबोरे में विराजते हैं और विश्व के कोने-कोने से उनके दर्शन करने तथा स्वेच्छा पूर्ति हेतु आते हैं। परन्तु आपने देखा होगा कि वहां की रहने वाली गुर्जरियाँ भैंस पूजने जाती हैं, क्योंकि उनकी भगवान् चारभुजा में आस्था नहीं है तभी न ऐसा होता है? हमें तो वास्तव में ऐसा प्रियतम चाहिए जो कभी हमसे विलग न हो। हम भी अपङ्ग हैं। उठने बैठने की शक्ति तो हम में है नहीं फिर साधना कैसे हो? हम तो यही चाहते हैं कि बस वह हमारी श्वास-श्वास में समा जावे।"

भक्त---उस प्रियतम की पहिचान क्या है ?

श्रीदाता—-पिया की पहचान करने की आवश्यकता ही नही पडती है। वह तो बिना पहचाने ही पहचान लिया जाता है। जिसे प्रकृति स्वय नमन करे, जहां ससार की सभी योनिया नमन और पशुपक्षी तक नृत्य करने लगें वही हमारा पिया है। बालिका जन्म से ही पति की इच्छा करने लगती है लेकिन वह पति को पहचानती नही। जब पतिको पानेकी तीव्र इच्छा हो जाती है तो पति स्वय ही वहा आकर उसका हाथ पकड लेता है। चाह होते ही वह स्वय पहुंच जाता है। जो भी लज्जा व शर्म है वह भी उसी की है। दाताके सम्बन्ध और सासारिक सम्बन्धो में बडा अन्तर है। ससार का सम्बन्ध वासना और कामना का सम्बन्ध है जबकि दाता का सम्बन्ध वासना और कामना रहित है। इस सम्बन्ध में तो रात-दिन केवल उसी का ध्यान रहता है। सब में एकरस हो जाना ही आनन्द का मूल है।

भक्त··· सब मे एकरस तो अघोर पथी होते हैं। उनके कार्य और कथनी तो बडे विचित्र होते हैं।

श्रीदाता····आप अघोर मत कहते किसे है ?

भक्त·· ·जिस मत में अच्छे और बुरे कर्म का भेद नही रहता, वही अघोर मत है। अघोर पंथ के लोग श्मशान में बैठकर साधना करते हैं और मैले तक को खा लेते हैं।

श्रीदाता ·आप अघोर पथ को नही जानते हैं। अ का अर्थ होता है 'नही' और घोर का अर्थ है 'ध्यान'। अत अघोर शब्द का अर्थ हुआ वह व्यक्ति जिसको अपने आपका भी ध्यान नही रहता है। सीधे-सादे शब्दो मे अघोर पथ का अर्थ हुआ वह पथ जो निरन्तर साधक को दाता के ही ध्यान में लगाए रखे। जो सभी वस्तुओ में एक मात्र दाता के ही दर्शन करते हैं वे अघोर पंथी हैं। वहां वासना और कामना को कोई स्थान नही है। मलमूत्र के सेवन से ही यदि सिद्धि मिल जाती होती तो शूकर तथा कई जीव तो अहर्निश यही कार्य करते हैं।

अघोर पंथी सभी में दाता के रूप को ही देखते हैं। उनके समक्ष मिष्ठान व विष्टा एक ही भाव बिकता है।

भक्त----हम तो दुराचारी हैं। कामना और वासना हमारा पिण्ड छोडती नहीं और निरन्तर स्वार्थ में लिप्त रहते हैं, तो ऐसे दुराचारियों का क्या परिणाम होगा ?

श्रीदाता----यह मत समझो कि हम दुराचारी हैं। यदि एक मिनट के लिए भी हमारे पिया की झलक मिल गई तो लोग आपको सुहागिन कह देंगे। निराश क्यों होते हो ? प्रयास तो कीजिए। और कुछ भी यत्न नही कर सकते हो तो कम से कम उस की चाह तो रखो। लोग उसकी चाह भी खोज न कर अन्य वस्तुओं की खोज करते हैं।

भक्त---यही तो कठिनाई है। उसकी खोज करे तो कैसे करे ?

श्रीदाता---उसकी खोज कठिन है। वह ऐसे खोजने से हाथ में नहीं आता। जब तुम थक कर उसको खोजना छोड़ दोगे तो काम बन जावेगा। जब तक दौड है तब तक वह दूर है, दौड मिटते ही पास में हुजूर है। लेकिन शर्त यही है कि आपको उसकी पूरी आवश्यकता है। उसके मकान के हजारो दरवाजे और खिडकियां हैं। अनुग्रह होने पर वह किसी भी दरवाजे या खिडकी से देख लेता है। जो अपनी समझ खो देता है उसके लिए वह सर्वव्यापी है। दाता की लीला अनोखी है। जो हिचकिचाकर रह गया या झिझक गया वह रह गया और जिसने हिम्मत-साहस कर एड लगादी वह खन्दक के उस पार हो गया। देखो सीताराम जी और हरलाल जी ने साहस किया तो वे वृन्दावन पहुंच गए। किन्तु इन दोनो ने दक्षिण यात्रा के समय कमजोरी दिखाई तो शादी के बहाने रुकावट सामने आगई। अत: जिसकी चाह पक्की हो जाती है उसका काम बन जाता है। दाता को जितना वरण लिया जाय उतनाही अच्छा है। उसके निकट आने के लिए उसकी चाहको पक्का करना होगा। अपनी समस्त दौड को उसकी ओर मोड दो, फिर देखो वह कितना निकट है। वह दूर है कहां ? वह तो हमारे रोम रोम में समाया हुआ है, लेकिन हमें उसकी अनुभूति नही। और इसका कारण यह है कि वास्तव में

हमें उसकी चाह नहीं है। उसकी चाह होने ही सारी दूरी समाप्त हो जाती है।

स्थान–श्री दातानिवास– "श्रद्धावान लभते ज्ञानम्"

दिनाक १६–२–८० को पूर्ण सूर्य ग्रहण था। इस ग्रहण को बडा प्रभावशाली बताया गया और समाचार पत्रो की घोषणा थी कि अनेक दशको के पश्चात् ऐसा सूर्यग्रहण लगा है। इस अवसर पर अनेक स्थानों से भक्तजन एव जिज्ञासु दातानिवास पधारे। दो बजकर पैंतीस मिनट पर सूर्य ग्रहण प्रारम्भ हुआ। श्रीदाता ध्यानस्थ होकर दातानिवास के बाहर बैठ गए और अन्यलोग श्रीदाता के सन्मुख ही बाहर विस्तृत मैदान में बैठ गए। लोगोंने "भजगोविन्दम् बालमुकुन्दम् परमानन्दम् हरे हरे" का कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ लोग श्रीदाता के शरीर पर अपनी दृष्टि जमा कर ध्यान करने की चेष्टा करने लगे। प्रभुकृपा से उस दिन अनेक भक्तो को आत्मानन्द की अनुभूति हुई। ग्रहण काल के पश्चात् श्रीदाता के प्रवचन हुए। श्रीदाता बोले कि लोगो के लिए यह ग्रहण रहा होगा परन्तु उनके लिए तो वह पर्व सिद्ध हुआ। उनको दाता का नाम लेने का शुभ अवसर मिला। उस ग्रहण के कारण ढाई घण्टे बैठकर प्रभु स्मरण हो सका, उमस बढकर लाभ और क्या हो सकता था। हाँ! सबलोग सासारिक कार्यों में इतने उलझे हुए हैं कि दाता को कभी स्मरण ही नहीं करते। आज एकत्रित होकर निष्ठा से उसे याद तो किया। लोगो की स्थिति ही अनोखी है। टढी अँगुली बिना घी नही निकलता। भय बिना प्रेम नहीं। जब अष्टग्रह का अनिष्ट योग बनाया गया तब सब प्रभु के नामको रटने लगे। विश्व के ज्योतिषियो ने इस ग्रहण का बडा दुष्प्रभाव बताया तथा उनके भविष्य कथन से लोग बडे भयभीत थे। इसका और प्रभाव जो कुछ भी रहा हो किन्तु यह प्रभाव तो अवश्य दृष्टिगोचर हुआ कि लोग भयभीत होकर दाता को याद करने लगे। यदि यह भय नहीं होता तो आप लोग कब यहाँ आते और कब इस प्रकार तन्मय होकर उसको स्मरण करते। दाता ही तो मूलवस्तु है, सार है। अन्य सभी वस्तुऐं निस्सार हैं। यही सबसे बडा ज्ञान है। इसी ज्ञान की प्राप्ति के लिए आप और हम सब कोशिश कर रहे हैं। जो श्रद्धावान हैं वे तो इस ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। जिनमें उसके प्रति श्रद्धा नही है उन्हे कठिनाई

होती है। आप लोगो ने आजकल के कॉलेज के छात्रो को देखा होगा। उनके दिमाग आसमान पर चढ़े रहते हैं। वे अपने आचार्यो को भी कुछ नहीं मानते। कॉलेज मे और कॉलेज के बाहर प्रोफेसरो को कहते नजर आते है, "हम आपको देख लेंगे"। वे ही छात्र परीक्षा के दिनों में झुक-झुक कर नमस्कार करने लगते हैं। एक साधारण परीक्षा पास करने का स्वार्थ लेकर वे बडे श्रद्धावान बन जाते है अनेक देवो को प्रसाद चढा कर सन्तुष्ट करने का प्रयास करते है। उनकी श्रद्धा स्वार्थमय होते हुए भी फल अवश्य देती है। श्रद्धा से ही सार की प्राप्ति होती है। श्रद्धा ही विश्वास की जननी है। विश्वास से ही प्रेम पैदा होता है और प्रेम हुआ नही कि काम बना, सारे काम बन जाते है। प्रेम से निजत्व पैदा होता है। दाता से प्रेम होने पर अपना निजी अस्तित्व समाप्त होकर केवल दाता ही रह जाता है। जीव तथा आत्मा अथव्य आत्मा तथा परमात्मा का भेद समाप्त हो जाता है। यह अन्तर समाप्त होने पर एक मात्र 'वही' रह जाता है।

ससार की वस्तुएँ सभी नाशवान है। उनकी ओर आकर्षित होना सारहीन है। वे वस्तुएँ क्षणिक सुख देने वाली है। उनका अन्त दुःख-दायी है। ऐसी वस्तुएँ जो दुखदायी है उनके लिए दौड़ लगाना हमारी भूल है। एक मात्र दाता ही सत्य स्वरूप है। उस सत्य स्वरुप को पाना ही हमारा मुख्य उद्येश्य होना चाहिए। उस घ्येय की प्राप्ति से ही हमें शान्ति मिल सकती है। अत.श्रद्धापूर्वक उसकी याद के लिए प्रयत्न करना चाहिए। वहाँ हमारी समझदारी (बुद्धि) काम नही करती है। उसकी महर (अनुग्रह) का ही आधार है। उसकी कृपा होने पर ही हमें उनका अनुभव हो सकता है।

○ ○ ○

निर्बल के बल राम

दिनाक १७–२–८० को दाता निवास के वाहर वेठे कुछ भक्त लोग कह रहे थे कि कुछ लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु गरीबो एव निर्बलो को सताते हैं। गरीबो को सताना बुरा है। वार्तालाप का यही विषय बन गया। तभी श्रीदाता का पधारना हुआ। आते ही श्री दाता ने पूछा, "क्या हो रहा है ?"–

एक जिज्ञासु ––– भगवन ! गरीब लोगो का कही ठिकाना नही। चारा ओर से उन्हे ही दवाया जाता है। बेचारे दिनभर परिश्रम करते हैं, फिर भी भूखे ही रहते हैं। चारो ओर से उन्हे लूटा जाता है। सबल सदैव ही निवलो को सताते नजर आते है। निर्वलो को सताना कहां तक अच्छा है ?

श्रीदाता ––– निर्वलो को सताना अच्छा नही है। गरीबो एव निर्बलो को सताना तो मेरे दाता को ही सताना है। यह मानना कि गरीबो का कोई रक्षक नही होता भूल है। आपने सुना होगा कि मेरे दाता को गरीब परवर व दीनदयाल कहते हैं। वह गरीबो और दीना का प्यारा है। कोई आर्त्त होकर उसे पुकारता है तो वह तत्काल सुनता है। गरीबा की आह की अग्नि वडी भयकर होती है। जव वह प्रकट होती है तो सताने वालो को समूल नष्ट कर देती है। गरीबो की आह के सामने उसका नाश ही नही बल्कि सर्वनाश हो जाता है। इसलिए गरीबो की तो सदैव रक्षा ही करनी चाहिए। रहीम ने ठीक ही कहा है–

> "जो गरीब के हितकर, ते रहीम वड लोग।
> कहा सुदामा बापरो, कृष्ण मिताई जोग॥"

जो गरीब की सेवा करता है वह मेरे दाता की ही सेवा करता है क्योकि वह तो गरीबो का रक्षक है। अत गरीबो को सताना बुरा ही नही अत्यधिक बुरा है। निर्बलो की पुकार तो वह शीघ्र ही सुन लेता है। आप लोगा ने कहानी सुनी होगी।

एक पेड की डाली पर कबूतर का एक जोडा बैठा था। पक्षियो में कबूतर सब से भोला और गरीब पक्षी होता है। कबूतर और कबूतरी

डाली पर बैठे बैठे बाते कर रहे थे कि उतने में ही एक बाज पक्षीकी दृष्टि उन पर पडी। वह उनकी ओर झपटा। इधर एक शिकारी जङ्गल में शिकार के लिए निकला। संयोग से वह भी उधर ही आ निकला। उसने भी उस कबूतर के जोडे को देखा। प्रसन्न होकर उसने अपने धनुष पर तीर चढ़ाया। कबूतर घबडाए। उन्होने अपने नीचे व ऊपर काल को मडराते हुए देखा। दोनों ओर से उनकी मृत्यु निश्चित हो थी। यदि शिकारी के तीर से बच जाते हैं तो बाज कब छोड़ने लगा। यदि वे बाज से बच जाते हैं तो शिकारी का तीर उन्हे समाप्त कर देगा। क्या चारा था उनके सामने ? निर्बल तो वे थे ही। भगवान् के सिवा क्या आसरा था उनके पास। आर्त्त होकर उन्होने दाता को पुकारा। वहाँ क्या देर थी। वह तो दीनानाथ है। सयोग देखिये। जिस समय शिकारी निशाना साध रहा था, उस समय एक सर्प आकर शिकारी को डस लेता है। साप के डसने से शिकारी का निशाना चूकता है। छूटा हुआ तीर सीधा बाज के प्राण हर लेता है। वाह रे मेरे दाता ! इस तरह उस कबूतर के जोड़े को बचाया। अतः निर्बलो को सताना तो स्वय का नाश करना ही हुआ। तुलसीदास जी ने भी कहा है–

तुलसी हाय गरीब की कबहु न निष्फल जाय।
मुई भेड़ की खाल सू लोह भस्म हो जाय॥

दाता तो असहायो का सहाय व निर्बलो का बल है। कोई व्यक्ति गरीब व निर्बलो को सताकर लोगों को धोखा दे सकता है उनकी आँखो में धूल झोक सकता है, किन्तु वह दाता की निगाहो से नही बच सकता। जो जैसा करेगा वह वैसा ही भरेगा। अपनी करनी का फल तो भोगना ही पडेगा।"

"सरकार ने न्यायालय इसीलिये स्थापित किये हैं कि वहाँ न्याय मिल सके। दाता ने न्यायालयो को गरीबो एव निर्बलों की सहायता के साधन बनाये हैं। हर गरीब सताने पर न्यायालय में जाकर फरियाद कर सकता है। न्यायालय उसकी सहायता करता है। यदि न्यायालय सत्य पर आवरण डाल कर धन के लालच से अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं तो यह बात ठीक नही है। न्यायाधीशों को तो औरगजब की तरह कठोर व न्याय प्रिय होना चाहिये। औरगजेब के समय की बात है।

दिल्ली में एक बुढिया रहती थी जिसके पास एक गुणी तोता था। वह तोता साधारण तोतो सा नही था। वह अनेक शास्त्रों का ज्ञाता एव ज्ञानवान था। कुरान उसको पूरी की पूरी याद थी। बुढिया उस तोते को प्राणो से भी अधिक प्यार करती थी। उस तोते की ख्याति चारो ओर फैली हुई थी। अनेक व्यक्ति उस तोते को लेना चाहते थे किन्तु वह बुढिया उसको अपने से अलग करना ही नही चाहती थी। एक दिन शाहजादे की नजर उस तोते पर पड गई। तोते को देखकर उसकी इच्छा तोते को प्राप्त करने की हुई। उसने उस बुढिया से धन के बदले तोता लेना चाहा किन्तु बुढिया ने स्पष्ट इनकार कर दिया। इस पर शाहजादा बहुत नाराज हुआ। उसने तोते को ही नष्ट करने की सोची एक दिन उसको मौका मिल गया। बुढिया किसी काम में लगी हुई थी व तोता अकेला पिंजरे में था। उसने तोते को निकाला और उसका गला मरोड दिया। तोता मर गया किन्तु उसी समय बुढिया आगई। तोते को मरा हुआ देखकर वह बडी दु खी हुई। वह रोती-चिल्लाती औरंगजेब के पास पहुँची और फरियाद की। औरगजेब ने सब कुछ सुना। उसने जो न्याय दिया उसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता। उसने शाहजादे को बुढिया के सामने ला खड़ा किया और बोला 'इसने तुम्हारे तोते का गला मरोड़ कर मार दिया है अत. तुम भी इसका गला मरोड कर मार डालो।' इसे कहते हैं न्याय। मजिस्ट्रट के पास दो प्रकार के प्राणी होते है। एक दोषी व दूसरा निर्दोष। दोनो तो सच्चे होते नही। कौन सच्चा है व कौन झूठा है, देखने का काम मजिस्ट्रट का है। मजिस्ट्रेट के पास यदि सत्य को देखने की आँख नही है, तो उसे अपने पद से हट जाना चाहिये, अन्यथा वह अपराधी है।"

दाता निवास के पास छोटी छोटी अनेक पहाडियाँ एव पहाड़ी घाटियाँ है जिनमें फस जाने पर मनुष्य को मार्ग सरलता से नही मिलता। उस दिन जयपुर से भी कई लोग आये हुए थे। शाम के समय दैनिक कार्यो से निपटने कुछ लोग जलाशय की ओर निकल गये। उन लोगो में हरिशकर जी नाम के एक वृद्ध सज्जन भी थे जिन्हे जयपुर वाले 'मामाजी' के नाम से पुकारते हैं। हरिशकर जी वृद्ध तो है ही साथ ही उनके नेत्रो की ज्योति भी कम है। वे निपटने के लिये एक छोटी सी पहाड़ी के पीछे

चले गये। अंधेरा हो गया था। लौटते वक्त उन्हे दिशा भ्रम होगया। वे रास्ता भूल गये और चलते चलते पहाडियो में जा फसे। उन्हे दाता निवास आने का मार्ग मिला ही नही। इधर उनके न आने पर उनके साथी लोग बडे दु खी हुए और उन्हे खोजने लगे। दो तीन घण्टो की तलाश के बाद भी जब उनका कोई पता नही चला तो लोग भयभीत हो गये। लोगो ने दु खी होकर दाता से निवेदन किया। दाता ने सबको सान्त्वना दी। कुछ लोगो को उनकी खोज के लिये भेजा। रात्रि के लगभग १२ बजे वे मिले। लोगो ने उन्हे पूछा, "आप किधर निकल गये ? हमनें इतनी आवाजें दी फिर भी आपने नही सुना।"

हरि शंकरजी——"निपटने के बाद मैंने सोचा कि रास्ता इधर ही है इस लिये आगे बढ गया। आगे जाने पर मुझको कोई मार्ग दिखाई नही दिया। चारो ओर चट्टाने, पत्थर व गड्ढे थे। कुछ देर तो मेरी ताकत के अनुसार चलता रहा। चलते-चलते कई जगहो पर गिर भी पडा। आखिर अधरे में दिखना भी बन्द हो गया। आप लोगो की आवाजें भी सुन रहा था। टार्चों की रोशनी भी दिखाई दे रही थी। मैंने भी जोर जोर से आवाज लगाई कि मै यहाँ हूँ किन्तु कोई मेरे पास नही आया। मैं फिर जीवन से हताश हो गया। लगा में प्रभु को रटने। दाता को याद करते ही मेरे शरीर में ताजगी आगई और जैसे कोई मुझको पकड कर ले जारहा हो ऐसा अनुभव हुआ। फिर तो मैं पत्थरों और गड्ढो को लाघते हुए आगे बढने लगा। पता नही इतनी शक्ति मेरे में कहा से आगई। फिर तो मै जोर से दाता दाता रटने लगा। अन्त में आपलोग आ ही गये।" हरि शंकर जी के मिल जाने पर सभी लोगो को बडी प्रसन्नता हुई। सभी लोग गद्‌गद् हो कर दाता के चरणो में जापडे। उस समय दाता ने फरमाया।

श्रीदाता——"दाता तो बडा दयालु है। वही तो पग पग पर बन्दे की सेवा करता है। ये पहाड बडे विकट है। इन में मार्ग मिलना बडा कठिन है। दिन के समय भी मार्ग मिलना कठिन होता है तो अंधेरी रात की बात तो दूसरी है। ये पहाड हिंसक पशुओ से भी भरे पडे हैं। दिन को भी अकेला व्यक्ति इन पहाडो में जाने में भय खाता है। रात्रि को तो इन पहाडो में से बच कर आना कठिन है। श्री हरी शकरजी

तो वृद्ध है, दिखाई कम देता है और शरीर से शक्ति हीन है। बिना दाता की कृपा के इनका बच कर आना संभव नहीं। निर्बल व्यक्ति यदि आर्त होकर दाता को रक्षार्थ पुकारता है तो दाता उसकी सुनवाई अवश्य करता है। वह अवश्य ही उसका परित्राण करता है। जब तक स्वयं के बल का स्वयं को भरोसा है तब तक तो वह दूर है। जब स्वयं का भरोसा समाप्त होकर उसका भरोसा ही शेष रह जाता है तब काम बन जाता है। गज को ग्राह ने पकड लिया। गज अपनी शक्ति लगाता रहा तब तक वह पानी में खिंचता रहा। ग्राह उसको पानी में ले जाता रहा। रती भर सूंड पानी के बाहर रही तब तक गज अपनी ताकत लगा कर छूटने का प्रयास करता रहा। अन्त में वह हार कर हताश हो गया। निःसहाय होकर तब उसने दाता को याद किया। वहां क्या देर थी ? तत्काल दौड पडा। उसने ग्राह को मार गज की रक्षा की। यह है दाता की लीला।"

"द्रोपदी को जब भरी सभा में दुःशासन खींच लाया व उसको निर्वस्त्र करने लगा। उस समय अपनी लज्जा को रखने को वह शरीर पर की साडी को पकडने लगी। अपने को नग्न होने से बचाने के लिये वह भारी प्रयास करने लगी। उसने दांतों से साडी को पकड ली। किन्तु ज्यों ज्यों वह शक्ति लगाती उसकी लाज उघडती ही जा रही थी। अन्त में वह हार थक कर हताश हो गई। उसने अपना बल लगाना बन्द कर दिया और आर्त होकर दाता को पुकारने लगी। तत्काल दाता ने सुनवाई की और भरी सभा में द्रौपदी की लज्जा की रक्षा की। अतः दाता तो निर्बलों का सहायक है। निर्बल बन कर जो उसके सामने रो देता है उसके आंसू पौंछने को वह तुरन्त आ जाता है, अर्थात् निर्बल के संकट तत्काल दूर कर देता है। उसको संकट से उबार देता है। अतः आप लोग सदैव याद रखो कि कोई असहाय, गरीब और निर्बल आप लोगों द्वारा न सताया जाय। सदैव अपनी सामर्थ्य अनुसार गरीबों की सेवा करना सीखो। उनकी आशीष आपको आनन्द देने वाली सिद्ध होगी।

० ० ०

समर्पण से ही प्राप्ति

कई वर्षों से रामनवमी का सत्संग माडल (भीलवाडा) होता आ रहा है। सन १९८० की रामनवमी का सत्संग भी वही हुआ। इस अवसर पर उनके भक्तजन उपस्थित हुए। दिनाक २४-३-८० को प्रात: ही अजमेर एव भीलवाडा क्षेत्र में कार्य करनेवाले विवेकानन्द केन्द्र के कई जिज्ञासु लोग श्री दाता के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। अन्य लोगों ने उनका परिचय देते हुए कहा, 'भगवन्! ये लोग बड कर्मठ हैं। इन्होने अपना जीवन ही केन्द्र को समर्पण कर दिया है।" श्री दाता मुस्करा दिये। कुछ देर बाद उन्होने फरमाया।

श्री दाता.. . "जिन्होंने सब कुछ समर्पण कर दिया उन्होंने सब कुछ कर लिया। ऐसे प्राणियों को माँका राम नमस्कार करता है। समर्पण करना ही बहुत बडी बात है, फिर सब कुछ समर्पण कर देना तो बहुत बडी बात है। अपना है ही क्या, जो रखा जाय। जो कुछ है सो तो उसी (दाता) का है। (पास में पडी लकडी की ओर सकेत करके) यह लकडी है। इसमें आग विद्यमान है किन्तु फिर भी आग से दूर है। इसमें आग होते हुए भी यह आग से वचित है।"

एक बदा... "आप फरमा रहे हैं कि इस लकडी में आग है, आग होने का क्या प्रमाण है ?

श्री दाता....''लकडी में आग विद्यमान है। आप आग होने का प्रमाण चाहते हैं। आग ने ही तो इस लकडी को बनाया है। "आग से ही यह लकडी हरी हुई है और विकसित हुई है। आग से ही यह फली है और फूली है। आग ने ही इसे सुखाया है। यह सब कुछ है फिर भी इसको आग का अनुभव नही है। कारण, यह आग से दूर है। इसको यदि आग को प्राप्त करना है अर्थात् आग होना है तो इसको आग में प्रवेश करना होगा। अपने आवरण को आग को समर्पण करना होगा। ज्योंही लकडी आग में समर्पित हो जावेगी वह स्वय आग हो जावेगी। आग कभी आग की इच्छा नही करती। आवरण ही आग

की इच्छा करता है। आप में और हम मे वह आग मौजूद है किन्तु इस आवरण के कारण आप उस आग से वंचित हैं। आवरण को दाता के समर्पण कर देने पर (सब कुछ) वही यह रह जावेगा। इस अहं रूपी आवरण को उस सत् स्वरूपी आग में डाल दो।"

"आप सब लोग अलग अलग बंधे हो। स्वतन्त्र कोई नहीं है। कोई किस में बन्धा है तो कोई किसमें। किन्तु उसमें (दाता में) बन्धना अच्छा बन्धन है। घर-गृहस्थी अर्थात् स्त्री; पुत्र, धन आदि में बन्ध जाना दुःख का मूल है। लोग अन्धे होकर इसी बन्धन की ओर दौड लगा रहे हैं किन्तु उन्हे इसमें कहीं चैन नहीं पडता है, कारण है, यह बन्धन क्षणिक इन्द्रिय सुख को देने वाला है। दाता के बन्धन में बन्ध जाने पर ही अनन्त सुख की प्राप्ति हो सकती है। समर्पण सभी करने के इच्छुक हैं व करना चाहते हैं। वे करते भी हैं किन्तु समर्पण समर्पण में भेद है। एक लडकी अपने पति को समर्पित होती है। जब तक वह अपने पति में पूर्ण रूप से समर्पित नहीं हो जाती अर्थात् पूरी उसकी नहीं हो जाती तब तक उसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता। जब वह पूरी तरह अपने पति में बिक जाती है, तब वह पति की हो जाती है। शरीर रूप में अलग अस्तित्व होते हुए भी उसका अस्तित्व पति के अस्तित्व में लय हो जाता है। उसका अस्तित्व समाप्त होने के बाद क्या गति होती है, यह तो आप जानते ही होंगे। पति उसे घर की मालकिन ही बना देता है। सब भाव की ही बात है।"

"आपको नौकरी करने की आवश्यकता हुई तो आपने सरकार की नौकरी कर ली। अब आप सरकार की सभी आज्ञाओं को मानने लगे। सरकार की कैसी भी आज्ञा क्यों न हो, आप बिना विचारे व बिना किसी संकोच के कर देते हो। इसमें आप न दिन देखते हो न रात देखते हो। आपने अपने आपको सरकार को समर्पण कर दिया, फल स्वरूप आप ही सरकार बन गये। अब आपकी आज्ञा सरकार की आज्ञा हो गई। जब तक व्यक्ति स्वयं की मन और बुद्धि रखता है तब तक समर्पण नहीं है। समर्पण में तो मन और बुद्धि को समाप्त करना पडता है। एक स्त्री अपने पति की बनना तो चाहती है किन्तु चलना चाहती है वह अपनी

मन और बुद्धि के अनुसार। मायाराम आपको पूछता है कि क्या ऐसी स्त्री अपने पति का प्यार पाने की अधिकारिणी है। ऐसी स्त्री को अपने पति का प्यार कभी नही मिल सकता है। सर्दी का मौसम है व कडाके की सर्दी पड रही है। ऐसे समय में पति बाहर से आया हुआ है और उसकी पत्नी चाहे कि उसे वह ठण्डे पानी से स्नान करावे तो बात कैसे बनेगी। पति की इच्छाओं में ही जब पत्नी अपनी इच्छाओं को समाप्त कर देगी तभी जाकर पति का प्यार उसे मिल सकता है।"

"अतः आप उस अविनाशी, सच्चिदानन्द, आनन्दकन्द परमेश्वर के बनना चाहते हो तो, अपनी मन और बुद्धि को उसमें समर्पण कर दो, फिर करने को कुछ भी शेष नही रहेगा। आप स्वय ही अविनाशी हो जावोगे। वैसे अविनाशी तो आप हैं ही। मरता कोई नही है। किसी भी वस्तु का नाश नही होता है। यह जो नाश होना दिखाई दे रहा है, वह केवल स्वरूप का बदलना है। आप दिन में कई स्वरूप बना लेते है। जो इच्छा होती है वही पोशाक आप पहिन लेत हो। जो स्वरूप आप धारण करते है, वही स्वरूप आपका हो जाता है। जब सब ही स्वरूप आपके हैं तो फिर आप नाशवान कैसे हुए। अतः उस अविनाशी को प्राप्त कर लेना ही परमानन्द को प्राप्त कर लेना है।"

"पौधा जब तक बीजरूप में रहता है तब तक उसे तूफान का कोई भय नही। किन्तु वही बीज जब विकास को प्राप्त होता है तो आंधी और तूफान का तथा सर्दी और गर्मी का सामना करना ही पड़ता है। आंधी-तूफान और सर्दी-गर्मी ही उसको वृक्ष का रूप देते हैं। वे ही उसे बनाते हैं। जो वृक्ष आंधी-तूफान में पैर छोड देते है उन्हे नष्ट होना पडता है। जो धैर्य से सहन करते हैं वे खडे रहते है। आप लोगो को मनुष्य जीवन मिला है। इस जीवन में दुःख रूपी अनेक तूफान आते हैं किन्तु जो व्यक्ति अपना कुछ न रख दाता का आसरा रख कर चलता है वह शक्ति को प्राप्त होता है। सुख और दु ख तो प्राणी को शक्ति देने वाले हैं। इनसे ऊपर उठकर उसका आसरा रखते हुए प्राणी को रहना चाहिये। भोजन को ही मुख्य उद्देश्य मान कर नही चलना है। भोजन तो शरीर को रखने का माध्यम है, अतः मिलेगा ही। हवा-पानी

पौधे के पनपने के लिये आवश्यक है। उसके बिना पौधा पनपेगा नही। बस उस दीनदयाल का आसरा रखकर चलो, जिससे सच्चा आनन्द मिल सके। श्वास श्वास में उसे रटो। यदि एक क्षण के लिये भी आपको वह सच्चा आनन्द मिल जावेगा, तो आप निहाल हो जावेंगे। अनेक दुकाने हैं जिनमें अनेको साज–सामान भरे पडे हैं। याद है तो आबाद है, मालामाल है, किन्तु याद नही है तो सब बरबाद हैं, बकार हैं।"

एक बन्दा "हम दाता का नाम लेने बैठने हैं तो अगरबत्ती क्यो लगाते हैं ? क्या ऐसा करने पर दाता हम पर प्रसन्न होता है।"

श्रीदाता•• •"दाता का नाम लेने वक्त हम अगरबत्ती लगाते है। और भी बहुत कुछ करते हैं किन्तु इनसे क्या दाता प्रसन्न होता है ? यदि दाता प्रसन्न नही होता है तो फिर आप अगरबत्ती आदि क्यो लगाते हैं। *अगरबत्ती आदि लगाने का बहुत बडा रहस्य है। हम गन्दगी से भरे पडे हैं।* हमारे अन्दर गन्दगी ही गन्दगी है। उस गन्दगी में यदि हमें कुछ खुशबू मिल जाती है तो हमारे लिये बड आनन्द की बात होती है।"

आगे दाता ने बताया, "समर्पण ही बडी बात है। समर्पण में बन्दे के तर्क एव बन्दे की बुद्धि समाप्त हो जाती है। एक बार एक बन्दा किसी महापुरूष के पास गया। वह देखने लगा कि अमुक बात तो महापुरूष ने सत्य कही है और अमुक बात झूठ। महापुरूष में यह देखना ही बन्दे को भ्रम में डालना है। वह बन्दा अनेक तर्क–वितर्क में फँस गया। बन्दे को यह कहने का कोई हक नही है कि महापुरूष या मेरे दाता सत्य बोलते है या झूठ, कारण आप सत्य और झूठ को जानते तो हैं नही। क्या आप जानते हैं कि सत्य किसे कहते हैं। सत्य वही है जो नित्य है। दाता ही नित्य है अत. दाता के अतिरिक्त और कौन है जो नित्य है और सत्य है। आपके लिय सत्य और झूठ की परिधि है। दाता के लिये तो दोनो ही बराबर है। आप ही बतावे कि आँखो देखी सत्य है या कानो से सुनी सत्य है" पास में ही जयपुर वाले सीता राम जी बैठे थे। श्री दाता ने उनकी ओर सकेत कर पूछा' "ये कौन हैं।"

एक बन्दा "ये तो सीताराम जी है।"

श्री दाता ' य कहाँ बैठ हैं व इन्होंने क्या ड्रस पहिन रखी है ?"

एक बन्दा ' य जमीन पर बठ हैं व इन्होंने कमीज और पजामा पहिन रखा है।"

श्री दाता अब आप यह बतावे कि य सीताराम जी है या इनकी ड्रस भी इन्ही का स्वरूप है ?"

एक बन्दा ' यह ड्रस भो सीताराम जी की है अत यह स्वरूप भा तो इनका ही हुआ। इसी ड्रस में ही तो सोताराम जी की पहिचान है।"

श्री दाता • ' सीताराम जी ने इस समय यह ड्रस धारण कर रखी है, इसी लिय ता यह उनका स्वरूप हुआ। अत यह ड्रस सीताराम जी का स्वरूप है, सत्य है। यही पजामा कमीज सीताराम जी धारण न करे तो उस आप सीताराम जी का स्वरूप कहेगें ?

एक बन्दा 'नहा। ड्रस के धारण करन पर ही तो वह ड्रस सीताराम जी का स्वरूप होगा।'

श्री दाता अभी दिन है या रात ? आपको क्या दिखाई दे रहा है ?"

एक बन्दा अभो तो दिन है।

श्री दाता 'दिन की क्या पहिचान है ?'

एक बन्दा प्रकाश से ही दिन की पहिचान है। अन्धेरा होन पर रात होती है।

श्री दाता ' यदि अ धेरे में भी प्रकाश दिखाई देने लग ता दिन होगा या रात इस पर सभी चुप हो गय। तब दाता ने फरमाया ' बन्दे के लिय तो सत्य और झूठ दोनो ही हैं किन्तु दाता के लिय न कोइ सत्य है और न झूठ। कारण दोनो ही स्वरूप उसके हैं और वह दोनो ही स्वरूपो से परे है। जो पाचो म रमता है वही हमारा पिया हैं, हमारा दाता ह अत दाता के लिय साच और झूठ सब बरावर ह।

"महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन अपने बन्धु-बान्धवों को देख कर मोहित हो गया, तब अर्जुन को आदेश मिला कि वह भगवान के आदेश का पालन कर युद्ध करे। अब अर्जुन युद्ध नही करता है तो भी मरता है और युद्ध करता है तो मरता ही है। युद्ध न करने में तो कर्म-बन्धन में बंधना होता है किन्तु युद्ध करने में तो कर्म-बन्धन से मुक्ति मिलती है। दाता के आदेश के पालन से तो कर्म से निर्लिप्ति रहेगी। यदि आपमें तर्क-बुद्धि आ जावेगी तो उम्र पूरी हो जावेगी फिर भी पार नही पाया जा सकेगा। दाता के आदेश में शका करना ही कर्म-बन्धन में बंधना है। महाभारत के अन्त में माता कुन्ती उस व्यक्ति की पूजा करना चाहती थी जिसने राजा दुर्योधन को मारा था व जिसने महाभारत के युद्ध में विजय प्राप्त की थी। उसने बारी बारी से सभी पाण्डवो को पूछा। अर्जुन नकुल, सहदेव आदि ने अपना अपना पराक्रम बताते हुए अपने शौर्य का बखान किया किन्तु यह कहा कि उन्होंने राजा दुर्योधन को नही मारा है। अन्त में युधिष्ठिर से पूछा गया तो उसने जवाब दिया कि वह तो स्वय ही मरा हुआ है, उसने तो राजा दुर्योधन का नही मारा है। जो स्वय ही मरा हुआ है वह दूसरो को क्या मार सकता है। कुन्ती यह जानती थी कि युधिष्ठिर कभी झूठ नही बोलता है, इसलिये उसने उसकी बात पर विश्वास तो कर लिया किन्तु असमजस में पड गई। वह इस बात को भगवान कृष्ण से भी पूछ सकती थी किन्तु उसने उन्हें नही पूछा, कारण वह जानती थी कि भगवान् कृष्ण के लिये तो सत्य और झूठ एक ही भाव दिखते हैं। दोनो ही उसके रूप हैं। अन्त में वह बभ्रुवाहन के पास गई। बभ्रुवाहन ने बताया कि वहाँ न तो कोई कौरव था और न कोई पाण्डव था। न कोई मरा और न किसी ने किसी को मारा। न कोई हारा और न कोई जीता। उसने तो एक चक्र का ताण्डव नृत्य देखा है। उस चक्र में से हजारो चिनगारियाँ निकल रही थी और वापिस उसी में समा रही थी। कितना सत्य उत्तर था बभ्रुवाहन का। वास्तव में न तो कोई मरा है और न कोई जिन्दा रहा। न कोई हारा हुआ है और कोई जीता हुआ है। यह तो कर्म का चक्र ही चल चल रहा है जिसमें अनेको बन रहे हैं व बिगड रहे हैं। इस पच तत्व के (पाण्डव के) काया रूपी रथ में वृत्तियाँ एव मन रूपी घोडियाँ और घोडे की लगाम सत्स्वरूपी दाता (सारथी कृष्ण) को

पकड़ा दो तब तुम्हें तुरन्त सफलता मिल जावेगी। यदि आपने जरासा भी सकल्प अपने मन में यह कर लिया कि यह तो मैंने किया है तो गिरने की स्थिति आ जावेगी। देखने में तो तीर धनुप से मेंहगें है क्यो कि विकास तो तीर ही करता है किन्तु किसकी शक्ति से ?

सतगुरू म्हारो पारधी, कस कस मारे बाण,
कसकत है निकसत नही, जब लग छूटे प्राण ॥

अत. सब कुछ दाता के चरणो में सौंप कर अपने आपको उसमें खो देने में ही आनन्द है। लडके पढते हैं। अध्यापक हर समय लडको के पास रहता नही है, किन्तु न रहते हुए भी हर दम ऐसा ही भान होता है कि वह उनके पास ही है। मास्टर की याद बनी रहती है, तब तक लडके पढते रहते है। दाता सतगुरू हर तरह से बन्दे की देखरेख रखता है। वह मास्टर की तरह से ही है। दाता बन्दे को अपना कुछ भान दिलाकर ओट में हो जाता है। बन्दा यदि उसकी याद को नही भूलता है और निरन्तर उसकी याद में रहता है, तो दाता दूर नही है। बन्दा दाता को सहज ही प्राप्त कर सकता है। सारी बातो की एक ही बात है कि चलनी मे पूला निकले जो अच्छा है। जीवन तो क्षण क्षण नष्ट हो ही रहा है। इसमें जितनी देर के लिये ये श्वास उसमें निकल जावे उतना ही अच्छा है।"

० ० ०

दुःख मन का ही है

श्री दाता माडल में तालाब की पाल पर विराज रहे थे। पास में कई भक्त लोग बैठे हुए थे। २५-३-८० का दिन था। सत्संग चल रहा था। उस समय कुछ अध्यापक श्री दाता के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। सभी दर्शन कर एक ओर बैठ गये। अवसर आने पर उनमें से एक ने पूछा।

अध्यापक...."दाता! ये सब मानव दुःखी हैं। जिधर देखो उधर दुःख ही दुःख है। ऐसा क्यों है?"

श्री दाता.... "लोग दुःखी हैं। आप जानते हैं, ये क्यों दुःखी हैं। सभी मानव अपने मन के कारण ही दुःखी है। मानव जीवन में अभाव ही अभाव है। जिधर भी देखो उधर अभाव है। इस अभाव के कारण सारा ही संसार दुःखी है। मनुष्य भोग की इच्छा करता है। भोग मे से तुष्टि नहीं होती इसलिये नई नई इच्छाएँ जागृत होती रहती हैं। इच्छाएँ अनन्त हैं। उनका कोई अन्त नहीं। एक इच्छा पूरी भी नहीं हो पाती है कि दूसरी इच्छा उठ खड़ी होती है। सभी इच्छाओं का पूरा होना सम्भव नहीं अतः स्वभावतः इच्छा के पूरी न होने पर दुःख होगा ही। आपने इच्छा की कि आपकी शादी हो जाय, आपकी शादी हो गई। आपकी इच्छा हुई कि आपके सन्तान हो जाय, आपके सन्तान हो गई। आपकी इच्छा से आपका फैलाव हो गया। फैलाव का भार आप पर पड़ा। अब उस भार को वहन करना आपके लिये कठिन हो गया। आप घबरा कर दुःखी हो गये। अब आप ही बताइये कि इस दुःख के लिये दोषी कौन है?'

अध्यापक... "इस मे तो आपका मतलब यही हुआ कि गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना दुःख दायी है।"

श्री दाता...."आप समझे नहीं। प्रसंग था मानव दुःखी क्यों है। मानव की इच्छाएँ अनन्त हैं। वह इच्छाएँ करता है किन्तु सभी इच्छाएँ पूरी हो यह सम्भव नहीं। इच्छाओं के पूरी न होने पर वह छटपटाता है,

दु:खी होता है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना बुरा नही है। गृहस्थ जीवन भी एक अच्छा जीवन है। यदि आपको दाता की चाह है तो गृहस्थ जीवन में भी कोई रुकावट नही है, विरक्त जीवन में भी कोई रूकावट नही है। दोनो ही में रहकर आप दाता की सरलता से अनुभूति कर सकते है। माकाराम का कहने का मतलब है कि आप अपनी इच्छाओं से किसी जीवन को स्वीकार करते हैं, और फिर आनेवाले अभावो के कारण दु:खी होते है, तो दोष किसका है। गृहस्थ जीवन में रहकर शरीर की रक्षा के लिये अनेक काम करने पडते है, उसी तरह विरक्त जीवन में भी शरीर की रक्षा के लिये आवश्यक सभी कर्म करने ही पडते हैं। सबसे बडी बात है कर्मों में लिप्त न होने की। सभी काम उसके समझ कर करते जाओ तो दु:ख का कोई कारण ही नही है। सब काम हम अपने समझ कर करते है इसीलिये तो दु:ख होता है। वैसे गृहस्थ जीवन एक श्रेष्ठ जीवन है कारण इस जीवन में रहकर सेवा का अच्छा अवसर है। जितने भी ऋषि-महर्षि हुए है, वे सब गृहस्थी थे उन्होने गृहस्थ धर्म को ही अच्छा समझ स्वीकार किया। यह तो आप जानते ही हैं, कहावत भी है कि सेवा में मेवा मिलता है। ससार में जितने भी कर्म है उनमें सेवा कर्म निराला है। इसका कारण है, सेवा कर्म मनुष्य को दाता के निकट पहुँचा देता है। अतः आपका यह सोचना कि गृहस्थ-जीवन दु:खदायी है, ठीक नही है। ये जितने दु:ख है वे तो मन के दु:ख हैं। मन ने जिसको दु:ख मान लिया वह दु:ख है और उसने जिसको सुख मान लिया वह सुख है। मन के हारे हार हैं, मन के जीते जीत। आप दु:ख से बचना चाहते हो तो अपने मन पर आधिपत्य करो। मन को अपने काबू में करके उसे दाता के चरणों में लगा दो फिर आपको कोई दु:ख नही होगा। फिर आप गृहस्थ में रहे या सन्यासी बने कोई अन्तर नही पडेगा।"

"मनुष्य को गृहस्थ जीवन में रहते हुए उसमे अलग होकर रहना चाहिये। जिस तरह कमल जल में रहते हुए जल से अलग रहता है, उसी प्रकार मनुष्य को गृहस्थ जीवन में रहना चाहिये। उसे अपने कर्तव्यो का पालन करते हुए सांसारिक उलझनो से दूर रहना चाहिये। सब कुछ करते हुए भी अपने को अकर्ता मान कर चलना चाहिये।

इमी म आनन्द है। कर्ता तो एक मेरा दाता है। जो कुछ हो रहा है उसका कर्ता वही है। मनुष्य अपने को कर्ता मान बैठता है, इसलिय ही सारा भार उस पर आ पडता है और वह दु खो हो जाता है। आप अपने ऊपर कुछ मत लीजिये। सब कुछ उसी का (दाता का) मान कर चलिये। फिर देखिये आपको कुछ भी दु ख नहीं होगा।"

"दाता ने आपको गृहस्थ-जीवन दिया है सेवा के लिये। प्रसन्नता से उसे भोगिये और डट कर सेवा करिये। यदि वह आपको सतान देता है तो प्रसन्न हो कर उसकी उदारता के गुण गाइये। यदि वह आपकी सतान को वापिस ले लेता है तो भी दुखी न होइये। यह समझिये कि जिसकी सतान थी उसने उसे वापस ले लिया। आप भार विहीन हुए। दुनिया के जितने भी सम्बन्ध हैं वे सब मन के हैं। मन ने मान लिया, इसलिये माता, पिता भाई, बन्धु, पत्नी, पुत्र, आदि हैं। यदि मन मान ले कि ये मेरे अपने कुछ नहीं हैं तो वे कुछ नहीं हैं। यह तो मन के मानने का सौदा है। आप इस मन पर ही काबू कर इसको दाता के चरणों म लगा दो तो सारा दु ख ही मिट जावेगा।'

"आपने वट वृक्ष देखा है। वह कितना लम्बा, चौडा और विस्तृत है। वट वृक्ष के समान आपने अन्य पेड नही देखा होगा। किन्तु वट वृक्ष का बीज कितना छोटा होता है। बीज तो छोटा सा किन्तु वृक्ष का आकार कितना विशाल ! आप जानते हैं वट वृक्ष की महानता को ? वट वृक्ष का महत्व अन्य वृक्षो से अधिक क्यो है ? क्या कारण है इसका ?"

अध्यापक "वट वृक्ष सब से बडा होता है इसीलिये इसका महत्व अन्य वृक्षो से अधिक है।"

श्री दाता केवल यही बात नही है। आप देखते होंगे कि कितने जीव इस पर आश्रित है। प्रात काल वट वृक्ष के नीचे जाकर तनिक समय के लिये खडे हो। आप असख्य चिडियाँओं का स्वर सुन लेंगे। वट वृक्ष असख्य जीवो का बसेरा पार्थिव-जीवन का आधार है। वट वृक्ष का सारा जीवन सेवामय है। थके व दुखी राहगीर उसकी ठण्डी छाँह में बैठ कर शान्ति का अनुभव करते हैं। थकावट दूर होने पर उनका

मन खिल उठता है और वे वट वृक्ष की प्रशंसा करते नहीं अघाते। वट वृक्ष का कण कण प्राणियों की सेवा में रत है, इसलिये ही भगवान शंकर ने उसे अपना निवास स्थान बनाया है। जिस प्रकार वट वृक्ष है उसी तरह गृहस्थ-जीवन भी है। मनुष्य उसे भी सेवा में रत होकर स्वर्ग बना सकता है। गृहस्थ-जीवन दाता की प्राप्ति का हमें तो सरल तम माध्यम दिखाई देता है, अतः गृहस्थ जीवन से उपराम व दुःखी होना उचित नहीं।"

अध्यापक——"क्या मनुष्य को सच्चा सुख भी मिल सकता है या यह कोरी मृगतृष्णा ही है।"

श्री दाता—"यदि कोई मनुष्य सच्चे सुख की इच्छा करे तो कठिन क्या है। दाता के दरबार म आने वाले की इच्छाएँ पूर्ण ही होती है। यदि आप सच्चे सुख की इच्छा करेगें तो आपको सच्चा सुख भी मिलेगा। सच्चे सुख से आपका मतलब उस परमानन्द से है जो शाश्वत है। किन्तु इसको प्राप्त करने के लिये आपको बहुत कुछ करना पड़ेगा। आपको अपनी खुदी मिटा देनी होगी। आपके अस्तित्व को दाता के अस्तित्व मे मिला देना पड़ेगा। आपको एक कठपुतली के समान होना पड़ेगा। आपने कठपुतली का नाच देखा होगा। नचाने वाला जैसा उसको नचाता है वैसा वह नाच करती है। अपना कुछ भी नाच नहीं रखती। आप कठपुतली तो हो ही, किन्तु आप अपने को अपने नाच अर्थात् कर्मो का कर्ता धर्ता समझे बैठे हो, इसलिये सच्चे सुख से वंचित हो। आप नाचने वाले हो और दाता नचाने वाला है, यह समझकर नाचते रहो। नाचते रहो इसी में आनन्द है। आपको सच्चा आनन्द तो तभी आवेगा जब दाता की अनुभूति होगी। दाता की प्राप्ति पर ही दुःखों का अन्त होगा।"

अध्यापक——"वहाँ पहुँचें कैसे ?"

श्री दाता——"आपने क्या पास किया है ?"

अध्यापक——"मैंने एम. ए. तो कर लिया है व पी. एच डी. की तैयारी कर रहा हूँ।"

श्री दाता----"अपने एम ए कितने दिनो में पास किया ?"

अध्यापक----"कई वर्षो में पास किया है। बचपन से ही इसकी तैयारी में लगा हूँ।"

श्री दाता---"ठीक है। बचपन से ही आप इस परिक्षा के पास करने की इच्छा कर तैयारी कर रहे हैं। सोलह वर्ष के निरन्तर प्रयत्न पर आप एम ए पास कर पाये। इच्छा करने पर एम ए आपसे दूर नही रहा। इसी प्रकार आप उसकी (दाता की) इच्छा कर प्रयत्न करे तो वह आपसे दूर नहीं है। आपको उसकी इच्छा तो है नही और बात लम्बी-चौडी करे तो इससे बात बनती नही। किसी महापुरुष ने फरमाया है कि आशिक है तो माशूक दूर नही। यदि है आशिक तो वही बन जाता माशूक है। राधा कृष्ण कृष्ण रटते रटते स्वय ही कृष्ण बन गई। उसकी (दाता की) इच्छा में वही है। उसके मिल जाने पर फिर आनन्द ही आनन्द है।"

अध्यापक----"हम न चाहते हुए भी दुनिया के झझटो, जजालो में फस जाते हैं। ऐसा क्यों होता है ?"

श्री दाता---'आप चाहते है इसलिये ही तो दुनिया के कामो में उलझते हो। आप यदि नही चाहते हो तो आपको कौन उलझाने वाला है। साधु को, रोगी को और भोगी को फँसाने वाली वस्तु मान और प्रतिष्ठा है। मान और प्रतिष्ठा ने बडे-बडे ऋषी-महर्षियो को भी कही का नहीं रखा। मान और प्रतिष्ठा ही मनुष्य को नीचे गिराने वाली है, अत मान और प्रतिष्ठा से बच कर रहना चाहिये। भोगेच्छा में आकर्षण है किन्तु मन को उधर से हटा कर दाता में लगा देने पर उधर का आकर्षण फीका हो जाता है। अत नाटक के पात्र बन कर रहो। स्टेज पर रह कर अपना अपना पार्ट करो, किन्तु किसी पात्र का प्रभाव अपने पर न पड़ने दो। याद रखो, जो पानी वृक्ष को हरा भरा कर सकता है, वही पानी उस वृक्ष को नष्ट भी कर सकता है। आप पानी वृक्ष के मूल में दो तो वह पानी वृक्ष को पत्र पावेगा व हरा भरा करेगा किन्तु उसी पानी को मूल मे न देकर पत्ता व फल फूलो को दें तो वे शीघ्र ही

गल कर नाश को प्राप्त होग। मान और प्रतिष्ठा भी दाता की हैं। वन्दे को उससे क्या लेना देना। गृहस्थ जीवन आपको सेवा का मौका देकर दाता की प्राप्ति का मौका देता है, किन्तु गृहस्थ में रहते हुए आप उसको भूल जावे, अपने को ही कर्ता धर्ता समझने लगे तो फिर नष्ट होने के सिवा चारा ही क्या है। अत मन की गति को मोड लो। मन को मोड लेने पर जिस गति से आप दु ख का अनुभव करते थे अब उसी गति से आनन्द का अनुभव करने लगेंगे।

'साधु होना सरल काम नही है। बडा कठिन है। घर-बार छोड देना व कपडे रगा देना या शरीर पर भस्म रमा देना पर्याप्त नही है। घर-बार छोड देने मात्र से या भस्म रमाने मात्र से साधू नही हो जाता। साधु होने पर भी यदि मन की दौड नहीं मिटी तो फिर वेप धारण करने से क्या लाभ हैं। इससे तो वह व्यक्ति लाख गुना अच्छा है जिसने गृहस्थ में रहते हुए अपने मन को जीत लिया। जो उस के मार्ग पर डटा रहता है वही सच्चा साधु है। जो गति नीचे को जा रही है उसी गति को ऊपर की ओर कर दो फिर दु ख रहेगा भी नहीं। फिर आनन्द ही आनन्द है। आनन्द रूपी अपार सागर के किनारे पहुँचने पर दु ख है नही, ऐसा सुना है।"

० ० ०

शरणागती ही सार है

सन् १९८० के ३१-३-८० से ३०-४-८० तक उज्जैन मे सिंहस्थ के स्नान थे। इस कुंभ के अवसर पर अनेक सन्त जनो का उज्जैन मे पधारना हुआ। श्री दाता का पधारना भी इस अवसर पर उज्जैन हुआ। श्री दाता का विराजना शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के छात्रावास मे हुआ। दिनाक १४-४-८० को श्री दाता ने अनेक सतो के दर्शन कर सतो के निवास की परिक्रमा की। श्री दाता के आगमन को सुन कर अनेक लोग दाता के दर्शनार्थ छात्रावास मे आ उपस्थित हुए। लोगो की भीड सी लग गई। कई अधिकारी एव मेले के प्रबन्धक भी आये। कई जिज्ञासु श्री दाता के मुखारविन्द से कुछ सुनना चाहते थे। उनकी जिज्ञासा को देखकर श्री दाता ने फरमाया, यह सब माया दाता की ही है। आप लोगो ने इस मेले म अनेक रूप देखे हैं किन्तु य सब रूप उस एक (दाता) के ही तो हैं। सभी रूपो म वही एक विद्यमान है। सभी अपने अपने स्थान में ठीक है। आपने देखा होगा कि इस मेले के प्रबन्ध हेतु अनेक कार्यकर्ता है। कई बडे अधिकारी है तो कई छोटे लोग। कोई कम कोई ज्यादा नही। इसी तरह न कोई खराब है न कोई अच्छा है। सभी अपने अपने स्थान पर अच्छे है। सभी अपने अपने कर्तव्य के पालन म लगे हैं। सभी का एक ही उद्देश्य है। सभी एक ही उद्देश्य की पूर्ति म लगे हुए हैं अत किसी को कम, किसी को अधिक बताना उचित नही है। सब समान है सब एक ही हैं। उसी एक सरकार के सभी अग हैं और सभी उसी सरकार का ही काम कर रहे है।

"यह आपका शरीर है। शरीर का प्रत्येक अग आपका ही काम कर रहा है। शरीर में मलमूत्र भी है। मल मूत्र को आप खराब बताते हैं, किन्तु यह मत भूलो कि शरीर की जो सुन्दरता है वह उसी मल-मूत्र की है। मल-मूत्र से घृणा करना शरीर के प्रत्येक अग से घृणा करना ही होगा। यह ठीक नहीं है। आपका रूप विशाल है। आपके प्रत्येक अग म वह विशाल रूप विद्यमान है। यदि आपकी अंगुली पकड कर कोई खींचे तो प्यार से आप पूरे के पूरे खिंच जाते है अत चोटी से लेकर एडी तक आप एक रूप ही है।

"ये जितने धर्म, जितने मत आप देख रहे हैं वे सब के सब उसी के हैं। इस महल के अनेक द्वार, दरवाजें और खिडकियां हैं। इन सब का मार्ग तो एक ही स्थान को जाता है। उसके दर्शन हेतु आप किसी भी द्वार से या किसी भी खिडकी मे होकर महल में जा सकते हैं यदि आपको इच्छा उसके दर्शन करने की है और चलने की आप में ताकत है तो किसी भी द्वार से या खिडकी से आगे बढ सकते हैं। आगे बढेगें तो, अवश्य उसकी झलक मिलेगी। किन्तु हम तो अपग और शक्ति हीन हैं। हम में चलने की ताकत ही नहीं है। किसी तरह चले भी सही, किन्तु चलते चलते दिन ही ढल जाय (जीवन का अन्त हो जाय) तो सब बेकार हो जावेगा। हम तो भाई! शक्तिहीन और असमर्थ है। चलने की और उसको ढूढने की शक्ति हम में नहीं है। दर्शनो की इच्छा लेकर द्वार पर ही बैठ हैं। उसके दर्शन नही हो पाते है और यदि उसके कुत्ते के भी दर्शन हो जावेगे तो उसके दर्शन ही कर मन को राजी कर लेगें। यदि उसका कुत्ता ही प्रसन्न हो जाय तो काम बन जावेगा। यह कुत्ता ठहर जाय तो काम बन जावेगा। यह मन रूपी कुत्ता है, जो दाता के दरबार में जाकर ठहर जाय तो काम बन सकता है। उसकी याद बनी रहे इसी में मौज है।"

एक बन्दा "भगवन्! हिन्दू धर्म म अनेक वाद चल रहे हैं। यहाँ अनेक महन्त व मठाधीश आये है। सभी अपने-अपने वाद के पुजारी हैं। सामान्य व्यक्ति इनके वादो में आकर भ्रमित हुए विना नही रहता है।"

श्री दाता "सभी वाद अलग अलग तो दिखाई देते हैं लेकिन सब वाद उसी एक के है और सभी वादो मे वही एक है। दाता एक होते हुए भी उसके रूप अनन्त है और सभी रूपो में वही एक दाता है। चक्कर है तो 'मैं' व 'मेरी बुद्धि' का है। जो व्यक्ति इस चक्कर में जा गिरता है वह भ्रमित हुए विना नही रहता है। वहाँ तक जाने का एक निश्चित मार्ग है और वह शरणागति का मार्ग है। आप किसी भी मठाधीश का प्रवचन सुने या किसी भी वाद के अनुयायी बने, शरणागति के बाद कुछ बचता ही नही है। शरणागति के लिये उसकी चाह ही मुख्य है। पिया की चाह ही सब कुछ है। आप कुछ भी काम

क्यो न कर। चाहे आप कोयले की दलाली करे, चाहे स्वर्ण का सौदा करे, यदि आपको अपने पिया से प्यार है और उसकी पूरी चाह है तो समझलो कि वह आपके पास है। यह शरीर तो काच की हाँडी के समान है। काच की हाँडी में रोशनी है तब तो ठीक, वरना वह कोरी हाँडी ही है। उसी तरह इस शरीर में उस पिया की रोशनी है और यह शरीर उस रोशनी से प्रकाशित है तो इसका मूल्य है अन्यथा यह तो मिट्टी की कच्ची हाँडी है सो टूटेगी ही। इस शरीर के नष्ट होने के पहिले उस नूर को देख सके तभी मौज है, मनुष्य जीवन सार्थक है, वरना मनुष्य जीवन ग्रहण कर भाड झोकना ही है।'

"यह विश्व दाता का लम्बा चौडा बाग है। इस बाग में आप और हमारे जैसे रग बिरगे फूल हैं। सभी फूल एक से एक बढ कर है। सभी अपने अपने रग में रगे हुए हैं, मस्त हैं। ऐसे फूलो को आप अन्दर ही अन्दर बांध कर रखोगे, तो जानते हो क्या होगा ! इन फूलो का अन्दर ही अन्दर दम घुट कर नाश हो जावेगा। इन्हें नष्ट होने से बचाना हो तो इन्हें देखने की छुट्टी दो। जो देखना चाहे उन्हें देखने दो, जो दौडना चाहे उन्हे दौडने दो। पिया की चाह पैदा हुई और उसे प्राप्त करने की तीव्र इच्छा हुई कि सब दौड शान्त हो जावेगी।"

"उज्जैन शहर बडा प्राचीन और विस्तृत है। यह ऐतिहासिक शहर है। आप इस पूरे शहर को देखना चाहते है। नीचे खडे होकर देखना चाहे तो आप पूरे शहर को एक साथ नही देख सकते है। एक साथ देखना ही है तो ऊपर चढकर देखो। हवाई जहाज में बैठकर देखो तो आपको पूरा का पूरा शहर दीख जावेगा। यह शरीर रूपी शहर है। इसको देखने के लिये आपको अपनी दृष्टि ऊपर को करनी होगी। जब आपकी दृष्टि नीचे से ऊपर की ओर हो जावेगी तब आपका काम बन जावेगा।"

'चार औरते हैं और चारा चार रग की साड़ियाँ पहिने हुई हैं। प्रत्येक साडी का रग एक दूसरे से भिन्न है। इन औरतो ने साडियाँ अपने पिया से मिलने के लिये ओढी है। अब ये औरते अपने पिया से न मिलकर साडी के रग को ही देखती रहेगी तो जहाँ हैं वही तो रह जावेगी।

यद्यपि सब रंग उसी के हैं और सभी रंगो में वह है किन्तु जो उसको देखना चाहती है उसको तो वह मिल जाता है और जो रंगो को देखती है वह उसी में उलझ जाती है। योग, ज्ञान, भक्ति और प्रेम चारो ही मार्ग उसके हैं। जो जिस मार्ग को महत्व देता है उसके लिये वही मार्ग उपयुक्त होता है। मार्गो की इच्छा न होकर मार्ग जिसके लिये हैं उसकी इच्छा होना जरूरी है। जो इच्छा करता है उसके लिये मार्ग अपने आप सरल हो जाता है। ध्रुव को देखो। वह छोटासा बालक था। वह योग, ज्ञान, भक्ति और प्रेम को क्या जाने। उसके पास तो उसको प्राप्त करने की तीव्र इच्छा थी और अपनी इच्छा को पूरी करने की पक्की लगन थी। निकल पडा घर से तो मार्ग अपने आप मिल गया। पिया की उत्कट इच्छा होने पर स्वयं को आना ही पडता है। प्रल्हाद, गोपियाँ, उद्धव आदि अनेक महान प्राणी उदाहरण स्वरूप हैं जिन्होंने अपने प्रबल प्रेम से उसको वश में कर लिया। प्रबल प्रेम और उसकी उत्कट इच्छा के सामने कोई रूकावट तो होती ही नही। प्रेम में वशी भूत होकर तो मेरे दाता को नियम तक बदल देना पडता है। किसी प्रेमी भक्त ने यह भी दिया —

प्रबल प्रेम के पाले पड कर प्रभु को नियम बदलते देखा।
उसका मान भले ही टल जाय, भक्त मान नही टलते देखा ।।
जिनकी केवल कृपा दृष्टि से, सागर सप्त उबलते देखा।
उनको गोकुल के गोरसपर, सो सो बार मचलते देखा ।।
जिनके चरण कमल कमला के कर तल से न निकलते देखा।
उनको हरि भक्तो के कारण, कन्टक पथ पर चलते देखा ।।
जिनका ध्यान विरंचि शम्भू सनकादिक, से न सम्भलते देखा।
उनको ग्वाल सखा मण्डल में, लेकर गेंद उछलते देखा।।
जिनकी वंक भृकुटी के भय से, सागर सप्त उफनते देखा।
उनको ही यशोदा के भय से, अश्रु बिन्दु दृग ढलते देखा ।।

यह मन तो बडा हरामी है। इसको थोडा सा भी ढीला छोडा कि बहक जाता है। पग पग पर तर्क-वितर्क करता है। अर्जुन को देखो। कृष्ण से महान शक्तिशाली सतगुरू निरन्तर उसके साथ थे, फिर भी

पग पग पर तर्क करना ही रहा। पूरा गीता का उपदेश कृष्ण ने उसे सुना दिया फिर भी उसकी शका दूर नही हुई। अन्त में भगवान कृष्ण को कहना पडा --

> सवधर्मा परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
> अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

अर्जुन के शरणागत होने पर ही उसके सब तर्क और उसकी सभी शकाएँ दूर हुई। आप सौ वर्ष भी पूरे कर लो, किन्तु शकाएँ और तर्क वितर्क समाप्त नही होग जब तक आप समर्पण करने को तैयार न हो जाओ। अत हिसाब किताब बकार है। साडी के रग को देखने और उसके तार तार को गिनने से कोई लाभ नही है।"

"उज्जैन में अनेक दुकाने हैं और वे सब माल से भरी पडी हैं। एक बन्दा बाजार म फिर रहा है। उसके पास पसा नही है और न दुकानो से कुछ खरीदना ही है। फिर भी वह सब दुकानो पर जाता है, भाव पूछता है और उनमें उलझता है। इससे उसको क्या लाभ होने का। समय और शक्ति का अपव्यय ही तो है। जिसके पास पैसा है, जो खरीदना चाहता है वह चुपचाप दुकान पर पहुँचता है और बिना किसी उलझन के इच्छित सामान खरीद लेता है। उसके समय और शक्ति का कोई अपव्यय नहीं होता। वह तो शीघ्र हो अपना काम बना लेता है। होनी चाहिये वस्तुको लेने की इच्छा।"

एक बन्दा जो श्री दाता के पास ही बैठा था उसने श्री दाता से पूछ ही लिया।

बन्दा "भगवन्! उज्जैन एक पौराणिक स्थान है। यह अत्यधिक पवित्र तीर्थ स्थल है। यहाँ अनेक ऋषि-महर्षियो ने तप किया है। नाथो की यह प्रमुख भूमि रही है। भगवान कृष्ण ने यही सदीपन ऋषि के आश्रम में रह कर अध्ययन किया था। यहाँ क्षिप्रा महाकालेश्वर के निरन्तर पाद प्रक्षालित करती रहती है। एसी पावन नगरी में आने पर तो मनुष्य की सभी उलझने समाप्त हानी चाहिए।"

श्री दाता . . . . "आप ठीक कह रहे हैं। किन्तु आप यह तो बताइये कि कौन सी भूमि उसकी है और कौनसी भूमि उसकी नहीं है ? सभी भूमि गोपाल की, उसमें अटक कहां ? केवल उज्जैन ही क्या पूरी भारत भूमि ही महापुरुषों की क्रीडा स्थली रही है। जिस तरह तीनों गुणों में गुण विद्यमान है, नवनाथों में नाथ हैं उसी प्रकार माया और ब्रह्म में आप हैं। सभी वस्तुओं में आप (दाता) हैं। आप से परे कुछ है भी नहीं। आप तक पहुँच जाने पर सभी प्रकार की उलझनें समाप्त हो जाती हैं। कोई उलझन बाकी बचती ही नहीं। जितनी भी उलझन हैं वे सब मन और बुद्धि की हैं। मन और बुद्धि के चक्कर स्थान विशेष के महत्व को समाप्त कर देते हैं।'

एक बन्दा · "भगवन् ! यहां अनेक महापुरुष हुए हैं किन्तु ऐसा सुनने में आया कि उनमें भी अहं आदि विकार आ ही जाते थे।"

श्री दाता · · · "समर्थ को नहीं दोष गुसाई। ऐसे पुरुषों की क्या बात की जाय जो सकल्प मात्र से अजर अमर हो जाय। जिन महापुरुषों के न आदि का पता न अन्त का पता, उनका पार कौन पा सकता है ? इस प्रकार की बातों में अपनी बुद्धि को उलझाना उचित नहीं है। वे महापुरुष तो ऐसे हैं जो काच में ही सूर्य को चमका देते हैं। गोपीचन्द जी ने जब शरीर धारण किया उस समय एक ओर उनकी बहिन की शादी हो रही थी और दूसरी ओर उनके पिता शरीर छोड रहे थे। जरण, मरण और परण तीनों बातें एक साथ हुई। लोगों ने कहा यह अभागा बालक पैदा हुआ है, किन्तु वही बालक महापुरुष हुआ। अतः महापुरुषों का पार कौन पा सकता है। महापुरुष किस उद्देश्य को लेकर क्या खेल करते हैं, इस बात को वे ही जानते हैं। अन्य व्यक्ति उनके राज को क्या समझ सकते हैं। उन लोगों की बातें साधारण मन-बुद्धि से परे है। वहां अपनी बुद्धि काम नहीं देती। वहां तो शरणागत होकर नाक रगड देने में ही लाभ है। आप जिधर भी देखो, सर्वत्र वही वह है। कौनसा स्थान ऐसा है जो उससे सूना है। बस उसकी तीव्र इच्छा हो जाय तो वह दिखाई देने लग जाय।"

"ससार के जितने भी कार्य हो रहे हैं, सब कार्य भिन्न भिन्न लोगो द्वारा होत हुए भी उसी एक के हे। नाच कठपुतली का है किन्तु नचाने वाला तो वही है। माया रूपी अध कार में नाच चल रहा है। नाच परदे में है, परदे के बाहर नहीं। अत इस ससार की हाय-हाय और सभी टट-फिसादो में उसीका आधार रख कर उसकी लगन रखनी चाहिये। उसके ध्यान में ही आनन्द है। यही मस्ती है। कर्म तो करने ही पडेंगें। यह शरीर रूपी गाडी है इसे चलाना तो पडगा ही। माया से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। विना माया के अपने स्वरूप का भान नही होता। अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु माया का आश्रय लेना ही होगा। ऐसा साधु बनाओ जो गृहस्थ न हो। आप गृहस्थ किसे कहते है? जो गृह में स्थित रहता है उसी को गृहस्थ कहते हैं। एक समय की बात है। जयपुर क्षेत्र में शाहपुरा के पास स्थित त्रिवेणी में नारायण दासजी के आश्रम पर माकाराम को रमणो हो गया। जयपुर के कई लोग साथ में थे। उनमें से कुछ लोग तो अभी यहाँ भी बैठ हैं। वहाँ रात्रि के समय सत्सग चल रहा था। उस समय एक साड कमरे के बाहर आकर खडा हो गया और ध्यानस्थ हो गया। लोगा न उसको हटाने की बहुत चेष्टायें की। उसको पीटा भी किन्तु वह वही डटा रहा। जब तक सत्सग चलता रहा तब तक वह वही खडा रहा। सत्सग के समाप्त होते ही वह वहाँ से हट गया। उस रात्रि को सत्सग लगभग पाँच छ घण्टे चला होगा। इतने समय तक वह साड ध्यानस्थ होकर खडा रहा। प्रकृति किसे कहते हैं? यही तो प्रकृति है। आप उसमें लगन लगाकर ता देखो। लगन में मगन होने पर प्रकृति ही नमन करने लग जावेगी। किसी ने ठीक ही कहा है - 'राम वियोगी ना जिये, जिय तो बौरा हाय।' होन को तो सब हो जाता है। पिया का आनन्द साधारण आनन्द नही है। पिया का आनन्द प्राप्त कर लन पर तो स्वय का अस्तित्व रहता ही नही। यहा तो मरना पडता है। मन की प्रधानता को समाप्त कर उसे (दाता) ही प्रधानता देनी होती है। एक रति बिन पाव रति। आपने जो कुछ भारी बाझ उठा रखा है वह इस रति बिना सब व्यर्थ है। तुम लोग इस विश्व क भार स दब जा रहे हो क्यो कि तुम इस विश्व की वस्तुओ में उसे नही देख रहे हो। देखने की वस्तु तो केवल मात्र वही है अत

देखना हो तो केवल मात्र उसी एक (दाता) को देखो। आनन्द की प्राप्ति के लिये उसी की ओर बढो। वह तुमसे दूर नही है। उस ओर बढने का प्रयास तो करो। ये वृत्तियाँ रूपी चिडियाँये इस शरीर रूपी खेत को नित्य प्रति चुग रही है। स्वासा रूपी दानो को चुगती जा रही है। जब चिडियाँये सब दानो को चुग लेगी तो फिर आपका क्या होगा? तनिक सोचो तो सही। फिर पछताओग और हाथ मल मल कर रोओगे। इस लिये समय रहते चेन सको तो चेत जाओ। सब बातो की एक ही बात है कि सब प्रपचो को छोड कर उसी में (दाता में) अपने मन को रमा दो। किसी महापुरूष नें फरमाया हैं —

राम नाम रट रे बन्दे, राम नाम से तर जासी।
इसी आशा से बैठ मुसाफिर, कदीक डाली नम जासी॥

उसकी ओर बढने से व उससे प्रेम करने से वह प्राप्त होता ही है। गौराग महाप्रभु, महाप्रभु ही हुए है। अनेक मनुष्य उनकी शरण में जाकर अपने जीवन को सार्थक बना चुके थे। एक राजा को भी उनकी शरण मे जाने की इच्छा हुई। वह अपनी उत्कट इच्छा के वशीभूत होकर उनके पास गया और अपने को शरण में लेने की प्रार्थना करने लगा। गौराग महाप्रभु ने उसकी प्रार्थना पर तनिक भी ध्यान नही दिया। उल्टा उसे डाटफटकार कर शरण में लेने से मना कर दिया। उसको कहा गया कि वह तो बडा नीच और पापी है। उसके मुह को देखने का भी धर्म नही हैं। किसी भी अवस्था में उसे शरण में नही लिया जा सकता। इस तरह के कठोर शब्द महाप्रभु के श्रीमुख से कभी किसी को सुनने को नही मिले थे, अत. सभी लोग आश्चर्य चकित होगये। उन्होने सोचा कि इस राजा का भाग्य ही फूटा है। इसे तो महाप्रभु कभी शरण में लेगें नही। राजा बडी तीव्र इच्छा लेकर आया था। वह हताश हो गया और एक ओर जाकर रोने लगा।"

"राजा का महाप्रभु के चरणो में विशुद्ध प्रेम जागृत हो गया था। महाप्रभु के प्रति उसके हृदय में अपार श्रद्धा थी। उसने सोचा कि ऐसे शरीर को जिसको महा प्रभु नही देखना चाहते, रखने से क्या लाभ।

इसे तो अब समुद्र के अर्पण कर देना चाहिये। यह सोच कर वह समुद्र की ओर रवाना हुआ। दाता की कुदरत ही निराली है। जाते जाते उसके मन में विचार आया कि मरने के पहले एक बार महाप्रभु की छवि को तो निहार ले। ऐसा विचार आते ही वह लौट पडा। अगले दिन वह उस मार्ग पर एक ओर जाकर खडा हो गया, जिस मार्ग से महाप्रभु अपने शिष्यो के साथ कीर्तन करते हुए पधारा करते थे। उसने अपने आप को लोगो की ओट में इस तरह छिपा लिया कि महाप्रभु की निगाह उस पर न पड़ सके किन्तु वह महाप्रभु के दर्शन ठीक तरह से कर सके।"

"चैतन्य देव अपनी मण्डली के साथ कीर्तन और नृत्य करते हुए उधर से पधारे ही। 'श्री कृष्णा चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा, हरे कृष्णा हरे राम राधे गोविन्द' की धुन चल रही थी। कीर्तन मस्ती से चल रहा था। अजीब समा थी। अनोखा दृश्य था। छिपे होते हुए भी वह राजा अपने आप को नही रोक सका। वह भी भाव मग्न होकर नृत्य करने लगा। इधर महाप्रभु भावमग्न होकर नृत्य कर ही रहे थे। कीर्तन-नृत्य करते करते आगे बढकर अचानक उन्होने उस राजा को आपने बाहो में भर लिया। उन्होने उसे अपन हृदय के लगा दिया। राजा के व महाप्रभु के नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बह रहे थे। सभी लोग अवाक् होकर उस दृश्य को देखने लगे। सभी लोग परम आश्चर्य चकित हो गये। महाप्रभु ने जिस व्यक्ति को नीच और पापी कह कर ठुकरा दिया उसी व्यक्ति को वे बाहो में लेकर प्रेमाश्रुओ से उसे स्नान करा रहे हैं, यह कैसी विचित्र बात है? आज तक कभी महाप्रभु का हुक्म नही टला। आज यह उल्टी बात कैसे हो गई? आज चन्द्रमा आग बरसाने लगा व सूर्य शान्त हो गया। यह सब कैसे हो गया? निश्चित स्थान पर पहुँचने पर जब महाप्रभु अपनी सामान्य स्थिति में आये तब लोगो ने भगवान् से इसका कारण पूछा। महाप्रभु ने बताया कि उन्होने राजा का मुह न देखने के लिये कहा था। उन्होने तो सत्य ही कहा था। अब वह राजा का मुह रहा ही कहाँ है। वह तो भगवान् का मुह हो गया। भगवान् को तो नमन करना ही होता है। भगवान् से विमुख होकर कहाँ जाया जा सकता है। वह राजा जो नीच और पापी था वह तो प्रेम रूपी आँच में जल कर भस्म हो गया। अब जो कुछ बच रहा है वह तो आप ही आप है।

कैसी अद्‌भुत बात है। क्षण मात्र में महाप्रभु की कृपा से राजा क्या से क्या हो गया। कहाँ तो वह हताश होकर आत्महत्या करने जा रहा था और कहाँ भगवान् का अति प्रिय जन हो गया। वाह रे प्रभु! तेरी लीला। भाई! सच्चे मन से एक मिनिट के लिये किया हुआ उसका स्मरण व्यर्थ नही जाता। अपने भावो में तो परिवर्तन लाया जाय। बिना भावो के परिवर्तन के आपका भाव नही बढ सकता है। आपने अपने भाव दाता की ओर किये नही कि स्वय दाता आगे बढ कर आपको अपना लेगा। वह कभी आपके पापो या आपके कर्मो को नही देखता है। वह तो एक मात्र आपके भावो को ही देखता है। आप कैसे भी क्यो न हो, एक बार उसके होकर उसको पुकार कर तो देखो। अपने अजामिल कसाई का नाम सुना होगा। जीवन में उसने हत्या ही हत्या की। कभी उसने भगवान का नाम नही लिया। किन्तु अन्त समय में उसने तन्मय होकर नारायण को पुकारा तो दाता ने उसे भी तत्काल अपना लिया। तुलसीदास जी ने फरमाया है —

> नाम अजामिल से खलु कोटि अपार नदी भव बूडत काढे।
> जो सुमिरे गिरि मेरु मिलाकन, होत अजाखुर वारिधि बाढे॥
> तुलसी जेहि के पद पकज ते प्रगटी, तटिनी जो हरै अघ गाढे।
> ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ माँगत, नाव करारे है ढाढे॥

दाता तो बड़े ही दयालु हैं। वहाँ क्या देर है। वहाँ तो उसके बनने मात्र की देर है। बस आप उसके बन जाओ तो वह आपका बन जावेगा। शरणागति ही सबसे बडी है। बस उसकी शरण में चले जाओ तो आपका काम बन जावेगा।

० ० ०

लक्ष्य की पूर्ति

दिनाक ७–६–८० को श्री दाता का पधारना भीलवाडा हुआ। साथ में डाक्टर योगेशजी, दिनेशकुमारजी व जयपुर के कुछ भक्तजन थे। शिव सदन में विराजना हुआ। श्री दाता के आगमन की सुन अनेक लोग दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। जिला स्तर के कई अधिकारी भी उपस्थित हुए। श्री दाता का प्रवचन चल रहा था। सभी तन्मय होकर श्री मुख से निकले हुए अमृत वचनो को सुनने में मग्न थे। ऐसे समय में एक सज्जन ने दाता से प्रश्न किया।

एक सज्जन– "एक व्यक्ति भगवान् से विमुख है। वह भगवान् की निन्दा करता है और भगवान को मानने से इन्कार करता है। दूसरा व्यक्ति भगवान् पर आस्था रखता है और उसकी प्राप्ति हेतु दौड लगा रहा है। मनुष्य, मनुष्य समान है फिर ऐसा क्यो होता है?

श्री दाता– 'एक व्यक्ति भगवान से विमुख है, उससे दूर रहना चाहता है। दूसरा भगवान के प्रति झुकाव रखता है और उसकी प्राप्ति की ओर दौड लगा रहा है, यह तो सब भावो पर निर्भर है। आप देखते हो कि ससार में अनेक धातुएँ है किन्तु सब का मूल्य एक सा नही है। एक धातु अधिक मूल्य का है तो दूसरा कम मूल्य का। सोने का मूल्य अधिक है तो पीतल का कम है। लोहे का भाव और कम है। सब भाव की बात है। सोने का भाव अधिक है इस लिये वह मूल्यवान है और पीतल का भाव नही है इसलिये वह कम मूल्य का है। आज यदि मिट्टी का भाव आजावे तो उसका भाव सोने के भाव से अधिक हो जावे। जिस मनुष्य के हृदय में दाता के प्रति भाव नही है तो वह उस ओर जाने का प्रयास नहीं करेगा। जिम मनुष्य के हृदय में उसके प्रति भाव होगे वही तो उस ओर जाने का प्रयत्न करेगा। जब भगवान राम वन में पधारे, उस समय अच्छे अच्छे ऋषि महर्षि तो दर्शनो से ही वंचित रह गये जब कि शबरी जैसी भीलनी का सौभाग्य देखिये कि श्री राम उसकी कुटिया में जा बैठे और उसके झूठे खट्टे-मीठे बेर खाने लगें। ये शबरी के भाव ही थे जो श्री राम जैसे समर्थ को खीच कर ले गये। कहा भी है–

भावे हि विद्यते देवो न हि काष्ठे न पाषाणे।

एक बन्दे ने कहा कि भगवान यदि सर्वव्यापी है तो फिर हम उसमे वंचित क्यों है ? जब वह सभी जगहों में विद्यमान है, तो फिर यह भाग दौड क्यों है ! भगवान तो सर्वव्यापी ही है। यह हमारी समझ का भेद है, जिसमें हम उसके सर्वव्यापी स्वरूप को देखने में योग्य नहीं है। हमारी जेब में आग पेटी है, फिर भी हम आग से वंचित हैं। ऐसा क्यों हुआ ? यह इसीलिये हुआ कि हमने उसका प्रयोग नहीं किया। हमने रगड लगा उसको प्रकट नहीं किया वरना आगपेटी की प्रत्येक शलाका आग से लबालब भरी पडी है। जिस प्रकार आगपेटी में आग विद्यमान है, उसी प्रकार दाता सभी में विद्यमान है, किन्तु जब तक प्रेम रूपी रगड नहीं लगती, तब तक वह अदृश्य है। दाता ही सब कुछ करने वाला है। वही निर्माता, पालक और संहारक है। जो पौधा आग मे अंकुरित हुआ, हरा हुआ, फला और फूला, वही पौधा आग से ही जला। आग पौधे के जन्म का कारण भी है और उसी पौधे के नाश का कारण भी वही है।"

"आज दो अक्षरों का संघर्ष है। इनमें एक 'है' व दूसरा 'न' है। है और नहीं के चक्कर में सारा विश्व भ्रमित है। दोनों अक्षरों में से किसी एक को चुन लेने पर काम बन जाता है। 'है' कहने वालों ने हजारों शास्त्रों का निर्माण कर दिया किन्तु 'न' कहने वाला एक जगह बैठ गया। 'न' कहने वाले को किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है किन्तु 'है' कहने वाले को तो अपनी बात की पुष्टि के लिये अनेकों प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ेंगे। 'न' कहने वालों को मनाना सरल नहीं है। उसको आप पूरी शक्ति देंगे तब ही जाकर वह मानने को तैयार होगा।"

"शक्ति देने का काम किसका है। यह काम भी तो दाता का ही है। डाक्टर साहब योगेशजी ! आप यहां क्यों आये ? इच्छा प्रकट किसने की ? आपको आप ही संकेत करता है। डाक्टर साहब योगेश जी के पास कई मरीज आते है। योगेश जी को सभी मरीजों ने नहीं देखा है। किसी ने योगेशजी को देखा है किन्तु अधिक ने उनका नाम-मात्र सुना है। किन्तु सब ही बीमार इसका विश्वास करते है। विश्वास होने से उनका इलाज भी होता है। यदि बीमार

योगेशजी में भ्रम और शका करने लग जावे तो काम कैसे चलेगा। भ्रम और शका करने पर डाक्टर मिलेगा ही नही और उनका रोग मिटेगा भी नही। हमारे उस बडे डाक्टर को पा लेने के लिये शका व भ्रम मिटाना पडेगा। उसको पा लेने का सरल तरीका चाहते हो तो भ्रम और शका मिटा कर उसमें विश्वास करो।"

"सेवा किसे कहते है। आपके मन के अनुसार काम करना सेवा नही है। सेवा कानून कायदे में नही आती है। आदेश का पालन करना ही सेवा है। जिसमें है रजा तेरी, उसमें है खुशी मेरी। एक स्त्री बडी पतिव्रता है। वह पति को चाहती तो है, किन्तु बडी आचार-विचार वाली है, वह स्वास्थ्य के नियमो का पालन करने वाली है तथा सफाई इत्यादि का पूरा ध्यान रखती है। वह बाहर जाती हैं और जब बाहर से घर वापिस आती है तो स्नान करती है। उसका पति भी बाहर से घर आता है तो उसे भी वह ठण्डे पानी से स्नान कराती है। अब मान लो कि उसका पति अस्वस्थ हो गया कडाके की सर्दी पड रही है। ऐसी अवस्था में यदि उसे बाहर से आना पडे और उसको ठण्डे पानी से स्नान करावे तो कैसा रहेगा। उसके पति को निमोनिया नही हो जावेगा। ऐसी सेवा किस भाव पडेगी? अतः वह सेवा नही है। पतिदेव की इच्छा में ही अपनी इच्छा को समाप्त करना सच्ची सेवा है। पति जो भी आज्ञा दे उसका नि सकोच पालन करना ही सेवा है। आदेश पालन में स्वत ही अपने अस्तित्व की समाप्ति होकर उस एक का ही अस्तित्व रह जाता है। आदेश पालन में फिर नफा-नुकसान और अच्छा-बुरा कुछ भी नही होता है। जो आदेश हो गया वह लोहे की लकीर है। इस प्रकार का विश्वास होना जरूरी है।

'राजा मोरध्वज के बारे म आपने सुना होगा। राजा और रानी दोनो दाता में अटूट विश्वास रखते थे। वे बडे धर्मात्मा थे और सदैव अपनी प्रजा की भलाई में लगे रहते थे। साधु महात्माओ की खूब सेवा करते थे। उनको दाता का स्वरूप मान कर ही सेवा किया करते थे। एक बार दाता ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। एक साधु वेश बना व साथ में सिंह को लेकर राजधानी के बाहर आकर धूनी

रमा दी। भोजन आदि कुछ किया नहीं। राजा को मालूम हुआ तो वे दौडे हुए उनके पास गये और महलों में पधारकर भोजन पा लेने के लिये प्रार्थना करने लगे। साधु वेश धारी दाता ने कहा कि वे कई दिनो से भूखे हैं, किन्तु उन्हें भोजन कराना उनके वश की बात नही है। राजा को इसके लिये आग्रह नहीं करना चाहिये। इतना कहने पर भी राजा नहीं माना तो साधु ने कहा कि पहले भोजन इस सिंह को कराना होगा। यह सिंह नरमांस ही खाता है। राजा अपने लडके रतन कँवर का मांस इसे खिलावे तभी यह अपना उपवास खोल सकता है। वह भी राजा और रानी दोनो मिल कर करोत से चीर कर उसके टुकडे करें। शर्त यह है कि किसी के आंख में आंसू नही आना चाहिये। कितनी कठोर बात थी। किन्तु राजा और रानी ने इस बात को स्वीकार कर लिया। रानी ने हाथ से भोजन तैयार किया। भोजन बनने के पश्चात् साधु अपने साथी सिंह के साथ महलो में पहुँचा। साधु के सामने राजा-रानी ने अपने लाडले कँवर को करोती से चीर कर दो टुकडे किये व उन टुकडों को सिंह के सामने डाल दिया। कैसी कठोर परीक्षा थी। किन्तु कैसा दृढ विश्वास था राजा-रानी का दाता में। उन्होंने हँसते हँसते दाता के आदेश का पालन किया। फलस्वरूप दाता ने न केवल उनके पुत्र को ही जीवित किया बल्कि राजा-रानी के नाम को सदा सदा के लिये अमर कर दिया। यह है सच्ची सेवा। इसे कहते हैं आदेश का पालन तथा ऐसा है दाता में दृढ विश्वास।'

'फ्रांस देश का एक निवासी एक बार नान्दशा चला आया। कारण पूछने पर उसने बताया कि वह दाता का रास्ता जानने की इच्छा से आया है। किसी ने उसे यह विश्वास दिला दिया कि वहाँ जाने से आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जावेगी, इसलिये खोजता खोजता यह यहा चला आया। उसको शान्ति से ठिठाया। विश्राम ले लेने के बाद उसे कहा गया कि विश्वास है तो फिर करना क्या है। विश्वास हो तो बडी चीज है। इस पर वह बोला कि वह हिन्दुस्तानियों की तरह अन्ध विश्वासी नहीं है। वह तो जब तक आँखो से नही देखेगा तब तक विश्वास नही करेगा। माका राम ने हंसी आ गई। हमने उसे पूछा कि वह क्या देखना चाहता है। उसने तपाक से कहा कि

वह अपनी मा से, जो फ्रांस में है, बात करना चाहता है। यदि बात हो जाती है तो वह विश्वास कर लेगा। हमने उसे बताया कि बात करने के लिये तो आजकल विज्ञान ने अनेक साधन बना दिये है। टेलीफोन, वायरलेस आदि अनेक साधन है। कुछ ही पैसों के खर्च करने पर काम बन सकता है। हमारे पास साधन होना तो माँ से बात करने के बजाय दाता से ही बात क्यो नही कर लेते। यदि दाता से बात कर लेते तो सारा टटा ही मिट जाता। लोग बाग यो ही पूछते हैं कि उनका स्थान कौनसा है ? चाह तो है नहीं। बिना चाह के स्थान का पता कैसे लगे। चाह होने पर वह स्वय ही दौड कर सामने आ जावेगा। उसको ढूटने की कोई आवश्यकता नही होगी। यदि आप उसका स्थान ही ढूढना चाहते हो तो पाँच छ बातो को कर लो। आप किसी के कहने सुनने में विश्वास न करो। आप पूर्णतया वासना कामना से रहित हो जाओ। 'अह ब्रह्मास्मि' इसमें विश्वास रखो। सदैव यह बात याद रखो कि वह मेरे में है व मे उसमें हूँ। वह मुझसे दूर नही है। दूसरे लोगो के कहने सुनने में कभी विश्वास न करो। 'मै स्वय ब्रह्म हूँ दूसरा कोई है ही नही, अत नमन करु तो किसको करू' ऐसा दृढ विश्वास पैदा कर लो। सोच लो कि मुझको न कुछ देना है व न कुछ लेना है। विश्वास के साथ डटे रहो। खूब मजबूत रहो। उसकी लगन में मस्त रहो, झूमते रहो। बस स्थान मिल जावेगा।

"आप देखोगे तो देखोगे क्या ? सभी स्वरूप उसके है अत देखोगे तो काम बनेगा नहीं और आपका कार्यक्रम चलेगा नहीं। जितना जल्दी माल मिलेगा उतना ही माल हल्का होगा। जो माल बड़ी मेहनत से मिलेगा वह माल महगा होगा। अत देखने का प्रयास ही छोड दो। अपने भावो को महग बना लो। फिर देखो कितना शीघ्र स्थान मिल जाता है।"

"आप लोग जानते सब कुछ हो किन्तु मानते नहीं हो। भारत में भारत सरकार का राज है। मै पूछता हूँ कि आपने कभी भारत को देखा है ? यदि आपने नहीं तो फिर राज्य कौन कर रहा है ? सरकार ही राज्य कर कर रही है। किन्तु यदि आप तर्कवाद में

जाओगे तो काम कैसे चलेगा। आप सरकार के बन जाओगे तो स्वय ही सरकार बन जाओगे। जो लोग मन से सरकार बन गये वे स्वय सरकार हो गये। अपने ही शासनकर्ता हो गये।" आगे दाता ने पूछा –

श्री दाता–"ससार में सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु क्या है ?

एक वन्दा–"ससार में सब से मूल्यवान वस्तु स्वय मनुष्य है।"

दूसरा वन्दा–"ससार में सब से मूल्यवान वस्तु पुत्र है जो पिण्डदान करता है।"

तीसरा बन्दा–"ससार में सन्तोष ही सब से मूल्यवान है।

चौथा वन्दा–"ससार में धन ही सबसे अधिक मूल्यवान है। उसके विना ससार का काम ही नही चलता।"

पाँचवा वन्दा–"दाता ही सब से अधिक मूल्यवान है।"

श्री दाता–"ससार में हमारी दृष्टि में सब से मूल्यवान वस्तु दु ख है। पटरी पर से उतरी हुई गाडी को पुन पटरी पर चढाने वाला दु ख ही है। यदि दु ख न हो तो कोई दाता को याद ही नही करे। उसकी याद दिलाने वाला ही दु:ख है। साधु-सन्त साधना करते हैं। क्यो? उन्हे जन्म-मरण का खतरा, आवागमन का खतरा है, इसीलिये तो वे साधना में रत है। अत दु ख से घवराना ठीक नही है। दु ख ही आपको अपनी वस्तु के निकट ले जाता है। आप से दूर तो कोई वस्तु है नही, किन्तु भ्रम वश हम भूले हुए हैं। दु ख हमारे में उस वस्तु की चाह पैदा करता हैं। चाह पैदा होने पर हमें उसका अनुभव होने लग जाता है। केवल मात्र वात इच्छा की ही है। कई लोग कह देते हैं कि हमें फुरसत नही। उनको दाता को याद करने की फुरसत क्यो होने लगी, कारण उन्हे जरूरत तो है नही। जिस वस्तु की जरूरत है उसके लिये तो आपको फुरसत ही फुरसत है। गप्पे उडाने व मित्रमण्डली में बैठने के लिये आपके पास फुरसत है। सिनेमा देखने व ताश खेलने के लिये भी आपको फुरसत है, किन्तु दाता के लिये आपको फुरसत नही है। वलिहारी है आपकी !

' वन्दा– हम फुरसत तो निकाल लें किन्तु वह मिले जब ! वह तो मिलता ही नहीं।'

श्री दाता–"वह आपमे अलग है ही क्या सा आपसे मिल। माना कि वह आपसे अलग है तो फिर आपका काम कैसे चल रहा है ? क्या आप अपना काम स्वय चलाते हो ? विचार करने की बात है। विचार करने पर इस प्रश्न का उत्तर आपसे ही मिल जावेगा। उससे मिलने की इच्छा कर बहुत से लोग आते हैं किन्तु आकर दफ्तर को देखने लग जाते है। दफ्तर के देखने में ही साझ हो जाती है फिर मिलने का प्रश्न ही क्या ? अरे ! दफ्तर वाले को ही पकड कर बैठ जाओ जिससे पूरा दफ्तर ही आपका हो जावेगा। उससे मिलने के जितने कार्यकलाप हैं उन्हें देखने में तो जमारा ही समाप्त हो जावेगा। जप, तप, भोग, क्रिया आदि अनेक हैं। आप एक एक को देखोगे तो कहाँ तक देखोगे। अत. देखना ही बन्द कर दो। आप जप करते हो। जप किससे करते हो ?"

एक वन्दा–"जप तो वाणी से करते है।"

श्री दाता–"वाह ! आप वाणी मे ऐसे का जप करते हो जो वाणी से परें है। आपकी वाणी उसे क्या पकड पावेगी। यदि जप ही करना पडे तो ऐसा जप करो जिसमें आपको कुछ भी नही करना पडे। आप भजन कीर्तन करते हैं। आप कुछ भी करो लेकिन मन लगा कर करो तो ठीक है। डाक्टर साहब योगेश जी यहां बैठे हैं। जयपुर के और लोग भी बैठे हैं। ये सब के सब यहां बैठे हैं, किन्तु ध्यान इनका इनके घर में है। इन्हे जयपुर की सभी बातें पूछ लो। इस समय डाक्टर साहब घर का कौनसा जप कर रहे हैं। अत पनिहारी की चाल चलना चाहिये। चलते, बात करते और इधर-उधर देखने में वह अपने लक्ष्य को नहीं भूलती। लक्ष्य के ठिकाने होने पर सब काम बन जाता है।"

एक वन्दा–"हमारा लक्ष्य भी पनिहारी सा करदो।"

श्री दाता–"लक्ष्य तो पनिहारी सा बनाया जा सकता है किन्तु आपमें बनने की और सहन करने की शक्ति हो तो। पुलिस अपराधियों

री अपराध स्वीकार कराने को शक्ति का प्रयोग करती है किन्तु शक्ति के प्रयोग के पूर्व वह अपराधी की शक्ति का पहले निरीक्षण करती है। करेन्ट लगाने पर अपराधी मर जावे तो जवाब देना भारी पड सकता है इसीलिये शक्ति का प्रयोग करने के पहले वह अपराधी की शक्ति की डाक्टर से जांच करा लेती है। डाक्टर जाँच कर बताता है कि वह सहन कर सकेगा या नही। दूसरी बात है। एक सेठ अन्धा धुन्द नोट बरसा रहा है। आप उसकी इस क्रिया को देखकर कहोगे कि वह तो अपनी पूजी म बत्ती (आग) लगा रहा है। है, आपकी अपनी पूजी में बत्ती लगाने की हिम्मत ? पनिहारी बनने के लिये पनिहारी सी दृढता चाहिये। आप सभी उस निजानन्द के रोगी है किन्तु उसके लिय अपने आपको बेचना विरला ही स्वीकार करेगा। बिक कर देखो। डट जाओगे तो वह डाक्टर शीघ्र ही मिल जावेगा। जीवन का मूल सार, असली तत्व यही है। उस नित्यानन्द को प्राप्त करन के लिये वासना और कामना से रहित होकर उसकी चाह करो।"

"जल स्वच्छ है किन्तु उसकी भी स्वच्छता नष्ट होती है। स्वच्छता कब नष्ट होती है। जब जल जमीन के सम्पर्क में आता है तो उसकी स्वच्छता नष्ट होती है। जमीन पर पडते ही पृथ्वी तत्व उसमें मिलने से वह गन्दला हो जाता है। सगति का आप पर भी प्रभाव पडता है। आप गन्दगी को मिटा कर निर्मल हो जाओ फिर देखो उस आनन्द की कोई सीमा नही रहेगी। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है –

पाव घडी आधी घडी, आधी में पुनि आध।
तुलसी सगत साधु की, हरे कोटि अपराध॥

तुलसीदास जी ने उसकी सगति के लिये डेड मिनिट पर्याप्त माना है। वैसे डेड मिनिट है। उसक लिये तो एक क्षण ही बहुत है। सैंकडो मण बारुद के ढेर को उडान के लिये एक चिनगारी ही पर्याप्त है। उसमें एकक्षण भी नही लगता। एक क्षण में सारा का सारा बारुद आग हो जाता है। यहाँ डेड मिनिट इसीलिये बताया गया है क्योंकि बन्दे में तर्क विद्यमान रहता है। तर्क न होने पर एक पल ही पर्याप्त है।"

' किसी वस्तु को बनाने के लिये पहले कच्चे साचे की जरुरत होती है फिर पक्का साचा प्रयोग में लिया जाता है, अत किसी न किसी रूप में कोशिश करना जरुरी है। कोशिश करने पर वह प्राप्त होगा ही। इस काम के लिये मन को मनाना पड़ेगा। मन की गति विचित्र है। एक समय की बात है। एक जगल मे एक शेर आया। वह पास के गाँववालो को हानि पहुँचाने लगा। गाँववालो ने उसे मारने को एक शिकारी को तैयार किया। शिकारी ने जगल में एक पेड से एक भैसे को बांध दिया। भैसे को देख कर शेर झपटा किन्तु शिकारी ने उसे गोली मार दी। भैसे के पास पहुँचते वह शेर मर गया। भैसे ने देखा कि उसने ही शेर को मारा हैं अत उछल उछल कर, दुनिया को यह बताने के लिये कि उसी ने शेर को मारा है, लातें लगाने लगा। यही अवस्था है हमारी व हमारे मन की, यद्यपि यह काया एक प्रकार से काठ की पुतली है और नाच रही है। पुतली सोचती हैं कि यह उसका नाच हैं किन्तु नाच तो नचाने वाले का हैं। मानसिंह जी ने ठीक ही कहा हैं –

अगम निसाणो उण देश रो जारी गम किस विधि होय,
म्हारी हेली ए, अगम निसाणो ॥

आवण जावण उठे हैं नही, नही कोय एक न दोय।
नही तो खोया नही कोई पाविया, रहे नित लोम विलोम ॥
म्हारी हेली ए

इडा पिंगला सुख मण नही, त्रिपुटी ध्यान नही जोय।
नही तो मारे मरता नही, ना कोई जागे न सोय ॥ म्हारी ।

रूप वरण लागे नही, लेख न लिखता कोय।
द्वादश अक्षर हैं नही, किस विध वरणें सोय ॥ म्हारी .।

जीव ब्रह्म माया नही, न कोई शब्द विगोय।
छान्द योग में देख लो, जो परतीत न होय ॥ म्हारी .।

देव नाथ निज देव है, हम उन मांय समाय।
मान मान वहाँ हैं नही, जहाँ नही तहाँ क्या पाय ॥ म्हारी.. .।

बड़ी विचित्र लीला है । बन्दे के मन की इच्छा वहा काम नही करती एक बार माका राम का जयपुर में रमना हुआ । वहा आतिश में ठहरना हुआ । अनेक जिज्ञासु लोग आये । कई कॉलेज के विद्यार्थी भी आये । सबने ही अपनी अपनी गाथा गाई । एक विद्यार्थी अजीब सा आया । आज मनुष्य की गति बड़ी तीव्र होगई है । आप उसे सारा शास्त्र सुना दो तो भी वह नही मानेगा । वह कह देगा कि इन मे क्या धरा है । ये तो मेरे ही बनाये हुए है । उसको चारो धामो के दर्शन करा दो तो भी वह कह देगा कि ये मन्दिर तो मैंने ही बनाये हैं और इन मन्दिर मे बैठे देवो को भी मैने ही बनाया है । आज तो मनुष्य स्वय भगवान् बन रहा है । आपने अखबार में पढा होगा कि हिन्दुस्तान म भगवानो की बाढ़ सी आ रही है । उस विद्यार्थी ने आते ही कहा कि उसको भगवान में आस्था है । वह प्रात साय भगवान के सन्मुख बैठता भी है और जप तथा ध्यान भी करता है । किन्तु मेरे मित्रो में, मित्रो में ही क्या पूरे वातावरण में ही साम्यवादी विचारधारा चल रही है । साथी लोग मुझको देख देख कर मेरी मजाक उडाते हैं । वे कहते है कि इसमें क्या धरा है ? पत्थर को लेकर क्यो सिर फोड रहा है । वे कहते है कि खूब खाओ, पीओ और मौज उडाओ । उनके निरन्तर कहने से उसका भी विश्वास डगमगाने लग गया है । अब वह भी सोचने लग गया है कि सब व्यर्थ है । समय का दुरुपयोग मात्र है । जो आस्था भगवान में थी वह भी समाप्त होने लगी है । इस समय तो वह 'है' और 'नहीं' के बीच में फँसा हुआ है । यदि दाता उसको भगवान के दर्शन करा दे तो आस्था बनी रह सकती है । उसकी बाता को सुन कर हसी आगई । भगवान के दर्शन कर लेने को तो कर लेते है किन्तु फिर भी विश्वास ही हो जाय इसका क्या प्रमाण है । स्वय विवेकानन्द जी को भगवान राम कृष्णदेव ने बहुत कुछ दिखा दिया किन्तु उन्होंने भी कह दिया कि परमहस जी ने तो मेरे ऊपर मेसमेरिजम कर दिया है । जब विवेकानन्द जी जैसे महापुरुष की भी यह स्थिति हो सकती है तो साधारण व्यक्ति का क्या कहना । उस विद्यार्थी ने भी देखने की इच्छा की और दाता की दया से उसने बहुत कुछ देखा भी किंतु आँखों पर विश्वास नही हुआ । कारण शका और भ्रम उसे पग पग

पर होता गया। शका और भ्रम तो मन का गुण है अतः देखने पर भी उसको विश्वास नही हुआ। अन्त में उसने कहा कि मुझको तो हाथ में पकड़ कर दिखाओ। कैसी विचित्र बात है। आग को हाथ में लेकर देखना चाहता था। आग क्या कभी हाथ मे लेकर देखने की वस्तु है ? हाथ में आग लेकर देखने से तो हाथ ही जल जावेगा। उस शक्ति को सहन करने का साधारण से व्यक्ति का क्या सामर्थ्य। रामकृष्ण देव ने तनिकसी कृपा विवेकानन्द जी पर कर दी तो धरा आसमान उसके लिये एक हो गया। सभाले भी संभलना कठिन होगया। अतः आप लोग देखने की बात करते हो किन्तु एक तमास बीन की तरह देखने की इच्छा कर रहे हो। आप लोगो को जरुरत तो है नही, केवल बाते वना रहे हो। बातें वनाने से काम चलने का नही। लक्ष्य की पूर्ति के लिये आपको लक्ष्य को ठीक करना होगा। आपको लक्ष्य सिद्धि के लिये अर्जुन सा वनना पडेगा। जिस तरह लक्ष्य सिद्धि के लिये उसने अपने लक्ष्य अर्थात् चिड़ियाँ की आँख ही देखी अन्य कोई भी वस्तु उसे दिखाई नही दी, उसी तरह आपके सामने एकमात्र दाता ही दाता रहना चाहिये। विश्वास को डगमगाने न दो और प्रयास करते रहो। दाता दयालु है। उसकी दया से लक्ष्य सिद्धि अवश्य होगी।

० ० ०

सब में उसी एक को देखो

दिनाक १२-७-८० को श्री दाता का भीलवाडा पधारना हुआ। अगले दिन श्री दाता 'शिव सदन' में विराजे हुए थे। अनेक लोग विद्यमान थे व विभिन्न प्रसगो पर चर्चा चल रही थी। उस समय कुछ विद्यार्थी भी आकर बैठ गये। उन विद्यार्थियो में एक इजीनियरिंग की परीक्षा देने वाला विद्यार्थी भी था। उसका परीक्षा फल ताजा ही आया हुआ था। वह परीक्षा में सफल होगया था अत. प्रसन्न चित्त था। प्रमाण कर बैठ गया। उसको प्रसन्न देख श्री दाता ने उसको कहा -

श्री दाता -"ऐसा लगता है कि आपने परीक्षा पास करली है।"

विद्यार्थी -"हाँ हुक्म ! आपकी कृपा से पास करली है।"

श्री दाता -"क्या आपको विश्वास है कि आपकी कृपा से आपने परीक्षा पास की है ?"

विद्यार्थी:-"हाँ ! मुझको तो पूरा विश्वास है कि आपकी कृपा से ही मैं इस परीक्षा मे पास हुआ हूँ। आपकी कृपा विना इजीनियरिंग में पास होना मेरे लिये कठिन ही था।"

श्री दाता -"यदि विश्वास है तो फिर क्या चाहिये। विश्वास पर तो सारा ही काम बन जाता है। विश्वास में तो आप (दाता) ही स्थित है। यह ससाररूपी एक स्टोर है। जिसमें अनेक वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। जिस व्यक्ति को जो भी चाहिये उस वस्तु को विश्वास होने पर वह आसानी से प्राप्त कर सकता है। वहा कमी तो किसी बात की है नही। एक समय की घटना है। माका राम को गगासागर जाने का मौका आया। कलकत्ता के बाजार में होकर जाना हुआ। मार्ग में एक बड़ा सा जनरल स्टोर आया। नायानो जी साथ थे। उन्होंने बताया कि यह स्टोर दुनिया के बडे स्टोरो मे से एक है। इस दुनिया की कोई ऐसी वस्तु नही जो यहां नहीं मिलती हो। उन्होंने उस स्टोर को देखने का आग्रह किया। स्टोर का मालिक भी माका राम को देख कर बाहर आगया। वह भी हाथ जोड कर

मार्ग में खडा हो गया । माका राम को स्टोर देखने जाना ही पड़ा । स्टोर में अनेक वस्तुए थी । स्टोर देख लेने के बाद मालिक ने कुछ वस्तु पसन्द कर लेने के लिये कहा । माका राम ने मना कर दिया किन्तु स्टोर के मालिक ने कुछ न कुछ चीज पसन्द करने के लिये बडा आग्रह किया । उसने कहा आपको यहाँ से कुछ न कुछ अवश्य लेना है । यहाँ आपकी पसन्द की प्रत्येक वस्तु मिलेगी । उसके बहुत आग्रह पर हमने कहा कि यदि आप नही मानते हो तो एक काँटा निकालने का चिमटा दे दो । मालिक सुन कर सन रह गया, कारण यह वस्तु उनके स्टोर में नही थी । वह बडा लज्जित हुआ ।"

"यह ससार क्या है एक जनरल स्टोर ही तो है । उसके बाहर कोई वस्तु नही । यदि इसमें से एक चिमटा लेकर मन के काँटे को निकाल लिया जाय तो फिर बाकी रहेगा ही क्या ? बिना किसी खर्च के काटा निकल जाय तो अच्छा है। पाच तत्व का बना हुआ यह शरीर है जो नष्ट तो होगा ही । यदि मन को विषय रूपी रस खींचने लग जाय तो समय तो निकलेगा ही । विषय रूपी रस से प्रभावित न होकर यह मन यदि दाता के चरणो मे लगता है तो शरीर को धारण करना कार (सार्थक) है नही तो बेकार हैं ।"

"ससार के जितने भी कर्म है, बुरे नही है । यदि बुरे है तो अपने भाव हैं, अत बनना चाहो तो भावो को ऊपर उठालो । यदि आप उसकी अनुभूति चाहते है और यदि आप चाहते है कि आपको परम् पद की प्राप्ति हो तो अपने भावो को मूल्यवान बनालो । दाता के प्रति रखे गये ऊचे भाव मनुष्य को ऊपर उठाकर आत्मस्वरूप को दिखा देते हैं । यदि आप अपने स्वरूप को देख लेगे तो सर्वमुखी हो जाओगे । परमहस जी को एक बार उनके शिष्य ने कहा ।

शिष्यः–"बाबुजी यह दुनिया तो चारसो बीसी करती है किन्तु आपतो उनसे भी बढ़ गये है । आप तो हमारे साथ आठसो चालीस सा व्यवहार करते हैं ।"

श्री परमहसजी –"तुम्हारे कहने का मतलब समझ मे नही आया ।

शिष्य –"आपने हमें शिक्षा दी है कि सदा एक को ही ध्याओ । किन्तु आपतो सब ही को ध्याते हो ।"

श्री परमहस देव –"यह कैसे ?"

शिष्य.–"मन्दिर में अनेक देवो की मूर्तियाँ हैं। हमने देखा है कि आप सब को ही नमस्कार करते है। आप माँ को तो नमस्कार करते हैं किन्तु साथ ही शिव को, कृष्ण को, देवी को, गणेश को व अन्य देवो को भी नमस्कार करते हैं। ऐसा आप क्यो करते है ?"

श्री परमहस देव –"यह आप लोगो का भ्रम है। यही तो बात है जो आप लोग अब तक नही समझ सके हैं। मे तो एक को ही नमस्कार करता हू। इस सब मूर्तियो में मे तो उस एक को ही देखता हू और उसी एक को नमन करता हू। आप लोगों में दृष्टि भेद है उसे आप लोग मिटा दो तो आपको भी सब में वही एक दिखाई देगा।"

"कितनी सुन्दर बात कही थी श्री परमहस देव ने अपने शिष्य को। हमारी भेद दृष्टि है इसी लिय हमें प्रत्येक अलग अलग दिखाई देता है। इष्ट देव एक ही है व हमारी भेद दृष्टि के समाप्त होने पर वही इष्ट देव सब में ही नज़र आने लगता है कारण वही सब में विद्यमान है। वह सब में है, सब उसमें हैं। उससे परे कुछ भी नहीं है अत उसे ही देखो। आप सब लोग बिके तो हो किन्तु उसमें न बिक कर मन के पीछे बिक गये हो। इसी बात का तो दुख है। दुख सुख सब मन के ही हैं। यह मन ही आपको अनेक नाच नचाता है। इस मन को दाता को समर्पण कर दोगे तो फिर आप मन के न रह कर उसके हो जाओगे। जैसे आप किसी दुकान पर जाकर नौकरी कर लेते हो तो आप उस दुकान के हो जाते हो। फिर तो दुकानदार जो कहेगा वही आपको करना पड़ेगा। वहाँ आप मनमाना नही कर सकते हैं। इसी तरह दाता के यहा बिक जाने पर आप दाता के हो जावोगे। फिर आपको प्रत्येक काम उसी का दिखेगा और हर काम में वही दिखाई ।"

सत्सग चल ही रहा था कि कुछ उच्च अधिकारी दर्शनार्थ उपस्थित होगये। उनमें से एक ने पूछा, "ऐसा कुछ तरीका बतावे जिससे हम भी दाता के कुछ नजदीक आ सकें।"

श्री दाता – 'कोई बन्दा आपके पास पहुचना चाहता है किन्तु आपके पास पहुचने में अनेक कठिनाइया हैं। अनेक रुकावटें सामने आती है। एक तो आपके मकान के द्वार वन्द रहते है। दूसरा हर समय चौकीदार मिलता है। और भी कई रुकावटें हो सकती है। किन्तु वन्दे के भाव ऊचे हैं। वह तो आपके दर्शन करना चाहता ही है। अन्दर प्रवेश नही कर सकता है तो द्वार पर ही टिक जावेगा। वहाँ टिकने पर आप स्वय को आकर दर्शन देने होगे। वन्दे के भाव ऊचे हैं और उसकी अपने पास कोई समझ नही। ऐसी अवस्था में साहब को स्वय आकर दर्शन देने होगे। किन्तु यदि वन्दे के साहब के प्रति कोई भाव नही है और वह कहता है कि वह भी कुछ समझता है तो समझलो कि साहव दूर है। हमारे साहब की भी यही बात है। पूर्ण भाव के सामने साहव दूर नही है। यदि पूरी लगन नही तो 'कांख में छोरा गांव में हेरा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। साहव (दाता हमसे दूर नही है। साहव की महर की वर्षा तो निरन्तर हो रही है किन्तु वन्दा यदि छाता तान ले तो स्पष्ट है, वह वर्षा की वून्दो से वच जावेगा। अव कोई वर्षा को दोषी बतावे तो इसमें वर्षा क्या करे ? लोग कहते है कि उनके पास काम बहुत है। वे इतने काम में व्यस्त है कि उन्हें दाता को स्मरण करने को समय मिलता ही नही है। ऐसे लोगों से मायाराम पूछता है कि क्या वे अपने घर को भूलते है ? वे घर को हर समय याद रखते है। वे जो कुछ कर रहे है वे सब घर के लिये ही कर रहे हैं। नाम सरकार का, लेकिन नौकरी कर रहे हैं घर की। ऐसा करना ठीक नही। उसको याद रखने की कोशिश करो। उसके आधार पर चलोगे तो उसकी नौकरी भी हो जावेगी व आपके घर का काम भी चल जावेगा। यदि आप साहिब का घर भूल गये तो सारा का सारा यहीं धरा रह जावेगा। आपके किसी काम नहीं आवेगा अत आप साहिब के बैन कर काम करो।'

'ससार विस्तृत ह। इसको जानने की चेष्टा करना व्यर्थ है। यदि मार्ग में आने वाली वस्तुओं के विवरण को लिखने बैठोगे तो जीवन ही समाप्त हो जावेगा और कोई सार नही निकलेगा।

बापजी ! धर्म-कर्म सब यहीं रह जावेंगे। ससार तो बहुत बड़ा बात है आप भीलवाडा को ही ले लो। क्या आप भीलवाडा का विवरण लिख सकोगे? मानलो आप थोड़ा बहुत लिख भी लेगे तो उस लिखने से आपको लाभ क्या होगा ? क्या आपकी भूख उससे बुझ जावेगी ? मत-मतान्तर अनेक है किन्तु मूल वस्तु एक ही है। उसी मूल वस्तु को पकड़ना चाहिये। एक पतिव्रता स्त्री अपने पति की मृत्यु पर सती हो गई। उसको सती होते देखकर एक वेश्या की इच्छा भी सती होने की हुई किन्तु वह हो नहीं पाई कारण नगर वेश्या सत करे तो जरे किसके लार। अत यहीं धर्म अच्छा है जिसमें पिया की झलक मिल जाय। यदि पिया की झलक नही मिली तो धर्म-कर्म सब ही बेकार है।'

"पहले अपने पर कन्ट्रोल करो। आप अपने पिता को मानते हो कभी यह नही सोचते हो कि यह पिता मेरा नहीं है। आपका आन्तरिक कनेक्शन है जिससे मान लेते हो। जरा से मन व भाव की बात है। मन को मना दो। इस शरीर रूपी बल्ब का मन रूपी तार फ्यूज नही होगा तो यह शरीर रूपी बल्ब प्रकाश मान रहेगा। मन रूपी तार फ्यूज हुआ नही कि रोशनी गायब। अतः ध्यान रखना चाहिये कि यह मन रूपी तार कभी फ्यूज न हो। वह रोशनी रहने पर बस आनन्द ही आनन्द है। सर्वत्र वही वह दिखेगा।

० ० ०

ज्ञान और प्रेम

ईस्वीसन् १९८० के माह सितम्बर में श्री दाता का अस्वस्थता के कारण जयपुर पधारना हुआ। सितम्बर ओर अक्टूबर माह उपचार में ही लगे। उन दिनों श्री दाता का विराजना सेठी कालोनी के बगला नम्बर ४०/ए में हुआ। पीलिया रोग की वजह से शारीरिक शक्ति में विशेष शिथिलता आगई थी। डाक्टर लोगों का इलाज था और उन्होंने विश्राम करने की व्यवस्था दे रखी थी। फिर भी लोग दर्शनार्थ उपस्थित होते ही रहते थे और डाक्टरो की आज्ञा न होते हुए भी सत्सग चर्चा चलती ही रहती थी। वार्तालाप में श्री दाता इस बात को बिलकुल ही भूल जाते थे कि वे रोग से पीड़ित हैं और उपचार कर्ताओ ने बोलना मना कर रखा है। एक शाम को वे कमरे से बाहर आकर जहाँ अन्य लोग बैठे थे, विराज गये। इधर उधर की बातो के साथ ही सत्सग सम्बन्धी बातें चल पडी। भगवान् श्री कृष्ण ने उद्धवजी को गोपियो के मध्य उन्हें ज्ञान का उपदेश देने भेजा था किन्तु गोपिया के हृदय में तो प्रेम का अथाह सागर हिल्लोले ले रहा था, इसलिये ज्ञान का वहाँ क्या प्रभाव होता। इसी प्रसग के अन्तर्गत श्री दाता ने फरमाया, "भई! ज्ञान और प्रेम एक जगह नही ठहरते हैं। ज्ञान में ऊच-नीच, अच्छाई बुराई, गुण-अवगुण, लाभ-हानि आदि अनेक बातें रहती है। ज्ञान म 'मैं' की प्रधानता रहती है। वहाँ यदि मैं की प्रधानता न हो तो ज्ञान कौन ग्रहण करे? प्रम में 'मैं' की प्रधानता नही रहती। वहाँ तो बस तू ही तू रहता है। प्रम के सामन कोई नही रहता। यदि पिया से पेम होगया तो फिर कुछ भी शप नहीं रहता है। वहाँ तो पिया व प्रेमकर्ता एक हो जाता हैं। एकात्मकता हो जाती है। दोनों का एकाकार हो जाता है। राधा ने कृष्ण से प्रेम किया। प्रेम करने पर राधा, राधा नही रही वरन वह तो कृष्णमयी अर्थात् कृष्ण ही होगई। कहने का तात्पर्य है कि प्रेम होन पर द्वैत की भावना ही समाप्त हो जाती है। जब दो आदमिया में आपस में प्रेम हो जाता है तब यह कहने की आवश्यकता ही नही पड़ती कि आप अपने शब्द वापिस लीजिये क्या कि आपके ये शब्द ठीक नही है।

प्रेम करने पर तो प्रेमी के सब अवगुण भी प्रेम करने वाले के लिये गुण हो जाते हैं।"

उपस्थित लोगो में से एक ने यह जानना चाहा कि प्रेम होता कैसे है ? इस पर श्री दाता ने फ़रमाया, "ज़रुरत ही प्रेम करा देती है। आपके घर में अनेक वस्तुए हैं किन्तु सभी वस्तुओ को आप अपने साथ नहीं रखते हैं। जिस वस्तु की जरुरत होती है उसी वस्तु को आप अपने साथ रखते हैं। इसी तरह यदि आपको मेरे दाता से प्रेम करने की जरुरत महसूस होगी तो उससे अपने आप प्रेम हो जावेगा। प्रेम हो जाने पर आपको वही वह अच्छा लगेगा। वह तो अच्छा लगेगा सो तो लगेगा ही किन्तु उसकी प्रत्येक वस्तु ही अच्छी लगने लगेगी। एक नौकर है। वह अपने मालिक से प्रेम करता है। अब यदि मालिक का कुत्ता भी सामने आ जाता है तो वह उस कुत्ते से भी उतना ही प्रेम करेगा जितना कि वह मालिक से करेगा। एक स्त्री अपने पति से प्रेम करती है तो वह पति की प्रत्येक वस्तु से भी प्रेम करने लगती है। पति के वस्त्र यहाँ तक की उसके जूतो से भी प्यार करती है। कहने का मतलब है कि प्रेम होजाने पर प्रेम करने वाले को प्रेमी की सभी बातें अच्छी लगती हैं। इसका कारण है दोनो की एकात्मकता।"

"आप जो पूजा, भजन, कीर्तन आदि करते हैं, यह सब किसके लिये करते हैं ? क्या ये सब काम आप दाता के लिये करते है। दिखने में तो ऐसा लगता है कि यह सब काम आप दाता को रिझाने के लिये कर रहे हो किन्तु वास्तव मे यह सच नही हैं। आपकी पूजा भजन कीर्तन से दाता को क्या मतलब। क्या वह आपकी पूजा, भजन, कीर्तन आदि से प्रसन्न होता है। यह तो आपका दिखावा मात्र है। भजन, कीर्तन, वाणी आदि जो होती है वह सब तो मन के लिये है। मन बड़ा चचल है। वह सदैव ही उछल कूद करता रहता है। आप उसको एक स्थान पर ठहराने के लिये ही ये सब करते हो। ऐसा करने से मन की स्थिरता मे योग मिलता है। मन स्थिर होकर दाता की ओर झुक जावे और दाता से प्रेम हो जाय फिर करना कुछ भी नही है। एक स्त्री अपना षोडश शृंङ्गार करती है,

जो किस लिये करती है ? केवल पति को प्राप्त करने के लिये ही वह ऐसा करती है। पति के मिल जाने पर फिर किसी भी प्रकार के शृङ्गार की आवश्यकता नही होती। प्रेम के होते ही तो प्रेमी निकट आ जाता है और फिर प्रेमी ही प्रेमी दिखाई देने लगता है।"

"आप सबके अपने अपने बच्चे हैं। क्या आप उन्हें कभी भूलते हैं? क्या उसको याद रखने के लिये आपको किसी प्रकार के साधन का प्रयोग करना पडता है। आप कही भी जांय, चाहे आप अमेरिका जावे, चाहे रूस जावें चाहे अन्यत्र कही किन्तु वे तो हर समय आपको याद ही रहते है। उनको याद करने के लिए आपको बैठ कर ध्यान नही लगाना पडता है। वे तो हर समय आपके ध्यान में रहते हैं। आपको कुछ भी तो नहीं करना पड़ता है। किसी भी प्रकार के प्रयास की आपको जरुरत नही पडती। वे घर पर हैं और आप विदेश में हैं फिर भी वे घर होते हुए भी आपके पास है। इसी प्रकार दाता से प्रेम हो जाने पर किसी प्रकार के भजन, कीर्तन और अन्य साधन की आवश्यकता ही नही है। उससे प्रेम होने पर फिर तो वह सदैव आपके साथ है।"

"आप लोग जानते है कि झूठ बोलना अच्छा नही है, किन्तु फिर भी आप झूठ बोलते हैं। ऐसा आप लोग क्यों करते हैं। ऐसा आप इसी लिये करते है कि आपको आपकी वृत्तियो ने दबा रखा रखा है। आप झूठ बोलते है, क्योंकि आपको झूठ बोलने की लत पड़ गई है, किन्तु इस लत को छोडने का उपाय है, यदि आप चाहे तो। झूठ को छोडने के बाद जो कुछ बच रहता है वह साच ही साच है। आपको मकान में रखी हुई किसी वस्तु की जरुरत है। मकान के कपाट खुले हैं तो आप आसानी से उस वस्तु को ले सकते हैं। वह वस्तु आपसे दूर नही है किन्तु यदि मकान के कपाट बन्द है तो निश्चय ही वह वस्तु आपसे दूर है। आप बीमार हैं, आपको दर्द है तो आपको अस्पताल जाना ही होगा। वहां जाकर-आपको तख्ते पर लेटना ही होगा। डाक्टर के सामने लाज शर्म सब छोडनी ही होगी। बीमार होने पर डाक्टर मरीज से दूर नही है। इसी तरह जब आपको उसकी जरुरत होगी और आप अपने हृदय के कपाट खोल देंगे तो वह आपसे दूर नही है।'

"आप अपने मन के अनुसार दाता को चलाना चाहते हो। किन्तु सोचो कि आपके एक छोटासा बच्चा है। आप ही बतावें कि क्या आप उस छोटे से बच्चे के कहने के अनुसार चलेंगे ? बच्चा तो अबोध है। उसको तो भले-बुरे और लाभ-हानि का कुछ भी ज्ञान नही है। वह जो करेगा क्या आप उसे करने देंगे ? उसके मन के अनुसार चलने से काम नही चलेगा। यह मन ही आपका अबोध बच्चा है। इस मन रूपी बच्चे पर तो अकुश लगाना ही पड़ेगा।"

"जब आपका मेरे दाता से प्रेम हो जाता है तो फिर आपमें और मेरे दाता में कोई फर्क नही रहता है। प्रेम होने पर आप भी मेरे दाता की तरह शक्तिशाली ही हो जावेगे। एक लकडी दाता से प्रेम करती है। प्रेम करने पर स्वय लकडी आग हो जाती है। आप ही *बतावें कि आपमें ज्यादा शक्ति है या आपके पिता में ? आपमें जो* शक्ति है वह सब आपके पिता की ही तो है। वस्तु तो एक ही है। आपके पिता से ही आपकी पहिचान है।"

"मेरे दाता तो सभी में रमण करता है किन्तु जैसे कपडो के सहारे ही आपकी पहिचान है उसी प्रकार पचतत्व के सहारे ही मेरे दाता की पहिचान है। पचतत्व परिवर्तनशील है किन्तु नाशवान नही है। पचतत्व में रमण करने वाला जब नाशवान नही है तो पचतत्व नाशवान कैसे हो सकते हैं। परिवर्तन तो होना ही है। आपको अपनी पोषाक उतारने व नई पहिनने की आवश्यकता होती है। आवश्यकता होने पर पोषाक बदली ही जाती है।"

"परिवर्तन आवश्यक हैं और यह परिवर्तन भाव पर होता है। आपके सामने यह एक काच का गिलास रखा हुआ है। क्या आप बता सकते हैं कि इस गिलास का रग कैसा है ? गिलास का कोई रग नही है। जैसा रग आप गिलास में डाल दोगे वैसा ही रग *गिलास का हो जावेगा अर्थात् गिलास उसी रग का हो जावेगा।* यदि आप उसमें हरा रग डालोगे तो वह हरे रग की दिखाई देने लगेगी, और यदि आप उसमें काला या लाल रग डाल दोगे तो वह काले व लाल रग की हो जावेगी। कहने का मतलब है कि आप *गिलास में जैसा रग डाल दोगे, वह गिलास उसी रंग की हो जावेगी।*

गिलास तो है जैसी है। मेरे दाता न तो देखने में आते है और न कहने में आते है किन्तु है वह महान् और सर्वत्र रमण करने वाला है। वह बडा ही दयालु व कोमल है अत आप उसको जिस भाव से देखना चाहो उसी भाव में वह दिखाई दे देता है। जिस प्रकार काच की गिलास में आप हरा रग भर दोगे तो वह हरा दिखाई देने लगेगा उसी तरह मेरे दाता को हरि के भाव से देखोगे तो वह हरि के रूप में दिखाई देने लगेगा। यह तो बन्दे के भाव ही हैं जो दाता के विविध रूप बना देते हैं। कहा भी है –

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।"

"इस मन्दिर (मन) में जैसे भाव होगे वैसा ही भगवान का रूप होगा। आप अपना मुह स्वय नही देख सकते है। आपने अपना मुह देखना चाहा तो काच का साधन ले लिया। काच में आप अपना मुह जिस भाव से देखेंगे, वैसा ही काच आपको बता देगा। यदि आप एक आंख बन्द कर देखोगे तो आपका रूप काणा दिखाई देगा। यदि आप मुह बिगाड कर देखोगे तो आपका बिगडा हुआ मुह नजर आवेगा। जैसा मुह करोगे वैसा ही नजर आवेगा। यह तो छोटी सी बात है। आप में तर्क बुद्धि तो जब से आपने पढाई शुरु की तब से ही प्रारभ हो गई। जब प्रेम के द्वारा अनुभूति हो जावेगी तो आपको वैसा ही हो जावेगा। कहने का मतलब है कि आपके जैसे भाव होंगे, दाता का रूप वैसा ही हो जावेगा।"

'जब आपको जरूरत होगी तो भाव और प्रेम स्वतः ही पैदा हो जावेंगे। जरुरत होते ही उसकी लगन हो जावेगी और लगन होने पर रस आने लगेगा। श्री दाता के पाने के दोनो ही मार्ग है। एक प्रेम और भाव के द्वारा और दूसरा ज्ञान और तर्क के द्वारा। ज्ञान और तर्क का मार्ग लम्बा पडेगा। उसके मार्ग में इस रास्ते चलने पर अनेक बाधाएँ आवेगी। जिन्दगी इतनी लम्बी नही है कि इन्तजारी ही करते करते गुजार दे। प्रेम और भाव का मार्ग सरल है। उसके मार्ग में बाधाओं की भी आशका नहीं। कुछ करना भी नही पड़ता है। आपकी जरूरत ही आपमें प्रेम और भाव पैदा कर

देती है। प्रेम के होते ही आपको सकेत मिलने लग जाता है। आपको कुछ कुछ भाव होने लगेगा और आपमें उनके प्रति उत्तम भाव पैदा होने लगेंगे।

किसी समय रायपुर विद्यालय में भीण्डर के दो अध्यापक थे। उन्होने मेरे दाता के बारे में सुना और उनके हृदय में दाता की चाह जागृत होने लगी। उन्होंने दाता के दर्शनो की इच्छा की। नान्दशा रायपुर से लगभग पाच मील है। आज तो सड़क बन गई है किन्तु जिस समय की बात है उस समय सड़क नही थी तथा मार्ग भी जगल में होकर जाता था। एकाएक मार्ग मिलना ही कठिन था। उन्होंने वहाँ के अध्यापको से मदद चाही किन्तु उन दिनो कुछ वातावरण दूषित सा था अत उनको किसी ने मार्ग नहीं बताया। सहायता तो नही दी सो नही दी वरन उन्होंने उन्हें नान्दशा जाने के लिये ही मना कर दिया। किन्तु उनकी तो भावना बन गई थी, दर्शनो की इच्छा तीव्र थी। वे एक दिन शाम को विद्यालय समय के बाद निकले। अन्धेरा होगया था। मार्ग में घास व जगली झाड़ियाँ थी। वे मार्ग जो उन्हें बताया गया था भूल गये। वे रात्रि भर चलते रहे किन्तु वे नान्दशा नहीं पहुच सके। प्रात होते होते वे पुन रायपुर में ही पहुच गये। दु ख तो उन्हे बहुत हुआ किन्तु वे निराश नही हुए। दु ख होना स्वाभाविक भी था। बडी उमग से चले थे अपनी मजिल की ओर किन्तु रात भर परिश्रम करने के बाद भी उन्हे सफलता नहीं मिली। अगले दिन शाम को दूने उत्साह के साथ वे फिर रवाना हुए। कुछ आगे गये होगे कि वे मार्ग भूल गये। झाड़ियो में मार्ग ऐसा गायब हुआ कि खूब तलाश करने पर भी नही मिला। वे हताश एव दु खी होगये। ऐसी अवस्था में उन्हें दाता की याद आई। उन्होंने दाता का स्मरण किया। कुदरत दाता की, उन्हें दूर एक दीपक की लौ दिखाई दी। वे उसकी ओर बड़े। ज्यों ज्यों वे आगे बढे वह लौ भी आगे बढ़ती गई और वे अपनी मजिल तक पहुंच गये। लौटते वक्त भी वही लौ ने उन्हें वापिस पहुचा दिया। कहने का मतलब है प्रेम होने पर दाता की महर का सकेत मिल ही जाता है। सकेत के साथ ही साथ आगे बढ़ने पर मार्ग भी मिल जाता है व ध्येय की प्राप्ति भी हो जाती है।"

श्रोताओ में से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया, "ईश्वर जगत् नियन्ता है और वह घटघटवासी भी है। वह सभी में एक रस है। वही माली है और हम सब उसके फूल हैं। माली एक और फूल अलग अलग। ऐसा क्यो है ?

श्री दाता—"आपके कहने का मतलब है कि जब माली एक है तब सब फूलों को भी एक होना चाहिये। सभी के रग-रूप, सभी के गुण-अवगुण एकसे होना चाहिये। वह है तो एक ही किन्तु उसके रूप अनेक है। अनेक रूपो में है तो वह एक ही किन्तु गुण विशेष और कर्म विशष से वह भिन्न भिन्न रूपो में दिखाई देता है। एक वटवक्ष है किन्तु उसकी शाखाए छोटी भी है, बडी भी हैं। कुछ शाखाएँ दूर तक जाती है यानी शाखाए सीमा से परे हैं, असीम हैं। यें शाखायें बीज के रग रूप मे भी नही है। ये उस रूप से परे है। इसी तरह है तो वह (दाता) एक किन्तु असीम होने से सीमा या हद से परे है। एक एक पर आधारित है। हम सब कर्म-बन्धन में बधे हुए है। यही भिन्नता का कारण है।"

"ज्ञान के प्रवेश में अनेक प्रश्न उठ खडे होते है जिनका उत्तर देना कठिन सा होता है। जो परमात्मा स्वय ब्रह्म है वह कर्म-बन्धन में क्यो फसा ? जब वह एक है तो अनेक रूप क्यो ? जब वह आनन्द का सागर है तो फिर दु.ख क्यो ? इस तरह के अनेक प्रश्न है। इन प्रश्नो के हल यदि आप तर्क से चाहते है तो हल मिलेगा नही और यदि अनेक कठिनाइयो के बाद मिल भी जाय तो उस हल से सतुष्टि नही होगी। जब तक आपको उसकी अनुभूति नही होगी तब तक प्रश्न ही प्रश्न उठेंगे। जब आपको थोडी सी भी अनुभूति हो जावेगी तो प्रश्न स्वत. ही समाप्त हो जावेगें।"

"बिना लगन के कोई मगन नही होता। उसकी इच्छा हुई और उसके प्रति प्रेम जागृत हुआ नही कि मार्ग प्रशस्त हो जाता है। दु ख तो इस मार्ग में पहिले है। बडे बडे महापुरुषों के जीवन को देखो। सभी पर अपार दुःख पडे है किन्तु सभी ने हसते हसते दुःख सहा है। आजकल के नवयुवक तो थोडे से दु ख से ही निराश हो जाते हैं। उनके मुह से सुनने को मिलता है 'हम बेकार है', 'अब

हम क्या करें ?' आदि । महर्षि रमण, राम कृष्ण देव आदि अनेक महापुरुष हुए है जिन्हें कई प्रकार के दुखो को देखना पडा है । उन्हे शारीरिक कष्ट भी भोगने पड़े और दुनिया के विरोधो को भी सहन करना पडा किन्तु उन लोगो ने अपने प्रियतम की लगन को नही नही छोड़ा । आप जब उस पिया की इच्छा करते हैं तो मार्ग में आने वाले सब दु.खों को हसते हसते सहन करना पडेगा । राजा हरिश्चन्द्र को तो देखो । दाता के लिये उसे राज-पाट से हाथ ही नही धोना पड़ा वरन अपने स्त्री-पुत्र और स्वय को भी बेच देना पडा । ज्ञानदेव ने क्या कम दु ख देखा । कितना विरोध उन्हे सहन करना पड़ा किन्तु फिर भी अपनी लगन मे मस्त रहे । यह तो स्वाभाविक है कि कुछ प्राप्ति के लिये दु.ख तो देखना ही पडता है । आप एक साधारण सी डिग्री प्राप्त करने के लिये अपने जीवन के कई अमूल्य वर्ष खर्च कर देते है । एक बालिका को अपने पति के लिये, जिसमें मल-मूत्र और गन्दगी भरी पडी है और जिसका कोई ठिकाना ही नही है, बहुत कुछ करना पड़ता है । फिर उस प्रभु के लिये थोड़ा बहुत सहन करना पड़े तो क्या बडी बात है ।"

"दो लड़के एक साथ पढ़ रहे है । एक लड़का पढने मे अपने आप को बहुत होशियार मानता है । उसे स्वय पर बड़ा घमण्ड है तथा उसको अपने अध्यापक पर तनिक भी श्रद्धा नही । दूसरा लड़का अपने आप को कमजोर मानता है किन्तु उसको अपने अध्यापक पर श्रद्धा है । दोनों के रास्ते भिन्न है । जो लड़का कमजोर तो है किन्तु उसे अपने अध्यापक पर श्रद्धा है तथा कहता है कि अध्यापक उसका है, तो निश्चय ही उसकी कमज़ोरी दूर हो जावेगी, क्योकि उसमें समर्पण की भावना है तथा उसको अपने अध्यापक पर विश्वास है । जो पढने में होशियार है उसको अध्यापक पर विश्वास न होकर अपने स्वय पर विश्वास है । अध्यापक के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा नही है । उल्टा कहता है कि अध्यापक मे क्या रखा है ? आप ही बतावे ऐसे लडके का क्या हाल होगा । अवश्य ही उसे जड़ता घेर लेगी । इसी प्रकार का हाल हमारे पिया का है । यदि आपके हृदय में उसके प्रति श्रद्धा और भक्ति है तथा आपका उसमें प्रेम है और निरन्तर उसके पाने की चाह है तो आप निश्चय ही उसे

पा लेंगे। वह आपके साथ है। यदि आप उससे अपनी शक्ति से ही निपटाना चाहे तो आप अपनी शक्ति को ही देखेंगे।"

"बिना परिचय के प्रेरणा होती नहीं। आपकी उसकी तीव्र इच्छा है और उसके प्रति आपके भाव जागृत हैं तो आपको सकेत मिलने लग जावेगें। सकेत मिलते ही आपकी गति विकसित होगी, आपको उसकी अनुभूति होने लगेगी। जब आपको उसका परिचय होगा तब तो आप बता ही सकते है। प्रेम होने पर आपको उसके अस्तित्व का भान होने लगता है। मनुष्यो को ही नही, पशुओ तक को यह भान होता है। जब दाता का आसन लगता था तो कई गायें आकर पास मे खडी हो जाती थी। सत्सग के समय भी कभी कभी गायें आकर खडी हो जाती है। समझने वालो के लिये यह बात साधारण नही है। इच्छा होने पर उसका इशारा होता ही है। कहने का मतलब है कि जब आपको उसकी इच्छा होगी तो प्रकृति आपको इशारा करने लगेगी। इससे आपका प्रोत्साहन बढेगा।"

एक बन्दा—"हमें दाता का कुछ भी अनुभव तो है नही फिर इच्छा हो तो कैसे हो। इच्छा होने के लिये उसका अनुभव भी तो जरुरी है।"

श्री दाता—"आप भी झूँठ बोलना जानते है या हमें यो ही भ्रमित करना चाह रहे है। आप यह कैसे कह रहे है कि आपको उसका कुछ भी अनुभव नही है ? अरे ! आपने उसे देखा नही, उससे आपका परिचय नही, फिर आप उसका कीर्तन करने कैसे बैठ गये ? उसको पाने की इच्छा तो आपकी है ही, जब ही तो आप यहाँ आये है और उससे सम्बन्धित बातें सुन रहे हैं। आप रास्ते चलते व्यक्ति को जो चाय पीना नही चाहता, बुलाकर चाय पिलाओ तो वह चाय पीना मजूर नही करेगा, किन्तु जिसकी इच्छा ही चाय पीने की है वह अवश्य ही चाय पीना चाहेगा। आपको उसकी चाह थी इसी लिये सत्सग हेतु चले आये। अतः उसके लिये डर जाओगे तो उसे अवश्य पा लोगे। आप लोग उसकी इच्छा करके आते हो, इसका मतलब है, आपको उसका कुछ न कुछ अनुभव अवश्य है।

ऐसा न होता तो आप अपना अमूल्य समय खर्च कर आते ही कैसे ? यदि आप चोरी करके आगये अर्थात् बिना इच्छा के आगये तो आपको भ्रम होने लगेगा। आपका दम घुटेगा और आपकी भागने की इच्छा होगी। आप यहां ठहरे हुए है इसका मतलब ही यह हुआ कि आपको उसका अनुभव है तथा उसको पाने की इच्छा है। लोग उसको पाने के लिये दौड लगा रहे है। कोई कार लेकर दौड़ रहा है तो कोई अन्य साधन लेकर। किन्तु याद रखो चाहे आप कार लेकर आवे चाहे किसी अन्य साधन से आवें, ठिकाने तो वही पहुचेगा जिसको अधिक दर्द है।"

"आवश्यकता अर्थात् इच्छा ही बलवती है। दो व्यक्ति है। एक व्यक्ति ने दाता के बारे में सुना। सुन कर उसकी दाता के दर्शनो की तनिक इच्छा भी हुई किन्तु सोचता है कि कभी मौका मिलेगा तो दर्शन करेंगे। न मौका मिलेगा और न कभी दर्शन होगे। दूसरा व्यक्ति दाता की इच्छा करता है। इच्छा होते ही वह खडा हो जाता है और चल पड़ता है। वह गर्मी, तेज धूप, कटीले मार्ग, नगे पैर, थकने आदि की परवाह नही करता है। वह हर प्रकार के कष्ट को सहन कर भी आगे बढता है। ऐसे व्यक्ति पर दाता की अवश्य कृपा होगी ही। वैसे रहने को तो दाता सर्वत्र रहत हैं किन्तु ओट में रहते हैं। बन्दे के समर्पण पर ही वे प्रकट होते हैं। द्रौपदी तो महासती थी। उस पर तो भगवान कृष्ण की अपार कृपा थी, फिर भरी सभा में उसका चीर क्यो खीचा गया। दाता तो मदारी हैं। मदारी का मतलब आप जानते है। मद नाम घमण्ड अर्थात् अह का है। मद के अरि को मदारी कहते है। मदारी क्या करता है ? वह तो बन्दर को नचाता है। बन्दर को क्या कभी आपने देखा है ? बन्दर है जो चारो ओर से बन्धा हुआ है। जो जीव रूप दायरे में बन्धा हुआ है वही बन्दर है। ऐसे बन्दर को दाता रुपी मदारी नचाता है। कोई यह नही कह सकता है कि मै भी कुछ हूँ। कहने का अर्थ है कोई उसके सामने अहकार नही रख सकता है। वह तो मद का शत्रु है। द्रौपदी को अपना ही बल होगया तथा वह अपनी लाज समझने लगी। दाता इस बात को कब सहन करने लगा। द्रौपदी को शीघ्र ही समझ आयी तब जाकर काम बना।"

एक बन्दा–"मदारी बन्दर को नचाता क्यों है ।"

श्री दाता मुस्कराते हुए–"भाई ! वह नचाता इसलिये है कि उसको नचाने की वान पड गई है । जीव कर्म के बन्धन मे पड़ कर नाचना चाहता है, इसलिये वह भी नचाना चाहता है ।"

"बहुत से लोग यह कहते हैं कि जब वह मदारी है और नचाना उसका ही काम है तब भजन–कीर्तन, उपासना, ध्यान आदि की आवश्यकता ही क्या है ? उनका कहना भी सही है । जब इस बात की वास्तविकता समझ में आजाती है तो फिर इन की कोई जरुरत भी नही है । जब बात करते करते, उठते-बैठते, सोते-जागते हर अवस्था में तुम्हारी लगन नही टूटेगी तो फिर तुम्हें कोई खाली जगह नज़र ही नही आवेगी, हम यह नही कहते कि आप भजन–कीर्तन, उपासना, ध्यान आदि न करो । जितना बन पड़े, जैसा बन पडे, उसको याद करो । जब तुम्हारी लगन नही टूटेगी तो तुम उसको नही भूलोगे । जब तुम घर से बाहर होते हो, भ्रमण पर हो या कोई अन्य काम करते हो, उस समय घर को भूलते नही हो । हर समय घर तुम्हें याद रहता है । याद ही नही रहता वरन् सभी काम घर के लिये ही करते हो, इसी तरह प्रत्येक काम करते हुए भी उसे याद रखो । पनिहारी की चाल चलना सीखो । आप अपनी लगन में डटे रहो । अहं रूपी सिर को शान्त रखो । सफलता अवश्य मिलेगी ।"

"कर्म तो करना पडेगा । जब तक शरीर है तब तक कर्म है । कोई नही कह सकता है कि वह कुछ नही करता है क्योंकि कुछ कर्म नही करना भी तो बड़ा कर्म है । वह स्त्री सुहागिन है जो सब काम करते हुए भी अपने पिया को नही भूलती । जिस तरह अभी आप बैठे तो यहां हैं किन्तु दौड़ आपकी अपने घर में है उसी प्रकार चाहे जहां बैठो, चाहे जो करो, अपनी डोर नही टूटनी चाहिये। जो अपनी धुन है वह नही छूटे । मन की गति वहां नही पहुँचती । यदि आपकी धुन शुरु हो जावे, फिर चाहे सोओ, चाहे जागो, आनन्द ही आनन्द है । गति फिर स्वचालित हो जाती है । जिस प्रकार काच के पीछे पारा या अन्य मसाला लगा देने पर आरपार दिखना बन्द हो जाता है।

उसी प्रकार मन रूपी काच पर योग रूपी मसाला लगा देने से उसकी चचलता समाप्त हो जाती है। किन्तु तुम उसे योग के द्वारा रोकना चाहते हो तो बहुत कुछ करना पड़ेगा। इसके विपरीत यदि आप मन को समर्पण कर दो तो फिर कुछ भी नही करना पड़ेगा। आप एक वस्तु को स्वप्नावस्था में देखते हो और एव वस्तु को जागृत अवस्था में देखते हो, बताओ आनन्द किस में अधिक है ? जागृत अवस्था में देखी हुई वस्तु ही अधिक आनन्द देने वाली होगी। किन्तु जिस वस्तु को आप स्वप्नावस्था में देख कर फिर जागृत अवस्था में भी देखो तो उस आनन्द का क्या कहना ? वह आनन्द तो अकथनीय होगा। दोनो ही अवस्था मे देखने पर एक रस हो जाता है।"

"कर्म तो करते रहो किन्तु उसमें लिप्त होना ठीक नही। सदा में ही लिप्त होकर कार्य करो। दाता अनन्त शक्ति का श्रोत है। उसकी महर से उसमें लीन होने पर शक्ति अवश्य मिलेगी। बस उससे प्रेम करना सीख लो। अपने मन की गति उस ओर मोड लो। अच्छा यही है कि उसे कभी न भूलो।

° ° °

जो होता है अच्छा ही है

दिनाक ४-१०-८० को बात है। उस दिन श्री दाता की तबियत अधिक खराब थी। अनेक भक्तजन पास में बैठे थे। दाता के शरीर के अधिक अस्वस्थ होने से सभी चिन्तित थे। कई डाक्टर पास बैठे थे। सभी को चिन्तित देख कर श्री दाता मुस्करा दिये। उन्होने सब को आश्वस्त करते हुए फरमाया, "आप लोग अधिक चिन्तित है, किन्तु चिन्ता किस बात की। शरीर तो व्याधि का मूल है और जो अवश्यम्भावी है, वह होकर रहता है। वह टाले नही टलता, किन्तु एक बात याद रखो कि सद्गुरु को कृपा से जो होता है वह अच्छा ही होता है। दाता जो कुछ करता है, भला ही करता है। हम तो वह जैसा रखे, उसीमें प्रसन्नता मानते हैं। यह शरीर उसका है। वह चाहे तो इसे रखे व चाहे तो नष्ट करें।

उसके कार्य के बीच बोलने वाले हम कौन होते है ? सतगुरु की कृपा महान् है। वह तो भगवान् है। स्वयभू है। उसका कोठार भी अनन्त है और सभी प्रकार के ऐश्वर्य और वैभव से परिपूर्ण है, भरा हुआ है। उसकी महानता का क्या कहना। वहाँ कुछ बोलना ही गुनाह है। वहां तो शरणागति ही श्रेष्ठ है। उसकी शक्ति विशाल है। शास्त्रो और महापुरुषो ने उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। ऐसे विशाल, महान् और ऐश्वर्यशाली सतगुरु के सामने खुद की खुदी का कोई ठिकाना नही। वहां तो तू ही तू है। आप लोगो ने मणिधारी सर्प को देखा होगा। वह कही भी नही भटकता है। मणि के सहारे वह मस्त रहता है। इसी प्रकार सतगुरु की कृपा के सहारे हम सब को मस्त रहना चाहिये। गुरु तो ऐसा महान् और दयालु है कि उसे पुकारा नही कि काम बना नही। सतगुरु सदैव जीव का हित-चिन्तन ही करता है। कहा भी है -

सतगुरु कुम्हार शिष्य कुभ है, घड घड काढे खोट।
अन्दर हाथ सहाय दे, बाहर वाहे चोट ॥

हम लोग उसको समझ नही पाते हैं। हमारे पास उसक कार्यों के समझने की बुद्धि भी नही है। हम लोग उसे पकड़ भी नहीं सकते। हम तो कठपुतली के समान हैं। हमारे गल में तो उसने सैन रूपी डोरी बांध रखी है। वह उस डोरी द्वारा हमें जैसे नचाता है, हम नाचते है। परदे में रह कर ही वह नचाता है। नाचते हम है किन्तु नाच उसीका है। यदि हम यह समझ बैठें कि नाच हमारा है और हम ही नाच रहे है तो यह हमारी भारी भूल होगी। हमें तो उसके नाम की तडफन बनी रहनी चाहिये। उसके नाम की तडफन कभी शान्त नही होनी चाहिये। आप की चाह में आप है, अत आपकी लगन निरन्तर बनी रहनी चाहिये। सतगुर तो एक तस्वीर के समान है। तस्वीर की फ्रेम तो काया है। इस काया में जो स्थित है वही सतगुरु है। बस उसकी ही याद में आबाद रहो। वह हमेशा हमें तडफाया कर, उसकी तडफन बनी रहे। इसी में हमें आनन्द है। गोपियो ने उद्धव जी को जो गोपियो को योग का सदेश देने आये थे, यही तो कहा था कि शान्ति बनी रहे। हमें तो उसकी तडफन चाहिये। श्री कृष्ण हमें तडफाया करे और हम उसकी याद में तडफा करें। महापुरुषो ने यह फरमा रखा है कि दीवाना और मस्ताना के पास

कभी मत जाना। उनके पास कुछ भी नहीं रखा है। कुछ भी नहीं रखा है से तात्पर्य वहाँ कोई प्रश्न ही नही है। उनके सभी प्रश्न दाता के सन्मुख समाप्त होगये है। उनके तो सभी भ्रम व कर्म शात हो चुके होते है। वे तो निरन्तर दाता के वियोग में ही रहते है। उनके पास तो रोना, चिल्लाना और आहे भरना है। उनकी स्थिति बड़ी ही विचित्रसी होती है।'

"हमारी आयु तेज गति से बीती जारही है। यदि हम थोड़ीसी भी भूल कर देगें तो फिर हमें पछताना पड़ेगा। फिर हम फूट फूट कर रोवेगे और कहेगे कि हायरे हमने व्यर्थ ही इतने दिन यो ही बर्बाद कर दिये। अतः अब हमारे लिये एक क्षण भी खोना ठीक नही। एकदम सब काम छोड़कर उसमें समर्पण हो जाओ क्योंकि समर्पण में ही कल्याण है।"

एक वन्दा –"भगवान! समर्पण किस का करे ? क्या अह का समर्पण करें ?"

श्री दाता–" 'मैं' और 'तू' दोनो ही उसी के रूप है अत. दोनो ही प्रधान है। दोनो ही आवश्यक है। यदि अह नहीं होगा तो समर्पण कौन करेगा। एक रूप के समर्पण होते ही दूसरा रूप हो जाता है। 'मैं' और 'तू' में इतना ही भेद है जितना रोशनी और हरिकेन में है। हरिकेन की रोशनी हरिकेन में सुरक्षित है। 'मैं' जब तेरा हो जाता है तब वही 'मैं' आनन्द का देने वाला हो जाता है। अहम्, सोऽहम् और दासो अह का यही तो रहस्य है।"

"आप लोग तो उसी कारीगर के औज़ार हो। वह तो औजारो मे ही औजार बनाता है। वह स्वय तो दूर रहता हैं। दादू जी ने ठीक ही कहा है :–

करे कराये मेरे साइयाँ, चित मे लहर उठाय।
दाता जीव के सिर धरे, आप अलग हो जाय॥

करने धरने वाला वही है। उसकी महर से ही उसका भान होता है। भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी महान् थे। उनकी तीव्र इच्छा भगवान श्री राम के दर्शना की हुई। श्री राम उनके इष्टदेव थे। इस कार्य में सहायता करने के लिये उन्होंने भक्तराज श्री हनुमानजी से प्रार्थना की। एक दिन वे चित्रकूट के घाट पर स्थित अपनी

कुटिया में बैठे हुए अपने इष्टदेव का नामस्मरण कर रहे थे। अचानक उनकी नजर कुटिया से बाहर जगल की ओर गई। उन्होंने राम से सुन्दर स्वरूप वाले व्यक्ति को हाथ में धनुषबाण लिये जाते हुए देखा। साक्षात भगवान राम ही थे वे किन्तु बिना उनकी कृपा के क्या होता है? उन्होंने उन्हें शिकारी समझा अत घृणा से मुह मोड लिया। उनके चले जाने पर हनुमान जी ने आकर बताया कि अभी अभी भगवान राम धनुषबाण हाथ में लेकर निकले थे। यह सुन कर तुलसीदास जी बहुत दु खी हुए। उन्होंने हनुमान जी से फिर प्रार्थना की कि एक बार और कृपा कर भगवान के दर्शन करा दो। साथ ही कहा कि वे तो मूढ एव मन्द मति हैं। भगवान को पहिचान लेना उसके वश की बात नही है अत. भगवान स्वय आकर कहें कि वे राम है तब ही उन्हें पहचाना जा सकेगा। भगवान तो लीलाधारी है। वे लक्ष्मण जी के साथ सन्त का रूप धारण कर तुलसीदासजी की कुटिया में पधार गये। उस समय तुलसीदासजी भगवान की पूजा के लिये चन्दन घिस रहे थे। भगवान ने बिना उनके पूछे ही तिलक ले लिया और यह कहते हुए अपने ललाट पर लगाने लगे –

> चित्रकूट के घाट पर भई सतन की भीर।
> तुलसीदास चदन घिसे, तिलक करें रघुवीर॥

भगवान श्री राम ने अपने श्री मुख से स्वय का परिचय दे दिया किन्तु तुलसीदास जी ने तो उन्हें एक साधारण साधु समझा। उल्टे वे तो उन पर इस लिये नाराज़ हो गये कि भगवान की पूजा का तिलक उन्होंने खराब कर दिया। उन्हे तिलक फिर से तैयार करना पडेगा। उनके चले जानेके बाद हनुमानजी ने बताया कि वे साधुओ के भेष में राम और लक्ष्मण थे। सुन कर वे बडे दुखी हुए। अतः उनकी कृपा बिना उनका भान होना कठिन है। 'मैं दर्शन करना चाहता हूँ या मै दर्शन कर सकता हूँ यह कहना और समझना व्यर्थ है। यह 'मैं' कुछ भी नही कर सकता है। यह 'मैं' जब 'तू' में *बदल जायेगा तभी सब कुछ है अत मैं का समर्पण आवश्यक है।* ऐसा होने पर ही उसकी महर का भान सभव है। उसकी महर ही सर्वोपरी है।

• • •

सहारा दाता का

दि. ५–१०–८० का प्रातः का समय था। उस दिन श्री दाता की तबीयत ठीक थी। प्रोफेसरों की मण्डली दर्शनार्थ उपस्थित हुई। श्री दाता को प्रसन्न चित देख कर के सब श्री दाता के पास जा बैठे। उनमें से एक साहब ने दाता से प्रश्न कर ही लिया।"

प्रोफेसर · · · "आपका सहारा चाहिये :"

श्री दाता मुस्कराते हुए, · · · "अभी आप लोग यहाँ किसके सहारे से आये हैं और यहाँ जो बैठे हैं, किस के सहारे से बैठे हैं ? पुरूष के स्वय के शक्तिशाली होते हुए माँ की जरूरत क्यों पड़ी ? आपका स्वरूप प्राप्त करने के लिये ही उसे माँ की जरूरत पड़ी कुछ न कुछ साधन बनता ही है। पुरूष कभी पुरूष की इच्छा नहीं करता। यह तो माया ही है जो पुरुष की इच्छा करती है।"

प्रोफेसर · · · · "भगवन् ! दाता के लिये कोई कहते हैं कि वे राम रूप हैं। कोई कहते हैं कि वे शिव रूप हैं। कुछ लोग कृष्ण का रूप बताते हैं। हमें आप बतावे कि भगवान् कौन है, कहाँ हैं ?"

श्री दाता––––'एक कुत्ते का बच्चा है। वह अपने मालिक से प्यार करता है। वह मालिक को बहुत चाहता है और वह रात दिन मालिक को ही देखना चाहता है। मालिक उसके भाव को देख कर प्रसन्न होकर उसे गोद में उठा लेता है। हम क्या कहेंगे ? गति बड़ी विचित्र है। कोई कह दे कि मुझ को भगवान् कह दो, तो उसकी बात को कौन सुनेगा। और यदि वह अपने आप को भगवान् कहलवाने के लिये इनकार कर दे और कह दे कि मुझको भगवान् न कहो तो लोग अधिक से अधिक कहने लगेंगे। यही तो उसकी विचित्रता है। यदि पिता का आनन्द लेना चाहो तो पुत्र बन कर रहो जिससे उसका आनन्द ले सको पिता कहना ही पुत्र का सकेत है। मास्टर होने का सकेत ही विद्यार्थी होना है।

इसलिये आप यह कह सकते हैं कि पिता ने पुत्र को पैदा किया है लेकिन पिता कह देने का संकेत ही पुत्र है। अत आनन्द लेना हो तो पुत्र बनकर पिता का आनन्द ले लो। अन्य चक्कर में पड़ना व्यर्थ है। उसकी चाह और लगन बड़ी बात है। यदि चाह और लगन नही है तो समुद्र में घर करने से ही क्या लाभ है? बच्चे के दूध पीने का साधन माता है। यदि उसको चाह है तो साधन है। यदि आपको चाह है तो वह सब जगह विद्यमान है। यदि चाह नही तो माता का दूध भी दु ख दायी हो जाता है। उसकी प्यास में डट कर बैठ जाओगे तो तुम्हारे पास भी साधन हो जावेगा। जितने भी बुद बुदे उठते हैं, उठते जावेगे, मिटते जावेगे। सहारा उसी का पकड लो।

० ० ०

शंका मिटाने का उपाय

कुं. हरदयालसिंह जी ने भीलवाडा में एक भवन बनाया जिसका गृहप्रवेश समारोह दिनांक ५-११-८० को प्रातः सवा नौ बजे का था। उस दिन धनतेरस थी। अनेक भक्त लोग इस अवसर पर उपस्थित थे। सत्संग का खूब आनन्द रहा। दिन भर भजन-कीर्तन होता रहा। रात्रि को भी सत्सग चलता रहा। श्री दाता का प्रवचन भी हुआ। प्रवचन के अन्तर्गत एक बन्दे ने श्री दाता से प्रश्न किया।

बन्दा. 'भगवन्। आपकी कृपा का अनुभव होते हुए और आनन्द की अनुभूति होते हुए भी मन मे शका उत्पन्न हो जाती है और शका के उत्पन्न होते ही मन विचलित हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ?

श्री दाता... ..''शंका होती है। मन और बुद्धि का स्वाभाविक गुण है शंका का होना। बडे बडे महात्माओं, ऋषि महर्षियो और मनीषियो को भी शका होती रही है। तथा हो जाती है फिर साधारण व्यक्तियो की तो बात ही क्या है! माँ सती तो साक्षात परमेश्वरी ही थी। उस जगत जननी माँ को भी शंका हो गई थी जिसके कारण उसे अपने शरीर को अग्नि में होम देना पडा। वह जानती थी कि भगवान् राम साक्षात् भगवान् हैं और सृष्टि के भार को उतारने हेतु पुरुष वेश में अवतरित हुए हैं। भगवान् भोलेनाथ भी उसे निरन्तर यही फरमाया करते थे कि राम पूर्ण ब्रह्म है। वे मेरे इष्टदेव हैं। ये पृथ्वी का भार उतारने हो मनुष्य रूप धारण कर आये हैं। इससे अधिक विश्वास दिलाने वाली बात क्या हो सकती है! किन्तु वही सती श्री राम में शका कर बैठी। श्री राम का वनवास का समय था। रावण सीता को हर ले गया था। राम और लक्ष्मण सीता की तलाश कर रहे थे। श्री राम सीता के वियोग में विलाप कर रहे थे। वे एक साधारण

ससारी व्यक्ति की तरह रो रहे थे, झाडी झाडी से सीता के बारे में पूछते जा रहे थे। यह सब तो दाता की लीला है। वह लीला धारी है। वह पूरा नाटककार है। उसको समझ लेना सरल नही है। श्री राम जब सीता के वियोग में अत्यधिक दुखी थे, सयोग से ठीक उसी वक्त भोले भण्डारी भगवान् शिव सती जी को साथ लिये हुए उधर से निकले। भगवान राम को इस रूप में देखकर मुस्करा कर मन ही मन प्रणाम कर आगे बढ गये। माता सती ने भी श्री राम को इस विचित्ररूप में देखा। उन्हे देख कर वह भ्रमित हो गई। उसने सोचा यह तो साधारण सा जीव मालूम होता है। यदि ये भगवान होते तो साधारण पुरुष की तरह रोते कलपते क्यो ? इस तरह रोने-कलपने वाला व्यक्ति भगवान् कैसे हो सकता है ? मन थोडा सा भ्रमित हुआ नही कि अनेको शकाओ के बादल उठ खडे होते हैं, तर्क बुद्धि जागृत हो जाती है और मन की गति विचलित हो जाती है। माता सती के मन में भी शका ने प्रवेश किया। शका के होते ही वह विचलित हो गई। उसने उनकी परीक्षा लेनी चाही। वह भगवान् शिव से भी न कह परीक्षा लेने हेतु सीता का रूप धर एक झाडी के पीछे जा बैठीं। आगे जो कुछ हुआ आपने सुना ही होगा। अत शका होती ही है। देखने के बाद भी शका हो जाती है। आप लोगो ने तो कभी दाता को देखा है नही। अन्य लोगो के कहे कहे आप दाता की रूप-रेखा, आकार, स्वरूप आदि मानते हैं। देखी हुई वस्तु में भी आप शका करने लग जाते हैं, फिर जिसको आपने कभी नही देखा, उसमें शका का होना स्वाभाविक है और होती ही है। नारद से मुनि भी भगवान् में शका कर गये। वासना और कामना मानव के मन की स्थिरता को डावाडोल कर देती है। भगवान् कृष्ण साक्षात् भगवान् ही थे। लोग उन्हें सोलह कला के अवतार ही मानते हैं। उनमें आज कोई शका नही करता है किन्तु उस समय के महान् व्यक्ति भी उनके भगवान् होने में शका करते रहे। वे कहा करते थे कि यदि वे भगवान् हैं तो माखन की चोरी क्यो करते रहे ? छल-कपट क्यो किया, गोपियो के साथ रास लीला क्यो करते थे ? वे तो स्वय शक्तिमान हैं फिर एक साधारण से राजा

से डर कर द्वारिका में क्यो जा छिपे ? इस प्रकार की अनेक बाते अनेक महापुरूष भी करते रहे हैं। यह सब प्रभु की ही लीला है। यह सब वह इसलिये करता है जिससे ससार का कार्य विधिवत् चलता रहे। जब तक लकडी है तब तक अग्नि का अस्तित्व है। लकडी के न होने पर अग्नि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। मेरे दाता बन्दे को एक बार अनुभूति करा देते हैं फिर बन्दे का काम है कि उस अनुभूति के आधार पर आगे बढता रहे। उसमें अटूट विश्वास करे। उसके प्रति सच्चा प्रेम जागृत करे। अटूट विश्वास और सच्चे प्रेम के सामने शकाएँ अपने आप मिट जाती है"

"एक पत्नी अपने पति में कभी शका नही करती है, कारण उसका अपने पति में पूरा विश्वास है। यदि वह पति पर से विश्वास हटाले और शका करने लग जाय तो आप लोग ही कह देंग कि यह कैसी भून्डी (मूर्ख) औरत है। अब आप ही बतावे कि उसकी क्या दशा हो जावेगी ? वह घर की रहेगी न घाट की। वह पथ-भ्रष्ट तो होगी ही किन्तु साथ ही साथ वह अपने पति के स्वरुप से भी वचित ही रहेगी।

"मेरे दाता सभी कामो को करन वाला हैं। वही सभी कर्मोका कर्ता-धर्ता होते हुए भी अकर्ता है। होता वही है जो वह चाहता है। वृक्ष का एक पता भी हिलता है तो उसकी इच्छा से हिलता है, किन्तु महापुरुष कहते हैं कि वह तो इच्छा से परे है। यदि बन्दे को अपने स्वरुप की ही चाह है तो उसकी चाह तो करनी ही पडेगी। अपनी ही चाह मे वह स्वय है। उसका अटूट विश्वास, अपनी लगन और सच्चे प्रेम से हमारे सभी भ्रम, सभी शकाएँ निर्मूल होजाती हैं। महापुरुषो के पास तो ज्ञान था। आप लोग भी बुद्धिमान हो। आप के पास भी ज्ञान भरा पडा है, किन्तु आपने सुना, गोपियो के पास कौनसा ज्ञान था ? उन्हे तो केवल यही भान था, कृष्ण हमारा है।' इसी एक धारणा के आधार पर वे कृष्णमयी हो गई। अच्छे अच्छे ऋषि-मुनि, महान् सन्त और महान् योगी जिस पद को नही प्राप्त कर सके उस को गोप-गोपियो ने पा लिया।

"भगवान् कृष्ण के प्रति मां यशोदा को भी शका हुई थी। भगवान् कृष्ण अपनी बाल्यावस्था में एक बार गोप-गोपियों के साथ खेल रहे थे। खेलते-खेलते उन्होंने मिट्टी उठाई और मुह में धर ली। शिकायत होने पर मां यशोदा डण्डा लेकर उन्हे भय देने आई। इस पर कृष्ण ने अपना मूह खोल कर बताया। मूह में माता यशोदा ने विश्व रुप देखा। वह चकित हो गई। उस समय वह जान गई कि उसका लाल तो भगवान् का अवतार है। वही माता यशोदा कुछ ही देर बाद शका करने लगी और कहने लगी कि उसे भ्रम हो गया है। वह कहने लगी कि कृष्ण उसे यो ही बहका रहा है। शंकाएँ तो होती है किन्तु उसकी महर से मिट जाती हैं। उसकी कृपा के लिये प्रेम और लगन का होना जरुरी है।

"भगवान् शकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उनका फरमाना था कि जा तू है वह मै हूँ और जो मैं हूँ वह तू है। वे सभी प्राणियों में गूढ, सर्व व्यापी, सब भूतो की अन्तरात्मा, सब कर्मों का नियन्ता, चैतन्य स्वरुप, शुद्ध और निर्गुण ब्रह्म को देखते थे। उनका फरनामा था कि जो बुद्धिमान मनुष्य उसको अपने में स्थित समझता है, उसको नित्य शान्ति प्राप्त होती हैं। किन्तु उनके इन उपदेशो पर स्वय उनके अनुयायी ही शका करने लगे। जाति से श्री शकराचार्यजी ब्राह्मण थे। उनके लिये सिद्धान्त स्वरुप जाति-पाति का कोई भेद नही था। वे पूरे जगत् को आत्मवत ही देखते थे किन्तु जगत्-स्वभाव में सासारिक मर्यादाओं का लोक हित के लिये पालन करते थे। एक दिन वे जन-समूह मे अद्वैतवाद पर व्याख्यान दे रहे थे, उस समय चमार जाति के एक भक्त ने उन्हे अपने घर आकर प्रसाद पाने का निमत्रण दिया। शत्रु और द्वेषी व्यक्तियों को अच्छा अवसर मिला। उन्होंने देखा कि स्वामीजी अद्वैतवाद की बातें तो बहुत करते हैं किन्तु अब देखना है कि इनकी कथनी और करनी में कितना अन्तर है। उन्होने सोचा कि यदि शकराचार्य जी इस चमार का निमत्रण स्वीकार नही करते हैं तो वह देंगे कि आपके उपदेश थोथे हैं और यदि स्वीकार कर चमार के यहाँ जाकर भोजन कर लेगे तो लोगो के सन्मुख इन्हे बदनाम

कर अपमानित करने का अच्छा अवसर मिलेगा। उन सबने भी चमार के निमंत्रण को स्वीकार कर लेने के लिये आग्रह किया। सत्संग में सच्चे भक्त-जन तो कम ही आते हैं तमाश बीन अधिक। किसी बात को बिगाडने वाले अधिक होते हैं और बनाने वाले कम ही होते हैं।"

"भगवान शंकराचार्य जी ने सभी के अन्तर्भावों को जान लिया और तत्काल उन्होंने चमार के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। चमार बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपने घर गया। उसने व उसकी पत्नीने बड उल्लास से घर की सफाई की। आंगन को लीपा-पोता। गोमूत्र और गोबर से चोका लगाकर मालपुवे की रसोई बनाई। भोजन बनाकर उसे एक ओर रखकर अपनी पत्नी को चोकसी के लिये नियुक्त कर दिया। अपनी पत्नी को अच्छी तरह समझा बुझा कर वह स्वामीजी को बुलाने चला। तमाशा देखने वालों की अपार भीड थी। सभी जिज्ञासु वृत्ति से एकत्रित हुए थे। चमार के आते ही भगवान शंकराचार्य कमण्डलु लेकर उठ खडे हुए और चमार के पीछे पीछे चुपचाप चल दिये। उनके शिष्य व अन्य दर्शक भी आश्चर्य चकित होकर उनके पीछे हो गये। उन लोगों के जीवन में इस तरह का पहला ही अवसर था। हजारों की संख्या में लोग पीछे पीछे चले।"

"उधर एक अनहोनी घटना घट गई। भगवान् लीलाधारी जो ठहरा। अपने आश्रित जनों के हित की रक्षा करना उसका पहला काम है। वह कभी अपने भक्तों को अपमानित होने का अवसर ही नहीं देता। चमार की पत्नी भोजन की रक्षामें तत्पर थी। एक हाथ में लकडी व दूसरे हाथ में पंखा था। अधीरता से वह स्वामी जी के आने की बाट जो रही थी। पास ही उसका बालक खेल रहा था। वह धीरे धीरे चुल्हे को आग की ओर बढने लगा। बहुत मना करने पर भी वह आग की ओर बढता रहा। माँ का हृदय जो ठहरा। जब वह आग को पकडने लगा तो उसकी माँ दौड पडी। उसने बालक को पकड लिया। इधर तो उसका

उठना था, उधर एक बडा सा कुत्ता आया और लपक कर मालपुओ की थालीपर टूट पडा। उसने कई मालपुओ को मुह में भर लिया। यह देख कर चमार की पत्नी कि–कर्तव्य विमूढ हो गई। फिर सभली और लकडी लेकर उस पर टूट पडी। किन्तु अब क्या रखा था? कुत्ता तो खा–पी कर, बचा खुचा भी मुह में लेकर चम्पत हो गया। कुछ देर बाद उसने सोचा कि जल्दी से चौका लगाकर फिर से रसोई तैयार कर ली जाय। वह इसकी तैयारी मे लगी। उधर भगवान शकराचार्य जी ने सोचा कि बना बनाया काम ही बिगड जावेगा अत वे शोघ्रता से चले। चमार ने प्रसन्नता से घर में प्रवेश किया किन्तु वहाँ का हाल देख कर दग रह गया। उसे काटो तो खून नही। उसको अत्यधिक दुख हुआ, किन्तु करे तो क्या करे। रोते–रोते वह भगवान शकराचार्य के पैरो में गिर पडा और क्षमा मागने लगा। उसने फिर से भोजन बने तब तक ठहरने की प्रार्थना की, किन्तु इतना अवकाश कहाँ था। वे उस चमार को सान्त्वना देकर वापिस अपने विश्राम स्थल की ओर चल पडे। तमाश बीनो को बडी निराशा हुई। उनका बना–बनाया खेल ही बिगड गया। वे मुह लटका कर वापिस लौट पडे। चमार भी दुखी आत्मा से स्वामी जी के पीछे पीछे चला। वहाँ पहुँचने पर उन्होन चमार को आश्वस्त करते हुए कहा कि उसन भोजन बडी ही श्रद्धा-भक्ति और प्रम से बनाया। उसका भोजन बडा ही स्वादिष्ट था। यह सुनकर चमार सकपका गया। वहाँ जो दर्शक खडे थे उन्होंने, यह सुनकर, व्यगात्मक दृष्टि से कहा कि स्वामी जी को इस तरह चमार का अपमान नही करना चाहिये। चमार एक ओर तो गरीब और फिर दुखी। इन्होने उसके यहाँ भोजन नही किया सो तो ठीक किन्तु इस तरह उसकी मजाक उडाना तो ठीक नही। ऐसा अन्याय तो इन जैसे महात्मा को शोभा नही देता। इस पर श्री शकराचार्य जी ने अपनी पीठ दिखाते हुए कहा कि वे ही कुत्त के रूप में चमार के घर भोजन करन गये थे। आप सब चमार की पत्नी की दी हुई लकडी की चोट देख सकते हैं। लोगो ने उनकी पीठ की चोटो को आश्चर्य से देखा। सब के सब चमत्कृत हो गये। उन्हाने तब माना कि सब में वही एक भगवान रमण करता है किन्तु यह

भावना भी कुछ ही दिन ठहर पाई। प्रत्यक्ष घटना के देखने पर भी पुन. लोग शकातु हो गये। जिन्हे भगवान् शकराचार्य जी की बातो पर अटूट विश्वास था उनके मन में तो शका का कोई प्रभाव नही रहा, किन्तु जो लोग कामना–वासना से प्रेरित थे या जिनमें अहभाव की प्रधानता थी वे विपरीत विचार प्रकट करते हुए जगत्–गुरू का विरोध करते ही रहे।"

"यह सब दाता ही की लीला है। कर्म का चक्र तो चलता ही रहता है। कौरव और पाण्डवो के बीच युद्ध हुआ। एक पक्ष हारा और एक जीता। इसी तरह एक देश दूसरे देश से लडता है। हार और जीत होती है। यह सब क्या हैं। आदमी मरते हैं व पैदा होते हैं। सब क्या है? प्रभु का खेल ही तो है। यह सब कर्मचक्र का ही तो पसारा है। वैसे न तो कोई जीतता है और न कोई हारता है। न कोई मरता है, न कोई मारता है। एक कर्मचक्र निरन्तर चलता है। अनेक चिनगारियाँ उसी चक्र से निकल रही है और उसी में समा रही है। मनुष्य समझ बैठता है कि अमुक काम मै ही कर रहा हूं, इसी का चक्कर है। अह भाव नष्ट हुआ नही कि बात समझ में आजाती है कि जो भी कर्म वे सब दाता के ही हैं।"

"बन्दा जब तक सोचता है कि मै कर्म कर रहा हूँ तब तक अच्छे–बुरे कर्मो के फल को उसे ही भोगना पडता है। जब वह अकर्ता होकर कर्म करता है तो कर्म-फल का भोक्ता वह नही रहता है। उनका कर्म निष्कर्म हो जाता है। एक सिपाही युद्ध भूमि में अपने मालिक के आदेश पर लडता है और हजारो–लाखो व्यक्तियो को मौत के घाट उतार देता है, किन्तु लोग उसे हत्यारा न कह कर उसकी यश-गाथा गाते है। उसको देश का रक्षक बता पुरस्कार से विभूषित करते हैं। दूसरी ओर एक व्यक्ति अपने मन की गति *से प्रेरित होकर किसी की हत्या कर देता है, तो वह हत्यारा पुकारा* जाता है और उसको फाँसी पर लटकाया जाता है। यही तो कर्म चक्र का खेल है। आप निष्काम होकर भक्ति करो, दाता के चरणो का विश्वास करो और दाता से सच्चा प्रेम करो फिर देखो कैसा

चमत्कार होता है। आपकी ऐसी भक्ति सबीज होगी। ऐसी अवस्था में आपकी सभी शकाएँ अपने आप निर्मूल हो जावेगी। आपको उसके स्वरूप की अनुभूति होने लगेगी और आत्मानन्द का मार्ग खुलेगा।

"भावो से ही भक्ति का समावेश होता है। आप ही शंकाओ के निर्मूल करने में सहायक होते हैं। अहकार की भावना तर्क-बुद्धि को जागृत करती है। तर्क बुद्धि के उत्पन्न होते ही शका पर शका होना प्रारभ हो जाता है। एक औरत को जो भी स्वप्न आता था वह सच्चा होता था। चारो ओर इस बात की प्रसिद्धि होगई कि अमुक औरत का स्वप्न सच्चा होता है। इस बात से उस औरत को भी गर्व हो गया कि उसका स्वप्न सदैव सत्य होता है। एक दिन उस औरत ने स्वप्न में अपने पति को मरा हुआ देखा। उसने अपने सपने की बात अन्य सब को सुना दी। सभी प्राणी दुखी हुए और रोने-धोने लगे। जब उस औरत का पति आया तो उसने सबको रोने धोने का कारण पूछा। कारण मालूम होने पर उन सब की मूर्खता पर वह हसने लगा। उसने सब को डाट फटकार कर, समझा-बुझा कर चुप किया। कुछ दिन निकल गये और उस औरत का पति नही मरा। उस औरत का सपना झूठा हो रहा था। इस बात का उस औरत को बडा दुख हुआ। उसने सोचा कि इस बात से उस की बइज्जती होगी। अत एक दिन शाम को उसने भोजन मे जहर मिला दिया। जहर ने अपना प्रभाव दिखाया और उसका पति मर गया। उसके पति के मरने के बाद उस पर अनेक सकट आये कैसी अद्‌भुत बात है। पति मरे तो भले ही मरे किन्तु स्वप्न तो सच्चा होना ही चाहिये। ऐसा अहभाव के कारण ही होता है। मनुष्य अपने अहभाव की तुष्टि के कारण अपना भला बुरा भी नही सोचता है। अहंकार के भाव हमारे मार्ग को कण्टकाकीर्ण करते हैं, अत: अहभाव से रहित होकर निष्काम कर्म करते रहना चाहिये। दाता के प्रति अटूट विश्वास रखते हुए पूरे प्रेम से अपने मन को लगा दें तो शकाओ का राज्य ही समाप्त हो जावेगा।"   ०   ०   ०

नाम का रहस्य

सदैव की भाँति सन् १९८० का कार्तिक पूर्णिमा का सत्संग पुष्कार गौ-शाला में ही हुआ। दिनांक २०-११-८० को गौ-शाला के ऊपर के कमरे में श्री दाता का बिराजना हो रहा था। उस समय जामोला वाले कृष्ण गोपाल जी ऊपर कमरे में आये। प्रणाम कर, बैठ गये। श्री दाता उस समय भाव लीन थे, अतः कुछ ध्यान दिया नही। इस पर एक बन्दे ने कहा 'कृष्ण गोपाल सिंह जी आ गये हैं।" श्री दाता यह सुन कर कुछ कुछ बाहरी जगत् में आये। उनके श्री मुख से निकला 'सीता राम कहो चाहे राधेश्याम कहो, चाहे गोपाल कृष्ण कहो और चाहे कृष्ण-गोपाल कहो इसमें कोई अन्तर नही है। सब एक ही है। सब उसी एक के स्वरूप हैं। आप लोग जानते हो गोपाल कृष्ण का क्या अर्थ है?" सुन कर सभी लोग चुप हो गये। कुछ देर बाद श्री दाता ने फरमाया, "गो का अर्थ है इन्द्रियाँ और पाल का अर्थ है पालने वाला। कृष्ण का अर्थ है अंधेरा अर्थात् अज्ञान। जो अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाता है वही गोपाल कृष्ण है। सब उसी एक दाता के नाम हैं। सभी उसी एक के रूप हैं। वह अनेक नामी है और अनेक रूप वाला है। जिसको जो नाम अच्छा लगे उसके लिये वही नाम खरा है। वही नाम प्यारा है। तुलसीदास जी को राम का नाम ही प्यारा था। वृन्दावन में एक कृष्ण-मन्दिर में पधारना हुआ। वहाँ कृष्ण-छवि के दर्शन थे। इधर तुलसीदासजी तो राम के भक्त थे। उन्हे तो राम ही प्यारा था। वे तो सब में ही राम को ही देखते थे अतः उन्होंने कहा:-

> क्या वहूँ छवि वृज राज की, भले बने हो नाथ।
> तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बाण ले हाथ॥

दाता को अपने भक्त की बात रखने के लिये अपने हाथ में धनुष बाण लेना ही पड़ा। किन्तु माकाराम का तो यो कहना है:-

क्या कहूं छवि अवधेश की, भले बने हो नाथ।
वन्दा मस्तक तव नवे, मुरली ले लो हाथ॥

आप लोग अवधेश का अर्थ तो जानते होंगे।" यह बात सुनकर सब चुप हो गये। एक वन्दा साहस कर बोला।

वन्दा ···"अवधेश का अर्थ है श्री राम। अवध देश का ईश अर्थात् अवध देश का राजा श्री राम।"

श्री दाता· ·"ठीक है। माकाराम ने तो सुना है कि अवधेश कहते हैं मरणशील शरीर का मालिक। मुरली कहते है इन्द्रियों को। मुरली ले लो हाथ का अर्थ हुआ हमारी इन्द्रियों को अपने वश मे कर लो। पूरे दोहे का अर्थ हुआ। हे शरीर के मालिक आपकी शोभा का क्या वर्णन किया जाय। आप इस शरीर में विराज रहे हैं सो बडी कृपा है। यह तो आपका ही स्थान है। कृपा कर आप मेरी सभी इन्द्रियो को आपके वश में कर लीजिये। आप जब मुझको शरण में लेंगे तब ही मेरा कल्याण है। सीताराम क्या है। जो पांचो तत्वो में रमण करता है वही सीताराम है। सब एक ही है। कुछ भी कह दो। चाहे राम कहो, चाहे कृष्ण कहो, चाहे अवधेश कहो, चाहे वृजराज कहो, कुछ भी कहो, सब उसी के नाम हैं। है वही जो सब में रमण कर रहा है, जो सब का मालिक है। जो अन्धकार को दूर कर ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाता है और जो विशुद्ध आत्मा है, वन्दा उसी को तो भजता है। सभी नाम मालिक के हैं। वन्दे का कुछ भी नाम नहीं है। क्या शरीर का भी कोई नाम होता है? जो पंच तत्व से इस शरीर में बैठा है नाम तो उसी का है। कहा भी है:–

बावन अक्षर बीच देखो असल अक्षर वो ही,
बावन अक्षर परे देखो तेरा तूही हो ही

सर्वत्र वही वह है। उसके बिना सब सार हीन है; निस्सार है। जिस वन्दे ने इस रहस्य को समझ लिया वह निहाल हो गया।

उसका जन्म ही सफल हो गया। वह माला माल हो गया। अतः एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाकर उसका स्मरण करो। इस शरीर की तो अवधि है। यह तो कभी भी नष्ट हो सकता है। अतः जब तक यह शरीर रहे तब तक इस शरीर के मालिक का साक्षात्कार कर लो। फिर देखो कितना आनन्द तुम्हें मिलता है। दाता की दयालुता की कोई हद नहीं है। बन्दा एक ऊँगल झुकता है तो वह एक हाथ झुक जाता है। यदि आप उसके लिये एक पैसा खर्च कर देते हो तो वह आपका सौ गुना कर लौटा देता है। बन्दा कुछ करे भी। वह तो बन्दे के भाव देखता है। बन्दा तो अपने आप में ही मस्त रहता हैं। उसे तो राग-रंग चाहिये। वह तो वासना का भूखा है। उसे तो वासना चाहिये। उसका मन विषय-वासनाओं की ओर ही अधिक दौडता है। विषय-वासनाओं को छोडकर यदि बन्दा उस ओर झुक जावे तो उसका काम ही बन जावे। तनिक भावों को बदलने की ही बात है। भाव बदले नहीं कि उससे प्रेम हुआ नहीं। जब तक अपने मन में स्वार्थ—भावना रहती है तब तक उससे प्रेम करने में रूकावट पैदा होती हैं। ऐसे समय में संकट बडे काम का है। जब कभी संकट आता है तब आप उसकी ओर अवश्य झुकते हो क्यों कि संकट में तो एक मात्र उसी का सहारा है। किन्तु आपका करें तो करें क्या ? ज्यों ही आपका संकट टला नहीं कि आप अपने स्वार्थों की बाते करने लग जाते हैं।"

"एक व्यक्ति खजूर के पेड नीचे से होकर जारहा था। वह व्यक्ति अमीर था। उसकी निगाह खजूर पर के पके हुए फलों पर गई। फलों को खाने की उसकी लालसा हुई। खजूर बहुत ऊँची थी किन्तु लालच ने उसको उकसाया। उसने अपना सामान एक ओर रखा और खजूर पर चढने लगा। आधे से अधिक वह चढ गया। आगे चढना उसके लिये भारी हो गया। उसने नीचे की ओर देखा तो जमीन उसे बहुत दूर दिखाई दी जमीन से अपने तक की ऊँचाई को देख कर वह घबरा गया। उसको काले पीले नजर आने लगें। वह घबरा गया। गिर जाने के भय ने उसकी हालत को और बिगाड़ दी। वह कांपने लगा। अब ऊपर

चढना तो दूर, उतरना भी उसके लिये भारी पड़ गया। मौत का भय उसके सामने नाचने लगा। ऐसे समय में ही भगवान् का नाम याद आता है। वह घबरा कर भगवान् के नाम का स्मरण करने लगा। उसको उस समय भगवान् का ही आधार नजर आया। सच है! सकट के समय ही भगवान् का नाम नज़र आता है। उसने भगवान से प्रार्थना की कि यदि वह नीचे पहुँच जावेगा तो भगवान के लिये एक सुन्दर मन्दिर बना देगा। उसको साहस बंधा और वह कुछ नीचे उतरा। कुछ नीचे आने पर उसके भय में कमी हुई। अब उसने कहा मन्दिर बनाना तो कठिन है क्योंकि उसमें रुपये अधिक खर्च होता है अतः वह दाता के नाम से एक हजार रुपये खर्च कर देगा। वह कुछ और नीचे उतरा। अब उसका भय बहुत कम होगया था। अब वह एक हजार से पांच सो, सो, इकावन, इक्कीस ग्यारह व एक पर क्रमशः आता गया। नीचे आने पर वह उस एक को भी भूल गया। यह है मानव के मन की गति। हम कहते तो रहते हैं कि हम इतने वर्षों से दाता का स्मरण कर रहे है, किन्तु हमारा अमुक काम नहीं हुआ। यह काम नहीं हुआ, वह काम नहीं हुआ, यही चक्कर चलता रहता है। हम तो निरतर हमारे सांसारिक सुखों में लगे रहते हैं। स्वार्थ के वशीभूत होकर जो मन कहता है वही करना चाहते है। हम दाता का नाम तो बहुत कम लेना चाहते हैं। किन्तु आशा कही अधिक करते हैं। भगवान का नाम लेने के पहले ही शर्तनामा लगाते हैं। नाम लेने के साथ ही कहते है कि अमुक काम तो हमारा होना ही चाहिये।"

"आप जानते है कि लड़की जब तक कुवारी होती है तब तक वह अपने पति को पहचानती तक नही है। किन्तु जब वह अपने पति को प्राप्त करती है तब किसी प्रकार का कोई शर्तनामा नही लिखाती है। वह बिना किसी शर्त के पहिचान न होने पर भी साथ हो जाती है और उसकी इच्छा में ही अपनी इच्छा समर्पित कर देती है। वह जानती है कि पति की इच्छा करना ही मरना है। सुख के पहले ही दु.ख है। वहाँ तो पहले बिकना पडता है। जैसे आप अपने पेट के लिये बिक जाते हो। बिकने के बाद आप रात

देखते है न दिन । न ऊँच देखते हो और न नीच । जिसमें आपके पेट की पूर्ति होती है निश्चिन्त होकर वही काम करते हो । उसी तरह आप दाता के लिये बिक कर देखो ।"

एक बन्दा "मैं बहुत दुःखी हूँ । मैं दाता के चरणो से प्रम करना चाहता हूँ । कोशिश भी करता हूँ किन्तु अनुराग होता ही नही है । मैं यह भी जानता हूँ कि दाता की मेरे ऊपर बडी कृपा है फिर भी मन उस पूर्ण ब्रह्म की ओर नहीं झुकता ।"

श्री दाता . "उसको पूर्ण ब्रह्म कहना ही शका करना है । ब्रह्म को आपने पूर्ण कहा तो क्या वह अपूर्ण भी होता है ? जब वह अपूर्ण नही तो पूर्ण कैसा ? शका रहती है । भगवान श्री कृष्ण साक्षात् अवतार ही हैं। आप जानते हैं कि उनकी अर्जुन पर कितनी कृपा थी । कृपा इतनी थी कि स्वय अर्जुन के सारथी बने । अर्जुन भी जानता था कि कृष्ण स्वय भू है । वह विश्व का कर्ता-धर्ता है फिर भी वह भगवान् में बार बार शका कर लेता था । श्री कृष्ण ने अर्जुन को पूरी गीता सुना दी तो भी उसके मन में शका बनी ही रही । कृष्ण का विराट स्वरूप देख लेने के पश्चात् भी उसके मन में विश्वास नही हुआ । स्वय भगवान् सारथी के रूप में बिराजमान थ, फिर युद्ध स्थल में जाते वक्त हिरण को दांय लेकर सगुन मनाने के चक्कर में रहा । कैसी लीला है उस नटवर नागर की । आखिर स्वय भगवान को कहना ही पडा –

सगुन भला के श्याम, हिरण भला के हरि ।
अर्जुन रथ हांक दे, भगवान करेगा भली ॥

सम्पूर्ण गीता के सुन लेन पर भी जब अर्जुन को शका निर्मूल नही हुई तो भगवान् को अन्त में कहना ही पडा –

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।
अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

छोटा बच्चा भटक जाता है। दिन भर चक्कर खाकर घूम फिर कर सायकाल पुन घर लौट आता है तो उसे भूला हुआ नही कहते हैं। इस ससार रूपी चक्र में फँसकर भी यदि मनुष्य किनारे लग जाय अर्थात मुकाम पर आ जाय तो भी आनन्द की बात है। पर भगवान् की माया बडी विचित्र है। उसके विषय में कुछ कहा नही जा सकता है। वही उसकी कृपा का भान कराता है। उसकी कृपा का भान होने से ही लोग भारी से भारी सकट से बचते हैं। सकट के समय सकट से बचने के लिये कहते हैं कि हे भगवान इस बार तो उन्ह उबार दे। मरते दम तक वे अहसान नही भूलेगे। पर उसकी लीला देखो कि सकट निकलते ही वे भ्रमित होकर भूल जाते हैं। भूल पडना भी प्रकृति का नियम है। यदि भूल न हो तो आपको कुछ करना ही नही पड। कुछ ऐसे सकट और कष्ट आते है यदि आप उन्ह नही भूलोगे तो शरीर को रखना कठिन हो जावेगा। सभी सासारिक कार्य क्रम बन्द हो जावेगे। शरीर को आप कसे जीवित रख सकोगे। इस शरीर को रखने में उसका सहारा जरूरी है। सारे विश्व की रचना ही इस भ्रम के सहारे हुई है। कभी उसके नाम की याद, कभी उसके नाम की भूल। सारा कार्यक्रम ऐसे ही चल रहा है।"

एक बन्दा • "यह सब आपके हाथ की बात है। आप थोडा सा हाथ हिलादे तो बस काम बन सकता है।"

श्री दाता "हाथ घुमाना तो सरल है, किन्तु यह काम भी तो उसकी कृपा बिना नही होता है। कृपा से सब बन भी जावे किन्तु आपका ठहरना कठिन होगा। अत भ्रम बना रहे तब तक अच्छा है। आपके सामने आपकी पत्नी बैठी है। आप में और आपकी पत्नी में परस्पर में जो अन्तर है वह बना रहे तो अच्छा है। ससार को चलाने के लिये दाता को अनेक नाटक करने पडते हैं। आप अपने एक घर को चलाते हो। इस छोटे से घर को चलाने के लिये आपको कितने काम करने पडते हैं। सीता हरण की कहानी आप जानते हैं। श्री राम स्वय अवतार थे। वे अन्तर्यामी थे,

फिर भी झाडी झाडी में वे सीता को ढूढते फिरे। क्या वे नहीं जानते थे कि सीता जी कहाँ हैं। जानने हुए भी मर्यादा में रहना पडा। उसी मर्यादा में रह कर सब नाटक करना पडा। होने को तो सब बाते आपकी इच्छानुसार हो सकती है। उसके दर्शन भी हो सकते हैं, किन्तु दर्शन होने पर शरीर को रखना कठिन हो जावेगा। उसकी शक्ति को सहन करना कठिन हो जावेगा। अपने आपको सभाल नहीं पाओगे। आपने देखा है अग्नि की कृपा को। उसकी कृपा जिसपर होती है वही अग्नि हो जाती है। आपका शरीर ही नष्ट हो जावेगा तो फिर उसके दर्शन कौन करेगा ? कौन उस परमानन्द की अनुभूति करेगा। यदि आप उस आनन्द को लेना चाहते हो तो उसको अनुभूति के लिये शरीर को रखना जरूरी है। अत आपको अपने आनन्द प्राप्ति के लिये जो कुछ मिल रहा है वह पर्याप्त समझो। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' अति मे नष्ट हो जाना होता है। उसकी इच्छा का हो जाना ही आप लोगो के लिये कम बात नहीं है। आपने अति की इच्छा की नहीं कि गति बन्द हुई नहीं। गति के बन्द होते ही आनन्द की समाप्ति। क्या आप लोग अपने आनन्द को समाप्त करना चाहते हैं ?" यह सुन कर सभी श्रोता कुछ समय के लिये चुप हो गये। कुछ समय बाद एक बन्दा बोला।

एक बन्दा "आप फरमा रहे हैं कि उसको देख लेने पर शरीर नहीं रहता किन्तु सुनने में आया है कि महापुरुष उस परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं फिर भी उनका शरीर बना ही रहता है। ऐसा क्यों होता है। हमें भी उनकी तरह ही दर्शन करा दो हमारे शरीर को भी उसी तरह रख लो।"

श्री दाता. .."अग्नि का काम जलाने का है ही किन्तु यदि किसी लकडी की स्थिति विशेष होती है तो वह अग्नि के रूप को देखकर भी अपनी स्थिति में बनी रह जाती है। यह सब उसकी कृपा पर निर्भर है। रही है। महापुरुष उसे प्राप्त कर लेते है और प्राप्त करने के बाद भी शरीर को धारण किये रहते हैं। जानते हो, वे क्या करते हैं। स्वय के लिये तो ऐसे महापुरुष मरे

सोइ जानइ जेही देहु जनाई,
जानत, तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।

आप जब उसमें समा जाओगे तो आप में भी वही दिखाई देने लगेगा । फिर नमन भी वही करेगा । जैसे समुद्र की लहरे एक दूसरे में समा जाती है, लीन विलीन होती है, वैसे ही वह आप में व आप उसमें लीन हो जाओ । क्या आप ने समुद्र की लहरे देखी हैं और उन्हे गिनी है ? क्या आप उन्हे जानते हो ?

एक बन्दा–"लहरे तो देखी है । वे तो अनन्त है । वे गिनती में आती कहाँ है ?"

श्री दाता–"नही । आपने लहरे देखी नही है यह देखने का भ्रम है । लहर तो एक ही है । जैसे हजारो मन गेहूँ है किन्तु गेहूँ तो सब एक से है वैसे ही समुद्र में बून्द तो एक है ।"

एक बन्दा–"यदि वह एक ही बूद है तो फिर यह तूफ़ान क्यो है?"

श्रीदाता–"आपकी मौज है । यह सब आपके आनन्द के लिये है । लहरे टकरा टकरा कर अनन्त फुहारे उठाती है । उसका एक बिन्दु भी सारा समुद्र है । उसकी लीला को वही जाने । यह शरीर रहे चाहे जावे । रहे तो मौज आपकी और जावे तो मौज आपकी । हमारे लिये तो सरकार का आदेश ही सर्वोपरि है ।"

"आप लोग तो बडे बनने में आनन्द मानते हैं किन्तु हमे तो छोटे बन कर रहने में आनन्द आता है । गुरु नानक देव ने एक जगह कहा है –

नानक नन्हे हो रहो, जैसे नन्ही दूब ।
बडी घास जल जायगी, दूब रहेगी खूब ।।

छोटे होने से तो बडे बनने का मौका है किन्तु बडे का क्या बड़ा बनेगा ? (शरीर की ओर सकेत करके) यह घर उसी का है । जो भी इस घर के काम हैं सो सब उसी के हैं । तन और मन उसी में

लगा दो, उसी का बना दो फिर देखोगे कि वह और तुम एक हो हो जाओगे। जैसे स्त्री और पुरुष मिलकर एक हो गये वैसे ही दाता और तुम मिलकर एक हो जाओगे। जब तुम्हारा अस्तित्व दाता में लय हो गया तो फिर जो कुछ रहा वह दाता ही रहा। ऐसी स्थिति में एकमद्वितीयम् ब्रह्म वाली स्थिति होती है। वह पच तत्व से अलग तो है नही। पच तत्व में भी वही है और उससे परे भी वही है। हम उसको पा सकते हैं तो पचतत्व में ही पा सकते हैं। निरी आग को किसने देखा है। आग कभी अकेली जलती नही। जलने वाली तो लकडी ही है, अत आग को लकडी द्वारा ही देखा जा सकता है। उसी तरह मेरे दाता को भी उसी पचतत्व के शरीर में ही देख सकते हो। आप अपने मन से उस बडी सरकार के बन जाओ तो आप स्वय सरकार हो जाओगे।

० ० ०

छोटा बड़ा कौन !

पुष्कर गो-शाला में ही दिनांक २०-११-८० को श्री दाता ऊपर के कमरे में विराज रहे थे। उस समय गांव बसई हरदसा जिला मथुरा के एक सन्त श्रीराधेश्यामजी का पधारना हो गया। आते ही बड़े प्रेम भाव से उन्होंने श्री दाता को प्रणाम किया और बोले, "आपके दर्शन हो गये। आप तो महान् सन्त है। आप रामकृष्ण परमहंस हैं। आप तो चैतन्य महाप्रभू हैं। आप तो परमात्मा हैं।" उन्होने फरमाया....

"दरस परस और मज्जन पाना, कटे पाप कहे वेद पुराना।
जाकि कृपा शुक ज्ञानी भये, और ज्ञानी भये, ध्यानी भये त्रिपुरारी।
जाकि कृपा विधि वेद रचे, भये व्याप्त पुरानन के अधिकारी।
जाकि कृपा त्रिलोक धनी, सो कहावत श्रीवृज चन्द्र विहारी।
मेरे हूं कार्य करेगे सोही, श्रीकृष्ण प्रिया वृज भानु दुलारी॥

श्री दाता... 'आप बडे हैं। माकाराम तो दाता के दरबार का एक कूकर हूं।"

श्री राधेश्यामजी....

"वृज मण्डल का ही सितारा नही, जगतीतल का उजियारा है तू,
मन मोहकता इतनी तुझ में, सब के दिल को अति प्यारा है तू,
यह जीवन क्यों न निछावर हो, जब जीवन का ही सहारा है तू,
किस भांति विसारू बता तुझको, मन मोहन प्राण हमारा है तू॥
शंकर से सुर जाहि जपे, चतुरानन ध्यान औधर्म बढावे,
नेकि हिय में जो आवत ही, रस खान महा जड मूढ कहावे,
जापर सुन्दर देव बधू, नहीं बारत प्राण अबार लगावे,
ताहि अहीर श्री छोहरिया, छछियाभरि छाछ पे नाच नचावे,"

श्री दाता गद् गद् हो गये। दोनो सन्तो की मुखाकृति ऐसी ऐसी तेजोदीप्त थी जिसका वर्णन करना बडा ही कठिन है।

वहाँ जो व्यक्ति वैठे थे वे सब के सब के सब आनन्द रूपी समुद्र में गोते लगाने लगे। वे कभी राधेश्यामजी का मुह देख रहे थे, व कभी श्री दाता का। कुछ समय तक मूक स्थिति रही। फिर श्री दाता ने भी रसखान का एक पद बोला।

श्री दाता

"या लकुटि और कामरिया पर, राज तिहू पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौ निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौ।
रसखानि कबौं इन आँखिन सो, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौ।
कोटिन हौं कल धौत के धाम, करील की कुजन ऊपर वारौं।।"

श्री राधश्यामजी--

"सेस महेश गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावें।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड, अछेद अभेद सुवेद बतावें।
नारद से सुक व्यास रटें, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पे नाच नचावें।।

प्रभु आप महान् हैं। आपसा हमने कही नहीं देखा।

अद्वैत वीथी पथिकै रूपास्या, स्वाराज्या सिंहासन लब्ध दीक्षा।
शठेन केनापि वय हठेन, दासी कृता गोप वधू विटेन।।"

उस समय का दृश्य वर्णनातीत था। दोनो सन्त एक दूसरे की महिमा का वर्णन करते नही अघाते थे। श्री दाता की स्थिति बडो विचित्र सी थी। वे भाव मग्न थे। अन्त में बाबा ने श्री दाता को अपने स्थान पर पधारने के लिये निवेदन किया।

बाबा——"आप समय निकाल इस दास की कुटिया को पवित्र करने पधारे। आपकी बडी कृपा होगी। आप महान् हैं और राजस्थान की ज्योति है।"

श्री दाता——"राज्य भी बडो सरकार का व स्थान भी बडो सरकार का है। मैं तो गृहस्थ के दल दल में फंसा एक कीट हूँ।

मैं तो पतग हूँ। जैसे आप उड़ाना चाहे उड़ावे। लोग बाग पतग को बदनाम करते हैं कि पतग उड रही है किन्तु पतंग तो उडाने वाले के हाथ में रहती है। जैसी आपकी मौज।

बाबा---"पतग तो हम हैं। आप तो उडाने वाले हैं। आप तो पालक हैं और सचालक हैं।"

श्री दाता---"आप पतग हैं। पतंग तो बहुत ऊँची होती है।

बाबा---"जिस पर गुरु की कृपा होती है वही पहचान कर सकता है।"

श्री दाता---"सत्‌गुरु ही भगवान है। वह तो महान् है और विशाल भण्डार का मालिक है। मैं तो आपके सामने एक छोटा सा भिखारी हूँ।"

बाबा---"तभी तो भिक्षा लेने आया हूँ।"
श्री दाता---"भिखारी तो लेते हैं।'

बाबा---"आप सभी को देते हैं। इस समय आप पुष्कर में बिराज रहे हैं। आप यहाँ कुछ करने ही आये हैं। आप आये हैं और गुप्त रूप से अपना काम कर रहे हैं। हमारे ऊपर भी तनिक महर हो जाय।"

श्री दाता---"मैं तो भक्तों के चरण की रज हूँ।

गाज सुनी गजराज की, सुन मेरी महाराज।
जिस रज सू अहल्या तरी, ढूंढत हूँ गजराज।।"

बाबा---"पधारने का समय क्या होगा ?"

श्री दाता---"सारा समय आपका ही है। कोई समय ऐसा नहीं जिसमें आप न हो।"

बाबा---"गाडी भेज दू।"

श्री दाता---"यह गाडी आपकी ही है। आपकी गाडी में ही तो बैठा हूँ। जैसी आपकी मौज।"

श्री राधेश्यामजी प्रणाम कर अपनी कुटिया पर पधार गये। स्नानोपरान्त श्री दाता का भक्तो के साथ कीर्तन करते हुए बाबा की कुटिया पर पधारना हुआ। बाबा ने आगे बढकर श्री दाता का एव साथ में आये हुए भक्तो का स्वागत किया। बाबा गद्‌गद् हो गये। बडा ही आकर्षक दृश्य था दोनो सन्तो के मिलन का। श्री दाता बाबा की प्रशसा कर रहे थे और उसे महान् बता रहे थे। उधर बाबा श्री दाता को परमेश्वर के रूप में देख रहे थे व दाता की प्रशंसा में पद पर पद बोले जा रहे थे। उसने साथ में आये हुए भक्तो के भाग्य की भी सराहना की। भक्त जनो ने वहाँ भी कीर्तन बोला। कुछ समय बाद बाबा से आज्ञा लेकर श्री दाता अपनी भक्त मण्डली के साथ वापिस गो शाला में पधार गये। वापिस लौटते वक्त भी कीर्तन बोला जा रहा था। कीर्तन की ऐसी समा बंधी कि रास्ता चलने वाले व्यक्ति भी मस्त होकर सुनने व बोलने लगे। उस समय के आनन्द का वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है।

० ० ०

उसकी याद में अवरोध कहाँ ?

पुष्कर गोशाला के कमरे में श्री दाता का विराजना था। २१-११-८० का दिन था। श्री दाता के पास अजमेर के कई अधिकारी एव अन्य भक्त जन बैठे थे। सत्सग चल रहा था। लोग तन्मय होकर श्री दाता की अमृत वाणी सुन रहे थे। वे दाता की महिमा का वर्णन कर रहे थे। उन्होने फरमाया, "दाता सबसे परे हैं। वेद, वेदान्त, पुराण आदि उसके निरूपण करने में असमर्थ रहे हैं। वे भी नेति नेति कह कर अलग हो गये। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो शब्दो में नही बाँधे जा सकते। मै आप लोगो को ही एक साधारण प्रश्न पूछ लू। उत्तर देते नही बनेगा। आपके बच्चे ने आपको ही पूछ लिया 'अ' अक्षर पहले क्यो आया ? आप क्या उत्तर देंगे ? छोटे बच्चो के उत्तर देना सहज और सरल है क्या ?

एक बन्दा --"आप जो भी उत्तर देंगे, हम बच्चे उसे स्वीकार कर लेगें।

श्री दाता -—" प्रश्न आपके विश्वास का नही। आप तो यह बतावें कि आपके बच्चे विश्वास करेगे या नही ?

एक बन्दा---" विश्वास करते भी हैं और नही भी करते हैं।

श्री दाता " यह तो प्रश्न का उत्तर नही हुआ। केवल अधूरी बात हुई।"

एक बन्दा---" विश्वास करना ही आधी सीढी पार करना है। सतुगुरू के चरणो में आजाना ही विश्वास होने का द्योतक है।"

श्री दाता "नही। यह आप क्या कह रहे हैं। आपके पास आना ही विश्वास का द्योतक कैसे ? आपके पास कौन कौन से व्यक्ति आते हैं ? आप पर विश्वास करने वाले [या विश्वास न करने वाले।"

एक बन्दा · · · · "दोनों ही प्रकार के व्यक्ति आते हैं।"

श्री दाता · · · · "क्या वे सब प्रकार के व्यक्ति आपके लिये आते हैं ?"

एक बन्दा · · "सब के सब आते तो मेरे लिये ही हैं।"

श्री दाता · · · "यही तो आपकी सबसे बड़ी भूल है। वे आपके पास आपके लिये नहीं आते हैं। वे अपना काम लेकर अपने पास आते हैं। या तो वे पढ़ने आते हैं या फिर अपना दु.ख दर्द मिटाने। इसी तरह आप भी दाता के यहाँ अपना काम लेकर आते हैं। अपना दुख-दर्द मिटाने आते हैं। आप भगवान पर पूरा भरोसा करने नहीं आते। आप समर्पण करने नहीं आते हैं; वरन् आप कोरी बातें करने आते हैं। कोरी बातों से काम बनता नहीं। आप एक प्रश्न का जवाब देंगे। आप और आपकी पत्नी देखने में तो दो हैं किन्तु हैं एक ही। यह बता सकते हो।"

एक बन्दा——"यह कैसे हो सकता है। हम दोनों तो अलग अलग हैं।"

श्री दाता——"(पास मे बैठे हुए बच्चे की ओर सकेत करके) आप यदि अलग अलग हैं तो बतावें कि यह बच्चा किसका है ? आपका है या आपकी पत्नी का।"

एक बन्दा——"हम दोनों का ही है।"

श्री दाता——दोनों का रूप अलग अलग होते हुए भी आप दोनों का रूप एक ही है। इसी तरह आप अलग अलग होते हुए भी एक ही हैं। उसी तरह तू और मैं अलग होते हुए भी एक ही है। तुम कैसे कहते हो कि दाता की तुम्हारे पर महर नहीं है।"

बन्दे की पत्नी——"हमें विशेष महर चाहिये।"

श्री दाता---"आप कितना खाओगे। जितनी भूख होगी उतना ही तो खावेंगे। आप पर महर तो बहुत है, पर आप अपनी इच्छा के अनुसार ही ले पाते हो।"

बन्दे की पत्नी---"महर तो दाता की हम पर बहुत है पर बाहर-भीतर हमें दाता की अनुभूति नही होती है। हमें अनुभूति चाहिये।"

श्री दाता---"आपने कभी कठ पुतली का खेल देखा है। आप बता सकते हो उसमें खेल कौन करता है। कठ पुतली खेल करती है। वह नाचती है। वह बहुत कुछ करती है। किन्तु कठ पुतली को नचाने वाला परदे में छिपा रहता है। परदे में छिपे रहते भी परदे पर कठ पुतली का खेल खेलता है और कठ पुतली को नचाता है। उस खल से सब लोग आनन्द को प्राप्त करते है। खेल दिखाने वाला परदे पर प्रकट हो जाय तो सारा खेल ही समाप्त हो जाय।" विधान सभा में कार्य करने वाले एक बन्दे की ओर सकेत कर श्री दाता बोले, "आप विधान सभा में क्यो जाते है ?"

बन्दा---"सरकार का काम करने के लिये।"

श्री दाता---"काम आप करते हैं या सरकार करती है ?"

बन्दा---"काम सरकार करती है।"

श्री दाता --"जब तक आप कहते हैं कि काम मैं करता हूँ तब तक बात बनती नहीं। कहना यही पडेगा कि काम सरकार करती है यद्यपि काम आप करते हैं। यदि कोई आपको पूछे कि आप सरकार को बता सकते है तो आप क्या उत्तर देंगे ? आपको कोई पूछे कि क्या आपने दाता को देखा है ? क्या आप बता सकते हो ? जब आप ही दाता को व सरकार को नही बता सकते हो तो म्हाका (मेरा) राम तो कुछ जानता ही नहीं है, वह क्या बता सकता है।"

वन्दा···"हे अन्न दाता ! आप तो सब कुछ जानते है। आप तो समर्थ है।"

श्री दाता···"नही ! मे तो साधारण सा प्राणी हूँ। आपने देखा है कि मे तो आपको क्या आपके जूते और आपके कुत्ते को भी नमन करता हूँ जब दाता उनमें दिखाई देता है। हम तो उसकी महर के आसरे रहते हैं। उसकी महर के आसरे जीते हैं। आप को कहे कि आप महतर (हरिजन) को धोक लगाओ तो क्या आप लोग उसको धोक लगा पाओग ?"

वन्दा···"नही हम नही लगा पावेगे।"

श्री दाता···"हमें तो उसके धोक लगानी हो पड़ती है यदि उसमें वह (दाता) दिखाई देता है। यदि वह ज़हर भी पिलावे तो पीना पडता है। अपने पिया के लिये मरना पड़ता है। उसके लिये तो सब कुछ करना पडता है।

वन्दा···"आप तो समर्थ हैं। दाता तो सब कुछ कर सकते हैं किन्तु हमें तो दुनिया से डरना पडता है।"

श्री दाता 'नही। ऐसा नही है। दुनिया का डर नही है। स्वय के मन के अह का डर है। उसमे विश्वास न करने से ही ऐसा होता है। आप किसी मे विश्वास करते हैं ? वह गन्दगी में खडा है और आपको कहे कि उसको नमन करो तो आप नमन नही करेगे। आप कह देंगे कि गन्दगी मे नमन कैसे करू किन्तु आप नही जानते कि आपके अन्दर क्या भरा पडा है। खोल कर देखोगे तो गन्दगी भरी पड़ी है। गन्दगी से डरोगे तो काम कैसा चलेगा। उसको चाहते हो तो उसके लिये तो सब कुछ करना पड़ता है। हर स्थान पर उसको देखना पडता है।'

वन्दा.. "इसका भेद समझ में आवे तब ही तो हो सकता है। तभी तो हम नमन कर सकते हैं।।"

श्री दाता——"यह समझ से परे की बात है। ये सब बाते बुद्धि की पहुँच से परे है। यदि आपके समझ में आ भी जाय तो भी आप

नही करोगे । आप जानते हैं कि यह मल-मूत्र है अतः मल मूत्र से परहेज करोगे । परहेज तो करते हो लेकिन केसर-कस्तूरी को छोड़ कर अपने अन्दर मल-मूत्र को अपना कर क्यो बैठे हो? आप यह जानते हो कि सच्चिदानन्द ही आनन्द कन्द है फिर भी आप उसे अन्दर से नही मानते है । आप जानते हुए भी वैसा नही करते ।"

अन्य बन्दा---"काम करते हुए ऐसा भान हो जावे तब हम ऐसा कर सकते है ।

श्री दाता---" आप स्वय हो तो पीछे हटते हैं । भाव कराने में रूकावट किस की हैं । कौनसी रूकावट आपका क्या बिगाड़ेगी ? आप जयपुर रहते हैं और अभी यहाँ बिराजे हैं । आपको कह दिया जाय कि आप जयपुर की याद न करे किन्तु जयपुर की याद में कौनसी रूकावट आवेगी । आप यहाँ बैठे ही बैठे जयपुर की याद कर लेगें । आप अपने मन को जयपुर की याद करने से नहीं रोक सकते हैं । उसी तरह आप दाता को याद करो । दाता की याद करने में आपको कौन रोक रहा है ?"

बन्दा---"अभी तो जयपुर की याद नही आ रही है । पर कुछ देर बाद कोई जयपुर की याद दिला देगा तो जयपुर की याद आ जावेगी । उसी तरह कोई हमें याद तो दिलावे ।"

श्री दाता---"जैसे आप जयपुर की याद को नही भूलते हैं वैसे ही उस सचिदानन्द की याद को न भूलो । जयपुर की याद आप भूलना चाहो तो भी नहीं भूलते । उस याद को अन्य किसी को याद दिलाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । जिस प्रकार आप उस याद को नही भूलते उसी प्रकार आप चाहो तो दाता की याद को कोई नही भूला सकता है । आपको उसकी याद से कौन रोकता है ? जब आपकी इच्छा उससे मिलने की है तो फिर रोकने वाला कौन ?" जयपुर के एक अन्य सज्जन श्री दाता के पास ही बैठे थे । श्री दाता ने उनकी ओर सकेत कर पूछा, "आप क्या करते हैं ?"

सज्जन---"मैं तो सरकार की नौकरी करता हूँ।"

श्री दाता---"वाह ! खूब ! आप अपनी नौकरी कर रहे हैं; घर की नौकरी कर रहे हैं और बता रहे हैं कि सरकार की नौकरी कर रहे हैं।"

सज्जन---"घर भी तो सरकार का ही है।"

श्री दाता---"हाँ ! घर सरकार का है। यदि आप घर सरकार का मानते हैं और उसी का समझते हैं तो मन लगा कर काम करो। लगन में काम करो और उसी लगन में मगन हो जाओ। उसी में आनन्द है।" श्री दाता ने एक महिला की ओर संकेत कर पूछा, "आपके शरीर पर जो वस्तुएँ हैं उनमें से कौनसी वस्तुएँ आपकी है और कौनसी वस्तुएँ आपके पति की हैं ?"

महिला---"सभी वस्तुएँ मेरे पति की हैं"

श्री दाता---"आपने यह धोती पहन रखी है वह किस की है ?"

महिला---"यह धोती भी पतिदेव की ही है।"

श्री दाता---"आपने खूब कहा। क्या आपके पतिदेव जनानी धोती पहनते हैं ?"

महिला---"नहीं ! यह धोती तो मेरे पहनने की है।"

श्री दाता---"यह रंग किसने पसन्द किया ?"

महिला---"रंग तो पतिदेव ने ही पसन्द किया।"

श्री दाता---"कह दो यह धोती पिया की है और यह रंग पिया का है। इसी तरह (शरीर की ओर संकेत कर) यह धोती पिया की है। यदि हम हमारे कर्मों की ओर देखें तो क्या हाल हो ? हमने क्या क्या कर्म नहीं किये ? लेकिन दाता कितना

दयालु है। वह हमारे किसी कर्म को न देख कर हमारे ऊपर कितनी दया करता है। तुम पर कितनी दया है उसकी। हम सभी पर बडी दया है उसकी। ऐसा होते हुए भी आपको विश्वास न हो तो फिर सारे तीर्थों में घूम आवो।"

महिला—"तीर्थ तो सारे के सारे आपके चरणो में विराज रहे हैं।"

श्री दाता . "दाता तो महान् है। किसी के सुकर्म-कुकर्म नही देखता है। किसी का ठोर-ठिकाना भी नही देखता है। वह तो सभी पर एकसी महर करता है। एक व्यक्ति खटिया पर बैठ कर माला फेरता था। किसी ने एक सत के पास जाकर शिकायत की कि अमुक व्यक्ति पूरे दिन खटिया पर बैठ कर माला फरता है। सन्त ने शिकायत कर्ता से पूछा कि वह पूरे दिन क्या करता है। उसने कहा कि वह कुछ देर जमीन पर बैठ कर माला फेरता है, फिर घर का काम करता हूँ। सन्त ने कहाँ कि वह व्यक्ति उससे अच्छा है जो खटिया पर बैठ कर पूरे दिन माला फेरता है। वह दाता का नाम तो लेता है। कही भी रहो, कैसे भी रहो, बस उसका नाम लेते रहो। श्वास श्वास में उसे जपो। दाता का दरबार ही बडा विचित्र है। यह ऐसा दरबार है जहाँ मुझ जैसा पामर, अधम और नीच भी पलता है। मेरा जैसा कोई अधम नहीं, नीच नही और पामर नही, किन्तु हमें इस बात का भी गर्व है कि दाता जैसा कोई दीनदयाल न है, न हुआ और न होगा। वहाँ तो साभर पडिया लूणा है। आप जानते हो कि साभर झील में जो भी जा पडता है वह निमक हो जाता है। दाता तो महान् समुद्र है। उसमें सब गन्दे और अच्छे नदी-नाले आते हैं, पडते हैं और समुद्र हो जाते हैं। समुद्र के लिये सभी नदी नाले समान हैं और सभी उसमें विलीन हो जाते हैं। वैसे ही दाता के लिये सभी समान हैं। सभी को वह प्रसन्नता से निहारता है, स्वीकार करता है। चाहे जिस रग से जाओ और चाहे जिस भाव से जावो। उसके लिये सभी समान हैं।"

श्री दाता ने श्रोताओ से एक प्रश्न पूछा, "क्या आप लोगो ने दाता का कोई रग-रूप देखा है ?'

वन्दा·· "दाता का कोई रग है न रूप है। वह तो रंग रूप से परे है।"

श्री दाता वडी नदी में बहुत सारी गन्दगी बह कर आती है किन्तु वह कभी किसी को अस्वीकार नही करती। इसी तरह श्री दाता भी किसी को अस्वीकार नही करता। क्या कभी आप लोगो ने बडी नदी देखी है ?

वन्दा.. 'हाँ देखी है। गगा-जमुना जैसी नदियाँ देखी है।'

श्री दाता . "यह तो हुई एक बात। वे तो केवल लकीरें हैं लकीर। (शरीर की तरफ सकेत करके) यह रही बडी नदी। इस शरीर रूपी नदी में अनेक गन्दगिया भरी पडी है। इसमें जो कुछ माल भरा है वह शरीर वाले का ही है। जो कुछ गन्दगी है वह उसी की है अतः उसे स्वीकार करना पडेगा। वह इसके लिये मना नही कर सकता। वह यह नही कह सकता है कि यह उसकी नही है। वह रग रूप से रहित तो है फिर भी समी रग उसके हैं अतः उसे स्वीकारना ही पडेगा।

० ० ०

विश्वास एक सहारा

अजमेर के एक सज्जन ने श्री दाता से उसके घर पधारने का बडा आग्रह किया अत दिनाक २१।११।८० को प्रात: काल श्री दाता का पधारना अजमेर उनके घर पर हुआ। कुछ भक्त जन साथ थे। जिस समय श्री दाता का पधारना हुआ उस समय सब लोग रेडियो से समाचार सुनने में व्यस्त थे। श्री दाता के पधारते ही सब हडबडा कर उठ खडे हुए। नमस्कार कर उन्होने श्री दाता को बिठाया। अन्य सब लोग दाता के सामने बैठ गये। घर की मालकिन भी वहाँ बैठी थी। श्री दाता ने उसे ही पूछा, "आप क्या करती हैं!" वह समझी नही अत. उसने जवाब दिया कि वह तो समाचार सुन रही थी। इस पर श्री दाता मुस्कराते हुए बोले, "मेरे पूछने का यह मतलब नहीं है। मेरे पूछने का मतलब है कि मानव जीवन का मूल तत्व को पाने के लिये आप क्या करती हैं; उस परमानन्द की प्राप्ति के लिये आप क्या करती है! क्या आप उस आनन्द को चाहती हैं?"

मालकिन....."आपके कहने का मतलव मै नही समझी। जीवन में आनन्द को तो मै चाहती हूँ।"

श्री दाता....आप आनन्द को चाहती हैं। आप बतावे कि आप किस रूप में आनन्द को चाहती है?"

मालकिन . . "यह बताना बडा कठिन है।"

श्री दाता "आप जो यह सब कुछ कर रही हैं वह तो मशीनवत् है। खाना-पीना, समाचार सुनना, सिनेमा देखना आदि सभी कार्य मशीन के कार्यों के समान हैं। इन भौतिक वादी कार्यों में आनन्द कहाँ। क्षणिक तृप्ति चाहे भले ही हो किन्तु इनमें वास्तविक आनन्द नहीं है।"

श्री दाता फरमा रहे थे कि बीच ही में वे सज्जन बोल पडे, "हमें तो हर एक को प्यार करने में आनन्द आता है।"

श्री दाता . . "आपका फरमाना ठीक है किन्तु आप यह तो बतावे कि हर एक को कैसे प्यार करेंगे ? हर एक को प्यार करना क्या सभव है ?"

सज्जन . "हम पहले सब को अन्दर से देखेंगे फिर प्यार करेंगे। प्यार करने में आनन्द अवश्य मिलेगा।"

श्री दाता. "आपका मतलब है आपको पानी से प्यार है, भोजन से प्यार है, सिनेमा से प्यार है नौकर से प्यार है और भौतिक वस्तुओ से प्यार है। इस प्यार मे क्या आपको आनन्द मिलेगा। आनन्द का अर्थ तो कुछ और ही है। दाता के अतिरिक्त अन्य कुछ नही दिखाई दे तो समझो कि आनन्द है ?"

सज्जन . "हमे तो प्रसन्नता को दूसरो में बाटने मे ही आनन्द आता है।"

श्री दाता . आप ठीक कहते हैं। आपके पास प्रसन्नता है तो दूसरों को बाँटने में आनन्द आवेगा। किन्तु यदि आपके पास रोशनी होगी तभी तो आप दूसरो को देगें। यदि रोशनी नही है तो क्या दोगे।

सज्जन .रोशनी पास में नही है तो कैसे दे सकता हूँ!"

श्री दाता "आपका यह कहना तो बहुत सरल है किन्तु करना कठिन है। होता है कुछ विपरीत ही।'

सज्जन "यह कैसे ?'

श्री दाता "हम प्रसन्नता या रोशनी का वितरण भी स्वार्थ भाव से ही करते है। एक व्यक्ति को घोड़े से प्रेम है इसका मतलब हुआ कि वह घोडे पर बैठना पसन्द करता है। आप अपने बच्चे से प्रेम करते हो इसका मतलब हुआ कि आप चाहते है कि आपका बच्चा खूब पढ़लिख जावे उसे अच्छी नौकरी या व्यवसाय मिल जावे, खूब धन कमा ले और भविष्य में आपकी सेवा करे। आपके प्रेम का अर्थ है स्वार्थ की पूर्ति। आपका कहना है कि आप सबसे प्रेम करते हैं। इस का अर्थ तो हुआ

कि आपको किसी से भी प्रेम नही है। प्रेम बडी चीज है। प्रेम स्वार्थ भावना से परे होता है। प्रेम करने से सचमुच आनन्द की प्रप्ति होती है। आनन्द की प्रप्ति इसीलिये होती है कारण प्रेम उसी से अर्थात् सत्यवस्तु से ही किया जाता है। पशु पक्षी भी प्रेम करते हैं। पशु-पक्षिया का प्रम अधिकाशत नि स्वार्थ होता है। यदि आपका प्रेम वास्तविक है तो उसमे स्वार्थ की बू नही होगी। प्रेम की भावना सभी कुवृत्तियो की यहाँ तक की हिंसा वृति तक को समाप्त कर देती है। आप विकट जगल में जारहे हैं। वहां आपको नरभक्षी शेर मिल जाता है। यदि आपके दिल में सच्चा प्रेम है तो वह खूखार नर भक्षी शेर भी हिंसावृति छोडकर आपके चरणो में लोट जावेगा। यादि उसके प्रति आपके हृदय में अन्य भाव है तो वह आप पर अवश्य आक्रमण करेगा। सभी जीवो में उसी खुदा का नूर है। सभी प्राणियो मे मेरे दाता बैठे हुए हैं। अब जैसी आपकी भावना होगी, जैसी आपकी नीयत होगी अगला आदमी आपके लिये वैसा ही हो जावेगा। आप यदि उसके है तो वह भी आपका हो जावेगा। सभी में उस नूर को देखने वाले के लिये कोई शत्रु नही और कोई विदेशी नही।"

सज्जन ."आप जानवरो में भी भगवान बताते हैं किन्तु मे तो यह मानता हूँ कि जानवरो म भगवान नही होने है अत मैं तो जानवरो से प्रेम नही करता हुँ।'

श्री दाता , "यह आपका भ्रम और भूल है।"

अन्य बन्दा "दाता में और हमारे में यही तो अन्तर है। श्री दाता सभी में भगवान को देखते है अत उनको सब से प्यार है। दाता को आदमी से उतना ही प्यार है जितना एक कुत्त से हैं। हमें दाता के अलावा अन्यो में भगवान को नही देखते इसलिये हमें अन्या से प्रम नही है। प्रेम है तो केवल हमारे स्वार्थों से है।"

मालकिन . 'भगवान को बनाया किसने। वह है क्या?

श्री दाता, "भगवान् को लोग स्वयभू कहते है। स्वयभू का अर्थ है खुद पैदा होने वाला। भगवान को न कोई बनाता है और न

कोई बिगाड़ता है। जो स्वय मे प्रकट होकर सब में स्थित है वही भगवान है। म्हाकाराम ने आपको पहले पूछा था कि आप आनन्द किस मे मानती है। आपको कभी आनन्द मिला या नही ?

मालकिन "नही मुझको कभी वास्तविक आनन्द नही मिला।"

सज्जन., "मेरा विचार कुछ भिन्न है। मै तो मानता हुँ कि भगवान् ही प्रेम है और प्रेम ही भगवान् है।'

मालकिन "मै तो भगवान् में विश्वास ही नही करती अत मै भगवान् को नही मानती हूँ।'

श्री दाता---"यह भी अच्छा ही है। यदि विश्वास नही है तो मानने से कोई लाभ नही है। आप पति-पत्नी में आपस में विश्वास है या नही। आप अपने पति पर विश्वास रखती हो तो जानती हो क्या होता है ? विश्वास रखने पर पति आपका हो जाता है। पति आपका होने पर आपके लिये एक बडा सहारा हो जाता है। आप अपने आप में निश्चिन्त हो जाती है। इसी तरह हमारे पति अर्थात् दाता में विश्वास करने से एक सहारा मिलता है। आप अपने पति पर विश्वास न भी करो तो भी काम तो चलता है किन्तु कोई मज़ा नही। विश्वास करोगी तो जीवन मे आनन्द की अनुभूति होगी। विश्वास करने पर आपका पति आपके नज़दीक हो जाता है और आपके जीवन का सभी भार वह ग्रहण कर लेता है। आप भार विहीन हो जाती हैं। खाना तो सभी लोग खाते हैं। किन्तु वह खाना खाना नही है जिसमें स्वाद न हो। जिस भोजन में स्वाद आता है वही भोजन अच्छा लगता है। स्वाद लेकर भोजन करने में आनन्द आता है। भोजन हम सब करते हैं किन्तु स्वाद जिसको आता है, उसी को आता है। अर्थात् जो भोजन को विश्वास के साथ रस लेकर ग्रहण करता है, उसी को स्वाद आता है। आप दाता में विश्वास नही करती तो आपकी इच्छा है। इसका मतलब हुआ आपको दाता की जरूरत नही है।

आपको अपने पति की आवश्यकता महसूस हुई कि आपको उन पर विश्वास हो गया। जब तक जरूरत नहीं हैं तभी तक अविश्वास है।

"सुख म तो कभी उस पर विश्वास होता नहीं है किन्तु जब दुख सिर पर आता है और जब हम चारो ओर से दुखी होकर घबरा जाते हैं, जब बचाव का कोई मार्ग नजर नही आता है, जब कोई सहारा नहीं रहता है तब ही वह नजर आता है। सकट के समय पर ही उस पर विश्वास होता है। विपत्ति या दुख में ही वह याद आता है। जब किसी कार्य को करने में सभी प्रयास विफल हो जाते हैं तभी मन उसकी ओर आकर्षित होता है और उसकी याद आती है। हमने सुना है 'सब बलहारे को बलराम'। जब हमारे सब बल व्यर्थ हो जाते हैं तब केवल दाता का ही बल रहता है। भरी सभा में जब द्रौपदी की लज्जा हरण की जा रही थी, उस समय उसने अपनी लज्जा को रखने का हर सभव प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं मिली। जब हार कर उसने दाता को याद किया और कह दिया कि लज्जा उसकी नहीं है दाता की ही है तो जानते हो क्या हुआ ? दुशासन उस दस गज साडी को खीचते खीचते थक गया किन्तु साडी का अन्त नहीं पाया। उसको नहीं मानते हो तो न मानने वाले अच्छे हैं। विश्वास न होने पर मानने का ढोंग रचना अच्छा नहीं है। मन्दिरो में पण्डे-पुजारी निरन्तर भगवान् की पूजा में रहते हैं। उनका पूरा जीवन ही भगवान् की सेवा में व्यतीत हो जाता है किन्तु हम देखते हैं कि वास्तव म कितने ऐसे हैं जिन्हे भगवान् पर विश्वास होता है। अधिकतर वे पैसे को ही *भगवान् मानकर आराधना करते हैं। भगवान् की* पूजा का तो माध्यम है, इसीलिये तो वे कोरे के कोरे रहते हैं। तेल का सीदडा निरतर तेल के साथ रहने पर भी उस पर तेल का रग नहीं चढता है। वह कोरा का कोरा रहता है। आप वैस तो मत बनो।"

"हीरा तो हीरा ही होता है। जो उसके मूल्य को जानता है वही उसकी क़ीमत भी करता है। जो उसकी कीमत करता है वह माला माल है क्योंकि उसके पास अमूल्य हीरा है। जो हीरे

की कीमत नही जानता उसके लिये वह हीरा कंकड़–पत्थर है। उस हीरे का उसके लिये कोई मूल्य नही। हीरा पास में होते हुए भी वह कंगाल का कंगाल ही है। हीरा न होने पर यह भू-गर्भ ही कंगाल है। हीरा सभी के पास है। जो जानता है वह तो माला माल है, किन्तु जो नही पहचानता है वह तो कंगाल ही रहेगा। वह माला माल कैसे हो सकता है। मेरे दाता तो रोम रोम में रमण करने वाला है। वह सर्व व्यापी है। सभी घटो म वह विद्यमान है। वही एक मात्र सारभूत वस्तु है। उसके बिना सब निस्सार है। उसको पहिचानने वाले आबाद हैं और उसको नही पहचानने वाले बरबाद है। आप उसे पहिचान जाओगी तो आपका जीवन आनन्दमय हो जावेगा। फिर प्रत्येक कार्य आप उसका समझ कर करेगी और प्रत्येक कार्य में आपको रस आने लग जावेगा। आप दाता में विश्वास नही करती, किन्तु यदि आपको आँखों से बता दिया जाय तब तो आप विश्वास करेगी। फिर तर्क तो नही होगा। किन्तु ऐसा होगा नहीं, कारण बुद्धि अपना काम करेगी ही। देख लेने पर भी अनेक तर्क उपस्थित हो जावेगे। दृढ़ विश्वास के बिना तर्कों की समाप्ति कहाँ ? हम आपसे पूछते हैं कि आप बाईविल को मानती हैं या नहीं।

मालकिन—"मानती हूँ।"

श्री दाता—"आप उसे क्यो मानती हैं ?"

सज्जन—"हम बाइविल को इसलिये मानते हैं कि उसमें प्रेम भरा पडा है। हम तो प्रेम को ही मुख्य मानते है। प्रेम ही हमारे लिये भगवान् है। वैसे बाइविल अन्य पुस्तकों की तरह एक पुस्तक है। भारत की किताबो में जैसे राम और कृष्ण विशेष पुरुषो के रूप में है वैसे ही बाइविल में ईसामसीह विशेष पुरुष के रूप में है। ईसामसीह प्रेम का मसीहा है इसीलिये उसका चरित्र हमें अच्छा लगता है और इसीलिये हमें बाइविल अच्छी लगती है।"

श्रीदाता—"ठीक है। आप कुछ मानते तो हैं। हम यदि किसी को कुछ मनाना चाहते हैं तो अपनी शक्ति बता दे।

हमारी शक्ति को देखकर वह हमारी बात अवश्य मान जावेगा। एक गरीब आदमी है। उसके सामने अनेक व्यक्ति आते हैं। वह व्यक्ति व्यक्ति में फर्क तो करेगा ही। वह आपको, इनको व हम समान कब मानेगा। आपको प्यास लगी है और उसको बुझाने के लिये पानी की जरुरत है। आपको पानी कहाँ मिलेगा। आपकी प्यास में ही तो पानी है। प्यास नही तो पानी की कोई आवश्यकता नही है और यदि प्यास है तो पानी विद्यमान है।"

"आपके पास कहने को कुछ और तथा करने को कुछ और है। आपकी सस्कृति का ही कारण हो सकता है। किसी ने कहा है—

रहँट फिरै, चरखा फिरै, पण फिरबा में फेर।
वो तो बाड हरा करै, वो छूतो का ढेर॥

रहँट कुएँ से पानी निकलने के काम आता है। जब रहँट फिरता है तो पानी कुएँ से बाहर आता है जिससे सिंचाई होती है। व फसल हरी होती है चरखा भी फिरता है। उससे गन्ने का रस निकाला जाता है रस निकल कर एक ओर हो जाता है। दूसरी ओर छिलको का ढेर लग जाता है। कवि ने अच्छा उदाहरण देकर बताया है कि दोनो चरखें हैं जो चलते हैं किन्तु दोनो के चलने में काफी अन्तर है। एक तो गन्ने की फसल को हरा कर निर्माण का कार्य करता है जब कि दूसरा छिलको का ढेर कर विनाश का काम करता है। चक्र एक से हैं किन्तु कार्यो मे भेद है।"

"एक स्त्री अपने पति से प्रेम करती है। यदि उसका प्रेम पति से वासना-कामनामय है तो क्या हम उसे प्रेम कहेगे। वह तो शोषण का रूप ही हुआ। वासना-कामना रहित होकर जो प्रेम किया जाता है वह तो ठीक है वरना सब स्वार्थ का प्रेम है। दाता से भी लोग प्रेम ही करते हैं। किन्तु वास्तविक प्रेम तो वासना-कामना रहित होकर ही है। वासना-कामना से प्रेम करना प्रेम करना नही है। वहाँ तो विशुद्ध प्रेम की आवश्यकता है। स्वार्थ के

लिये लोग नमन करते हैं। आपके पास भी अनेक लोग आते हैं व झुक झुक कर नमस्कार करते हैं। आप यह समझने की भूल न करें कि वे आपको नमस्कार करते हैं। वे तो अपने स्वार्थ को ही नमन कर रहे हैं। स्वार्थ न हो तो आपसे मिलना तो दूर आप से नमस्कार भी न करें।"

"भारतीय संस्कृति विश्व में एक निराली संस्कृति ही है। यहाँ की संस्कृति ने तो पत्थर को भी भगवान् बना दिया है। यहाँ भगवान् को तो प्रभु और मनुष्य को महाप्रभु कह दिया गया है। चैतन्यदेव साधारण व्यक्ति ही तो थे किन्तु उन्हें चैतन्य महाप्रभु कह दिया गया। जो लोग उन्हें महाप्रभु मानते रहे, उनके लिये वे महाप्रभु ही रहे। यह तो मानने की बात है। 'जाकि रही भावना जैसी प्रभु मूर्ति दिखें वैसी।' हर व्यक्ति की भावना के अनुसार ही उसके इष्ट के दर्शन होते हैं। आप दाता को नहीं मानते, इसमें आपका दोष नहीं है। आपको अनुभव नहीं होता तो आप नहीं मानते किन्तु आपको बता भी दिया जाय और आपको अनुभव भी करा दिया जावे तो भी आप राग निकाल देंगे। डाक्टर के पास कई गर्भवती स्त्रियां आती हैं। जब प्रसव का समय होता है तब कैसी स्थिति होती है। जब उसके पीड़ा चलती है तब तो तू ही तू चिल्लाती है वह दाता से प्रार्थना करती है कि इस बार तो उसे बचा दिया जाँय, भविष्य में वह ऐसा कभी नहीं करेगी। किन्तु होता क्या है ? ज्यों ज्यों प्रसव की वेदना कम होती जाती है वह दाता को भूलती जाती है। संसार की गति बड़ी विचित्र है।"

एक बन्दा "जैसी दुःख में अनुभूति होती है वैसी सुख में क्यों नहीं होती ?"

श्री दाता "सुख में भी अनुभूति हो जाती है किन्तु एक शर्त है।"

बन्दा "आप तो कोई न कोई शर्त लगा ही देते हैं।"

श्री दाता · "आपके सामने एक प्रश्न है। एक व्यक्ति हँसता है, दूसरा रोता है। एक स्वस्थ है तो दूसरा रोगी है। एक धनी है तो दूसरा निर्धन है। एक जिलाधीश है तो दूसरा चपरासी है। भगवान् तो समदर्शी है। उसके लिये तो सभी समान हैं फिर यह विषमता क्यो है? क्या यह भयकर अन्याय नही है? उस समदर्शी के दरबार में यह घोर अन्याय क्यो?'

बन्दा·· 'यह तो आप ही जाने। है तो बडा अन्याय। उसके राज्य में यह अन्तर क्यो?"

श्री दाता· "यदि यह अन्याय है तो आप ही बतावे कि बाहर से सभी व्यक्तियो को लाकर एस पी या कलेक्टर बना दिया जावे।'

बन्दा "ऐसा कैसे हो सकता है।"

श्री दाता---"क्यो नही हो सकता। रोका किसने है?"

बन्दा----"यही तो भगवान का खेल है। रोका उनके कर्मो ने है और अब समझ में आया कि यह अन्याय नही अपने अपने कर्मो का फल है।"

अन्य बन्दा----"मैं जहाँ पैदा हुआ वहाँ कोई सत्सग का वातावरण नही था। इसलिये दाता के चरणो की ओर मेरी गति नही बढी। अब आप ही बतावे कि इसमें मेरा दोष क्या है?"

श्री दाता---"जब आपके वहाँ कोई सत्सग का वातावरण नहीं था और न दाता के चरणो में आपका आकर्षण था तब आप यहाँ आये कैसे?"

अन्य बन्दा--"यहाँ आना पूर्व में हो जाता तो मेरी गति बहुत ऊँची हो जाती।'

श्री दाता---"आप रास्ते में चल रहे हैं। चलते चलते आपको हीरा मिल गया तो आप यह थोडे ही कहेंगे कि मुझको हीरा देरी से मिला। हीरा मिलते ही उसके नशे में जल्दी और देरी सब ही भूल जावेंगे।

अन्य बन्दा---"हीरा मिलने पर यह तो नही कहेंगे कि देरी से मिला।"

श्री दाता---"मालिक महरबान तो सब कुछ ठीक है। जब मालिक महरबान है तब न ता तकदीर का प्रश्न है और न समय का। प्यासा है तो मरते दम तक वह पानी पानी ही कहेगा।"

बन्दे की पत्नी "इस तरह प्यासा रखने में आपको क्या आनन्द आता है।'

श्री दाता---"तरसाने मे ही उसकी कीमत है। बिना तरसाने में कोई उसकी कीमत ही नही करेगा। दुख में ही उसकी याद है। सुख में कौन उसको याद करेगा।"

बन्दे की पत्नी "आखिरी समय में मिले तो ऐसे मिलने से क्या है ?"

श्री दाता--- "आखिरी समय मिलने का विशेष महत्व है।"

बन्दे की पत्नी---"यह कैसे ?"

श्री दाता "चलते चलते आपको हीरा मिल गया। हीरा मिलते ही आप धनवान हो गये। यदि आप हीरे के पास में होते हुए भी भूल गये तो कगाल हो गये। यदि उसकी याद रह गई तो मालामाल हैं। फिर भी आप शकातुर रहते हैं। जब घर से बाहर निकलते हैं तो भूल जाने की शका रहती है। घर से निकलते समय उसकी याद रहती है तो धनवान ही तो हैं। जन्म मरण का यही रहस्य है। अन्त समय में ही तो सब है।

अन्त मति सो गति। आपने अजामिल के बारे में सुना होगा। जाति से वह कसाई था। जन्म भर हत्या करना ही उसका काम रहा। वह महा पापी था। धर्म नाम का काम तो उसके पूरे जीवन में हुआ ही नही। जब उसका अन्त समय आया तो यमराज के दूत उसे लेने आय। उन्हें देख कर वह भयभीत हुआ। भयभीत होकर उसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा। उसकी पुकार अन्त.करण की पुकार थी अत सच्चे नारायण की कृपा हो गई। अत अन्त समय में उसका नाम लेना सार्थक हो गया। अत. अन्त में जैसी मति होती है वैसी ही उसकी गति हो जाती है। आपने अपने जीवन को बेच रखा है। क्यो? आपने अपने जीवन को अपने अन्तिम समय को उज्वल करने हेतु ही तो बेच रखा है। आपने अपने सिर पर पूरे परिवार का बोझ धारण कर रखा है। आप परिवार के लोगो के लिये अनेक प्रकार के दु ख देख रहे हैं। रात को रात दिन को दिन नही गिन रहे हो। यह सब क्यो है? इसीलिये तो है कि परिवार वाले आपके अन्तिम समय में आपकी सेवा करे।"

"आपकी बडी बडी अभिलाषाएँ हैं। आप अपने जीवन में बहुत कुछ करना चाहते हैं। आपका जीवन वासना-कामनामय है इसीलिये तो बहुत कुछ करने की सोचते हैं। भविष्य के लिये पूजी इकठ्ठी करते हैं। इसके लिये आप रात देखते हैं न दिन। किन्तु इतना कुछ करने का कोई फल नही। अन्त में आपके हाथ कुछ आने का नही। उल्टा कुण्डली माड कर अपने एकत्रित किये हुए पैसो पर बैठना पडता है। इसके बजाय तो इससे शताश परिश्रम भी दाता की प्राप्ति के लिये करे तो कल्याण हो जाय। अत जिस प्रकार आप धन की प्राप्ति के लिये रात दिन एक कर रहे हो उसी प्रकार उसकी प्राप्ति में रात और दिन एक कर दो। उसकी लगन में मगन हो जाओ। यह ध्यान रखो कि उसकी लगन कभी न छूटे। कहा है-

आशा जहाँ वासा, सुरता जहाँ मुकाम।

जहाँ अन्त की मति होगी वही मुकाम होगा। तम्बू की डोरी का

सूत्रपात जिस ओर होगा, तम्बू उसी ओर गिरेगा। यह शरीर भी एक तम्बू ही है। यह तम्बू रूप शरीर भी उसी ओर गिरेगा जिधर इसकी अन्तिम मति होगी। अत हर समय उसको याद रखने पर अन्तिम मति भी उस समय ही होगी। कारण यह बीज ही ऐसा है जो न कभी गलता है और न खराब ही होता है। वह सदा ही ठीक रूप में रहता है। वह तनिक सी ठण्डी हवा के वातावरण में प्रस्फुटित होने को तैयार रहता है। बस केवल प्रेम रूपी सरस हवा की आवश्यकता है।"

'दाता चेतन–अचेतन अवस्था में हर समय व हर स्थान पर विद्यमान है। वह केवल विद्यमान ही नही वरन हर समय व स्थान पर हमारी रक्षा करता है। हमने कई छोटे छोटे बालकों को देखा है। जब वे रोते हैं तब यदि कोई उन्हे दाता का कीतन सुना देता है तो चुप हो जाते हैं। ऐसा क्यो होता है। पूर्व सस्कार तो कारण है ही किन्तु यह सब उसकी महर का ही सौदा है। पाँच वर्ष के बालक में भी काफी ज्ञान देखा गया है। एक पिता के कई बच्चे होते हैं। सब अलग अलग। एक बुद्धिमान, एक मूर्ख, एक क्लेषी तो एक आत्मदर्शी। यह सब उसी की लीला है।"

बन्दा . "क्या यह सस्कारो की बात नही है?"

श्री दाता. "नही! पहले सस्कारो की बात करोगे तो बात बनेगी नही। इश्क में सस्कारो का प्रश्न ही खत्म है। माँ से प्रेम स्वत होता है। सस्कार इसमें क्या करेंगे। हाँ! आपसे पूछा गया था कि आप यहाँ आये क्यो है?"

बन्दा "कुछ न कुछ आपके अन्दर है इसलिये आये हैं।"

श्री दाता 'नही! यह बात नही है। आप में दाता के प्रति प्रेम का अकुर बहुत पहले से रहा है उसी कारण आप खीचे हुए चले आये। एक बच्ची में अपने पति को पाने की इच्छा जन्म से ही प्रारभ हो जाती है। जाने अनजाने वह अपने अपरिचित पति के

लिये अनेक शृङ्गार करती है। यह सब अनजाने ही चलता रहता है। पति से मिलने के बाद सभी बातें याद आती हैं।"

एक बन्दा "हमें तो वह पास होते हुए भी नहीं मिलता। हमें भी मिलना चाहिये।"

श्री दाता "आप जानते हैं कि मिलने के लिये प्रयास करना पड़ता है। टेलीफोन का कनेक्शन लगाना पड़ता है या घर पर जाकर घण्टी बजानी पड़ती है। आपने कनेक्शन मिलाने की कोशिश तो की नहीं। न आपने परिचय पत्र प्राप्त किया फिर आप ही बतावें मिलना कैसे सभव है।"

एक बन्दा "आप लगन के लिये फरमाते हैं। यह कैसे हो?"

अन्य बन्दा "मुझको इस मुकाम पर लाने की कार्यवाही तो दाता की ही हुई। मैं तो तनिक भी नहीं जानता था। मैंने यहाँ आने का तनिक भी प्रयास नहीं किया। यह तो सब कुछ दाता ही की कृपा है और उसी का सब कुछ दिया हुआ है। मैं आया नहीं। मैं तो लाया गया हूँ।"

श्री दाता "उसकी दया है यह तो सही है, किन्तु आने का काम तो तुम्हें करना ही पड़ा। चाह तो आपकी है। दाता तो चाह रहित है। वर्षा एक सी होती है। वह भेद नहीं करती है किन्तु यदि कोई मकान में हो या किसी ओट में हो तो वह तो सूखा ही रहेगा। सूर्य सब पर एक सा चमकता है किन्तु कोई मकान में ही जाकर छिप जावे तो इसमें सूर्य का क्या दोष? तुम तो यह बताओ कि तुम्हें यहाँ आने से सुख हुआ या दुःख।"

अन्य बन्दा "मुझे तो अपार सुख की अनुभूति हुई है।"

श्री दाता "बरसात का काम बरसना है। बरसात के बरसने से सर्वत्र हरियाली छा जाती है। सभी वनस्पति हरे रंग की हो जाती है। वह हरि है। वह सब में विद्यमान है इसीलिये

उसका रग हरा है। दाता दया करता हैं तो सब आनन्दित होते हैं, क्योंकि वह स्वय आनन्द स्वरूप है। आप अनेक लोगो के पास गये होगे किन्तु आपको वहाँ आनन्द नही मिला इसलिये वहाँ नही ठहरे। यहाँ आपको थोडा बहुत मिला अत यहाँ टिक गये। जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती है यदि वह मिल जाती है तो वह वहाँ टिक जाता है। आपको अपनी भावना के अनुसार यहाँ आनन्द की प्राप्ति हुई अतः आप यहाँ टिक गये। किन्तु याद रखो दाता के दरबार में किसी के मन की बात नही रहती है। यदि आप सटोरिये की तरह बनकर दाता के दरबार में रहोगे तो आपको मिलने का कुछ भी नही है। सटोरिया लोग आते ही बडी नम्रता दिखाते हैं किन्तु मागते एक आक है! अरे! आंक मागने के बजाय तो दाता को ही क्यो नही माग लेते जिससे जीवन के सभी सकट दूर हो जाते। व्यर्थ ही अकों के फेर में पडकर ससार रूपी सागर में डूबते हैं। ऐसे प्राणी अपने जीवन को नष्ट करने को ही आते हैं। यदि आप दाता को सच्चे रूप से चाहते हो तो अपने मन की बात रखने की बात भी कभी न सोचो। आप यह बताओ कि आनन्द किस में है? वासनामय जीवन में या वासना रहित जीवन में? वासना तो चन्द दिनो की है। कुछ ही दिनो में वह दुखदायी हो जाती है। पिया का प्रेम ही सुखदायी है। बस 'मैं तेरा और तू मेरा' इसी में आनन्द है। हमारे पिया का सम्बन्ध ही प्रेम का है, वासना का नही।"

"सदैव याद रखो कि उसकी सदा ही महर ही महर है। आप कैसे भी हो, उसकी तो महर रहती ही है। वह भेद भाव रहित होकर सभी पर एक सी महर करता है। उसके सन्मुख न कोई छोटा, न कोई बडा, न कोई गरीब, न कोई धनी, न कोई पापात्मा और न कोई धर्मात्मा है। उसकी महर तो सब पर समान है।"

एक अन्य बन्दा---"उसकी महर का भान तो तब हो जब आपा छूटे।"

श्री दाता---"जैसे भी हो उसके बने रहो। बच्चा और पिता एक ही है। बच्चा कैसा भी है किन्तु पिता का ही है।

पिता एक ही है अत बच्चे होकर बने रहो। उसकी महर में ही सब कुछ है। श्री राम प्रकाश जी रामस्नेही सन्त थे। वे ज्ञानवान होने के साथ ही साथ अच्छे सन्त थे। उनकी राजा-महाराजाओ में बडी मान्यता थी। चिकित्सा में लाखो रुपये उन्होने कमाये। वे हमारे पूरे कुटुम्ब के धर्मगुरु भी थे। कुटुम्ब के लोग उनके कण्ठीबन्ध शिष्य थे। सन्त होते हुए भी कुदरत के खेल है कि वे दाता का विरोध करते थे। इसमें उनका कोई दोष नही, कारण उन दिनो म वातावरण ही ऐसा था। कई दिनो तक उनका विरोध चलता रहा। अन्त म एक दिन उन पर दाता को महर करनी थी। *शेखर शिवजी आदि लोगो के साथ वे म्हारा राम के यहाँ आ पहुँचे।* दाता ने उनके कर्मों को नही देखा, कारण दाता तो भावो को देखता है। वह तो भावो का भूखा है। दाता उनके शुद्धभाव देखकर उन पर महर कर बैठा। महर होने पर उनका काया पलट ही हो गया। कहाँ तो वे दाता के विरोधी थे और कहाँ अब दाता के परम भक्त व प्रशसक बन गये। जहाँ तक जीवित रहे दाता की मस्ती में मस्त रहे। उन्होने अपनी कमाई हुई लाखो की सम्पत्ति यो ही छोड दी। उसकी ओर नजर उठाकर भी नही देखा। यह है दाता की महर। आपने परमानन्द बाबा का नाम सुना होगा। वे सीकर जिले के लोसल नाम के गाँव में रहते थे। परम हँस थे। बडी निराली गति थी। वे कभी ढग से बोलते भी नही थे। किसी ने उनको एक स्थान पर बैठ कर भोजन करते हुए कभी नही देखा होगा, किन्तु व म्हारा राम के पास, जयपुर में प्रोफेसर शुक्ला के मकान पर आये। महर देखो दाता की कि जब तक म्हाका (मेरा) राम का भोजन हुआ तब तक वे भी एक आसन पर बैठ कर भोजन करते रहे। भोजन करने में कम से कम एक घण्टा अवश्य लगा होगा। यह सब क्या है। दाता की महर का सौदा ही तो है। पानी की कीमत प्यासा ही जानता है।"

एक बन्दा..." भगवान ! राई की ओट में पर्वत है। राई हटा देने पर पवत नजर आने लगेगा। आपकी शरण मिलने पर भी प्रभु प्राप्ति नही होती है। यह आश्चर्य है।

श्री दाता. "आप अपने मन से एक कण भी तो नही देते हो। आपको दाता बहुत कुछ दे रहा है किन्तु प्रतिकार स्वरूप एक कण भी तो नही देते हो। उसी से तो दु खी हो। मन नही दिया जिसका ही यह प्रतिफल है।"

एक बन्दा— "मन हमारे वश में कहाँ है ?"

श्री दाता—'मन आपके वश म नही है तो काम कौन कर रहा है ?"

एक बन्दा—'काम तो मन ही करता है। जब हम कोई खराब या अनुचित काम करते हैं तब ऐसा लगता है कि हम ठीक काम नही कर रहे हैं, फिर भी मन के दबाव एव स्वार्थ के वशीभूत उस काम को कर ही बैठते हैं। उस समय मन की भी नही सुनते।"

श्री दाता—"ऐसे समय म मन बेहोश रहता है।'

एक अन्य बन्दा—'जब आपके सम्बन्ध में चर्चा चलती है तब तो मन उसकी ओर झुक जाता है और कहना भी मान लेता है किन्तु सत्सग का वातावरण समाप्त होते ही वह मालिक बन जाता है।

श्री दाता—'सदैव सत्सग का वातावरण ही बनाओ न। अपने मे हर समय उसकी भूख बनाये रखो। यह सब उसकी महर का सौदा है।'

दस बजे का समय हो गया अत श्री दाता वापस पुष्कर पधार गये।

० ० ०

सद् व्यवहार

२२-११-८० का दिन था। गौ शाला में कीर्तन बडी मधुर ध्वनि में चल रहा था। श्री दाता कीर्तन स्थल पर थोडी देर बिराज कर ऊपर के कमरे में पधार गये। जयपुर वाले तथा कुछ अन्य भक्त-जन भी श्री दाता के साथ ही ऊपर चले गये। दिल्ली से नानक जी नाम का एक भक्त आया। उसने आते ही साष्टाग प्रणाम किया। श्री दाता ने उन्हे पुचकार लिया व उनके चरण स्पर्शकर नमन किया नानक जी सकोच में पड गये। इस पर श्री दाता ने फरमाया, "तुम सकोच क्यों कर रहे हो। यह तो जिसका जिसको नमन हो रहा है। हम तो नमन करने वाले को नमन कर रहे हैं। हमारी तो सस्कृति ही ऐसी है कि जो छोटा बन कर चलता है वह बड़ा बन जाता है। जो मान कर चलता है उसका अपमान हो जाता है। दाता के दरबार में तो जो मान रहित होकर और छोटा बनकर आता है वही स्थान पाता है। दाता ने अपने सेवको को सदा ही मान रहित रहना सिखाया है। जो दाता पर निर्भर है दाता सदैव उसकी रक्षा करता है। वहाँ जाति-पाँति का कोई भेदभाव नही है। जो दाता को भजता है वही दाता का है चाहे वह हरिजन हो या शूद्र जाति का ही क्यों न हो। माता शबरी भीलनी थी। वह श्री राम के चरणों में अनन्त प्रेम रखती थी। वह जगल में कुटिया बना कर रहती थी। कन्द-मूल खाती व यथा सामर्थ्य सतो की सेवा करती। वह भगवान् श्री राम का ध्यान करती और उनकी भक्ति में मस्त रहती हुई भगवान श्री राम के दर्शनो की प्रतीक्षा में थी। उसने जब सुना कि श्री राम उस जगल में आये हैं तो वह बेताब होकर उनकी प्रतीक्षा करने लगी। उसने खाना-पीना तक छोड दिया। वह प्रभु के दर्शनो की इच्छा में पागल सी हो गई। श्री राम तो भावो के भूखे हैं और प्रेम के प्यासे है। वे सर्व प्रथम शबरी की कुटिया में गये। दर्शन देकर उसके जीवन को कृतार्थ किया। शबरी प्रेम में विह्वल थी। बेरो के अतिरिक्त भेंट करने को उसके पास क्या था। बेर खट्टे न हो इसलिये उन्हें चख चख कर देने लगी। उसको यह भी ध्यान

नहीं रहा कि वह तो जाति की भीलनी है। अपने झूठे बेर वह विश्वपति को कैसे खिला रही है, किन्तु वह तो प्रेम में पागल थी। भगवान् भी बडे प्रेम से खाने लगे, उन झूठे बेरो को। शवरी का तो भाग्य ही खुल गया। बडे बडे ऋषि-महर्षियो और देवताओ को भी जो आदर नही मिलता, वह आदर, वह सम्मान, शवरी को मिल गया। ऐसा है दाता का दरबार। भक्त तो उन्हे बडे प्यारे हैं। भक्तो के मान की वे सदा ही रक्षा करते आये हैं। अपने भक्त वाल्मीकि जी के मान की रक्षा के लिये एक क्षण में बावन हजार ऋषियो के मान का मर्दन कर दिया। अत दाता तो दाता है।"

"यह मन बडा ही हरामी है। इसके चक्कर में आकर जीव अपनी वास्तविकता को खो देता है। बडे बडे सन्त भी इसके चक्कर में आ जाते हैं और मूल वस्तु को खो बैठते है। मूल वस्तु क्या है ? क्या आप इसे जानते है ? एकम् ब्रह्म द्वितीयनास्ति। यह ब्रह्म। एकोऽह बहुस्याम्। ब्रह्म एक ही है। वही एक ब्रह्म सभी में रमण कर रहा है। वही ब्रह्म मेरे में है, तुम में है, इनमें है, सबमें है और रोम रोम में है। वह एक है फिर बहुत रूप में बनने की आवश्यकता क्यो पडी ? दाता की यही तो मौज है। अपने स्वरूप की पहिचान कराने के लिये ही तो उस खिलाडी को यह सब खेल रचना पडा। सन्त और साधक लोग इस बात को तो भूल जाते हैं और तेरे-मेरे में पड कर यह आयु समाप्त कर देते है। अरे ! साधको को तो साधना करनी चाहिये। उनको दाता के सिवा सासारिक प्रपचो से क्या काम है किन्तु मन के कहने के अनुसार जो चलता है उसका पतन ही होता है। वे लोग सोचते भी नही। 'आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास' वाली स्थिति उनकी हो जाती है। लोग कितने भोले हैं। वे इस भोले मन में ही मूल वस्तु को गँवा बैठते हैं। यह मनुष्य जीवन बडा मूल्यवान है। इसको सार्थक करने का एक ही तरीका है कि दाता के चरणो में रति पैदा की जाय। आप दाता से थोडा सा भी प्रेम करोगे तो वह इतना दयालु है कि आपके नजदीक ही आ जावेगा। आप एक बालिस्त झुकोगे तो वह एक हाथ झुक जावेगा। यदि आप उसके लिये एक कण दोगे तो वह कई कण भर

लौटा देगा । वह तो वन्दे के भावो को देखता है । अत. वन्दे को चाहियें कि वह सच्चे मन से उसका स्मरण करे । निरन्तर उसमें लीन रहे । किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो, उसको कभी भी न भूले । उस द्वारा निश्चित किये हुए काम उसके काम समझकर करो ।"

"सदा परोपकार मे मन लगाना चाहिये । सेवा करने में वडा आनन्द है । वैसे सेवा करने वाला और सेवा कराने वाला एक ही है किन्तु सेवा का कार्य ऐसा है, जिससे भावो में परिमार्जितता आती है और मन निर्मल हो जाता है । सेवा भाव वहुत ही ऊँचा भाव है। जो सेवा करते हैं वे वडे हैं । सेवा करने वाले पुरुप महापुरुषो की कोटि में रखे जा सकते हैं । किन्तु आजकल अजीव वात देखने को मिल रही है । मनुष्य वड़ा हरामी होता जा रहा है । मनुष्य योनि साधारण योनि नहीं है । इस योनि को प्राप्त करने के लिये देवता लोग भी तरसते हैं । किन्तु इस ऊच्च कोटि की योनि में पैदा हुआ मनुष्य राक्षस सा व्यवहार कर रहा है । आज वह सेवा करने वाले व्यक्तियो को हिकारत की दृष्टि से देखता हैं । वह उन्हें नीच समझता हैं । वह उनके साथ समानता का व्यवहार न कर अभद्र व्यवहार तक करने पर उतारू हो जाता है । हरिजन भाई हमारी कितनी सेवा करते हैं । वे अपने स्वास्थ्य की भी परवाह न कर आपकी गन्दगी को हटाते है और आपके घरो की सफाई करते हैं । वे आपके घरो से मरे हुए पशुओ तक हटाते हैं और भी वे आपके अनेक काम करते हैं । आप लोगो को उनका उपकार मानना चाहिये । किन्तु आप लोग उन लोगो का अहसान न मान उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं । आप उन्हें नीच समझते हैं । सेवा के वदले कुछ लाभ देने के वजाय आप उनके अधिकार तक छीनने को तैयार हैं । उनको हर तरह से दवा रहे हैं । आप कितने स्वार्थी हैं । आप चाहते है कि वे न पनपे । वे जिस अवस्था में आज हैं उसी अवस्था मे रहे ताकि वे आप लोगो की नि शुल्क सेवा करते रहे । सोचो तो सही ! यदि एक दिन भी वे आपका काम वन्द कर दे तो आपका क्या दशा हो जावेगी ? आपका भला इसी में है कि उनका उपकार मानते हुए उन्हे अपने गले से लगा दो और समाज में उन्हें वरावर का

स्थान दो। ऐसा नही करोगे तो बाद में आप लोगो को पछताना पडेगा। वे जब आपके धर्म को छोड अन्य धर्म को स्वीकार कर लेंगे तब आप क्या करोगे ? आपका भी हाल अजीब है। तरस आती है आपके हाल पर। ये ही लोग समाज बदल कर आपके सामने आते हैं तब प्रसन्नता से उनसे हाथ मिलाते हो, किन्तु ये ही लोग हिन्दू होकर आपकी सेवा करते हैं तो उन्हें हिकारत की नजर से देखते हो। आपको समझ आनी चाहिये। समय पर आपको सभल जाना चाहिये वरना हाथ मल मल कर पछताना पडेगा।"

"आप यह मानते हैं कि सब में दाता विद्यमान है, तो फिर क्या इन लोगो में दाता नही है ? आप इन लोगो से घृणा करते हो इसका मतलब हुआ आप दाता से ही घृणा करते हो। आपकी कथनी और करनी में अन्तर क्यो है ? आप सब लोग दाता के बन्दे है अत आप लोगो को तो वास्तविक ज्ञान की अनुभूति होना चाहिये। सेवा करने वाले सभी दाता के बडे प्यारे हैं। ये लोग आपकी सेवा ही नही करते किन्तु आपत्ति के समय आपकी रक्षा भी तो करते हैं। जब जब भी क्रूर व्यक्तियो ने आपकी बहु बेटियो पर क्रूर दृष्टि डालने का प्रयत्न किया तब इन्ही लोगो ने तो आगे बढ-कर उनकी रक्षा कर आपकी सहायता की है। आगे भी वे सहायता को आवेगे। ऐसे व्यक्तियो के साथ आप व्यर्थ की मर्यादाओ के चक्कर में आकर अन्याय व अत्याचार करते हैं। हमारी आदत रही है कि हम सदैव ही दूसरो में बुराई ढूढते रहे हैं। हम सोचते है कि हम अच्छे है और दूसरे बुरे। सच तो यह है–

बुरा जो देखन मे चला, बुरा दिखा न कोय।
जो दिल खोजो आपनो, मुझ सा बुरा न कोय ॥

एक सन्त ने अपने एक शिष्य से कहा कि इस विश्व में जो वस्तु बुरी हो उसे लाकर दो। भक्त तलाश करने निकला। उसने देखा कि मल-मूत्र खराब है। जब वह मल-मूत्रको उठाने लगा तो उसने सोचा कि इसका तो खाद बनता है। खाद से फसल पैदा होती है। यदि खाद न हो तो अन्न कहाँ से पैदा होगे। अन्न पैदा न होने

पर सब प्राणी मर जावेंगे। नही! मल-मूत्र बुरा नहीं है। वह तो बडी अच्छी वस्तु है। इस तरह उसने एक एक वस्तुको देखी तो सब में उसे गुणही गुण दिखाई दिये। जब उसने स्वयको देखा तो उसको नजर आया कि यह शरीर किसी काम का नही है। अतः उसने अन्त में यही निर्णय किया कि मेरे समान अन्य कोई बुरा नहीं है। वह सन्त के पास जाकर बोला कि उसके समान अन्य कोई बुरा नही है। यह सही है कि मनुष्य सा हरामी अन्य कोई नही है। जो उसकी रक्षा करता है उसी को भक्षण करने की कोशिश करता है। न मालूम किन किन को वह खा-पचा कर बैठा है। मनुष्य यदि चाहे तो भगवान बन सकता है। वही मनुष्य यदि वास्तविकता को छोडकर नीच काम पर उतारू हो जाता है तो आप और हम क्या करें? हमें सोचना चाहिये कि हम पवित्र योनी में आये है। हमें सच्चे माने में मनुष्य बनना चाहिये। हमारे व्यवहार और आचरण को मानवोचित बनाना चाहिये जिससे हम हमारा भी भला कर सके और अन्य प्राणियो का भी हित-चिन्तन कर सके। यह काम कठिन नही है। तनिक शान्ति से बैठ कर सोचने की बात है। यदि आप सबको अपना कर सेवा की भावना रखने लगोगे तो देखोगे कि जीवन में आपको कितना आनन्द आता हैं।

"आप सग्रह करते है। किन्तु आपको क्या मिलता है। आप जो पहिनते व खाते है वही तो आपका है। सच्चे माने में दूसरों की सेवा कर जो सच्ची कमाई आप करेंगे वही तो आप के साथ जावेगी। दुनिया की सम्पत्ति सब यही की यही धरी रह जावेगी। हमें विश्वास उसी वस्तु का करना चाहिये जो सच्ची हो व भविष्य में हमारे साथ जाने वाली हो। करी हुई सेवा और दिया हुआ दानही हमारे भविष्य का साथी है। दीन दयाल दाता ही एक मात्र सच्चा साथी है जिसकी महर से सच्ची सम्पत्ति मिल सकती है।"

"भगवान् कृष्ण ने भी सेवा के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। युधिष्ठिर ने जब यज्ञ किया तब सबको अपनी अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य सौपा गया। उस समय भगवान कृष्ण ने आने वाले अतिथियो के चरण धोने का और झूठी पतलो के उठाने का काम

ग्रहण किया । साधारण व्यक्ति तो इस काम को नीच काम समझेंगे किन्तु भगवान ने इस कार्य को बडा और महत्त्वपूर्ण समझा । यज्ञ में वही काम उन्होंने किया । जिनके चरण धोये गये और जिनकी झूठी पतले उन्होंने उठाई, वे तो निहाल हो गये । यह शरीर झूठी पतलही तो है । इसको उठाने का काम साधारण व्यक्ति नही कर सकता है । दाता ही महर कर इस शरीर का उद्धार कर सकते है । वैसे तो भगवान् कृष्ण ने गीता मे स्पष्ट रूप से बताया कि 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस चाहसि तस फल चाखा ।' कर्मही प्रधान है । जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसाही फल मिलेगा । यदि जीवन में आप अच्छा कर्म करोगे तो उसका फल अच्छाही मिलेगा । कर्म का फल चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, अवश्य मिलता है किन्तु यह फल व्यक्ति को तब मिलता है जब कि वह कार्य स्वय का होता है । जब कार्यही व्यक्ति का नही है, दाता का है तो फिर कर्म फल निष्फल हो जाते है । ऐसी अवस्था में कर्म" फल की बीजही निष्क्रिय हो जाता है । फिर उस बीज का कोई प्रभाव नही रहता है, चाहे कैसा भी वातावरण उसे क्यो न मिले । ऐसी स्थिती मे वह कर्म क्षेत्र से भाव क्षेत्र में प्रवेश कर देता है । भाव क्षेत्र मे मैं और तू दो ही प्राणी होते हैं । 'मैं' भी धीरे धीरे 'तू' में बदल जाता है । फिर बन्दे के लिये विश्व में जो कुछ है वह तू ही तू है । अर्थात् दाताही दाता है । जो इस रहस्य को ठीक तरह से समझ लेता है, उसे दाता की अनुभूति हो जाती है और वह गूगा हो जाता है अर्थात बोलने के लिये उसके पास कोई शब्द नही रहता है ।"

"यह तो आप जानते है कि दाता सर्वव्यापी है । जैसे लकडी में अग्नि व्याप्त है, उसी तरह वह कण कण में विद्यमान है । यह जानते हुए भी कि वह कण कण में मौजूद है, बन्दा इस बात को भूल जाता है, इस का कारण भ्रम और भूल का पड जाना है । यह भ्रम और भूल का परदा बन्दे को दाता से जुदा करता है । जब यह भ्रम और भूल का परदा हट जावेगा, तब वही तो रहेगा जिसको बन्दा ढूढ रहा है । बच्चा पिता के लिये दौड लगाता है । पिता के सहयोग के बिना वह पनप भी नही सकता किन्तु बडे होने पर तुम उसे पूछोगे कि वह कौन है, तो वह यही कहेगा कि वह पिता है ।

पिता के सहारे से ही उसने पिता की अवस्था प्राप्त कर ली है। वस्तु दो ही हैं। एक माता और दूसरा पिता। फिर तिसरा पुत्र कहां से आया? पिता ही तो पुत्र होकर आया है। इसी प्रकार आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द है। उसके बाहर कोई वस्तु नही। सब उसी का है। वह सब मे है और सब उसमें है। जब एक है तो इतने प्रपच की क्या आवश्यकता हुई? मन रूपी घोडा बडा चचल है। वह दौडता है तो इसे खूब दौड लेने दो। हार थक कर ठिकाने आ जावेगा। भजन, कीर्तन, वाणी, जप, तप, आराधना, उपासना, धूप, दीप, नैवेद्य, पट्कर्म आदि सब क्या है? ये सब मन को मना देने के लिये ही तो है। जब वह मान लेता है कि यह सब पिता के लिये हैं तो फिर किसी अन्य शृङ्गार की आवश्यकता ही नही रहती है। भेद भाव मिट जाता है। एक दरियाव में वर्षा से अनेक बुदबुदे उठते है और मिटते हैं। गति चक्र चलता है। बनना और बिगडना चलता है। इसी प्रकार इस ससार सागर में अनेक बुदबुदे उठ रहे हैं मिट रहे है किन्तु वही बुदबुदा सार्थक है जिस पर हरी का रग चढा होता है।"

श्री दाता बिराज रहे थे। कुछ दु खी प्राणी अपनी पुकारे लेकर आये और प्रार्थना करने लगे कि उनके दु ख को मिटा दे। श्री दाताने उनकी पुकार सुनी। फिर सब को सम्बोधित कर फरमाया, "ठीक है। हम भी दु खी है। तुम भी दु खी हो। हम भी रो रहे हैं और तुम भी रो रहे हो, किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि इतना दु ख देखन पर भी अब तक तुम्हारी आंखे नही खुली है। अगर इतना दु ख तुम में न पडा होता तो तुम न मालूम कितना जुर्म कर डालते। इतनी समस्या होने पर भी अभी हम चौडे व बाजार सकरे है। जिसने तुम्हे बनाया है, जिसने तुम्हे सब कुछ दिया और जिसने तुम्हारे लिये इतनी सुविधायें दी, उसी पर तुम आक्रमण करते हो। तुम यदि नहीं मानोगे तो तुम्हारे लिये दु ख-दर्द अनिवार्य होगा। तुम सहन नही कर सकोगे तो रो दोगे। वेश्या को जाकर पूछो तो वह कह देगी कि वह बहुत दु खी है। पतिव्रता को भी पूछ लेना। वह भी दु खी है। दोनो दु खी हैं। इस सुरता रूपी सुन्दरी को जब

तक पिया नहीं मिले तब तक दु:खी है। पिया मिलने पर ही वह सती हो सकी। वेश्या थी जो डोलती रही। सती को सती होने पर पिया का आनन्द मिला।"

"जैसे बारुद के ढेर में एक चिनगारी गिर जावे तो एक क्षण में बारुद का ढेर आग में बदल जाता है, वैसे ही यदि पिया की झलक रूपी चिनगारी हमारे में पड़ जाती है तो सारा शरीर ही जगमगाने लग जावेगा। फिर आनन्द ही आनन्द है। बस यही तो चाहिये। पिया मिला कि सब कुछ मिल गया। पिया की चूदड़ी का ओढ़ना ही सफल हो जाता है जब वह मिल जाता है। यह पिया की चूदड़ी पिया के लिये ही है। उसी को प्राप्त करने के लिये यह ओढ़ी है। उसके मिलने पर उसी के अर्पण है।"

° • °

दाता की लीला दाता ही जाने

दिनाक २३-११-८० की वात है। प्रात. काल का समय था। श्री दाता का गो शाला के ऊपर के कमरे में विराजना हो रहा था। भक्त जन दाता के सन्मुख बैठे थे। इधर उधर की हँसी-मजाक की वाते चल रही थी। उसी समय कुछ व्याख्याता श्री दाता के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। कुछ महिला व्याख्याता भी थी। सभी प्रणाम कर श्री दाता के सन्मुख बैठ गये। कुछ समय तक मूक सत्सग होता रहा। कुछ समय पश्चात् एक महिला व्याख्याताने कहा, "दाता मुझको आपका चित्र चाहिये। आपकी आज्ञा होनी चाहिये।

श्री दाता-"क्यो ? चित्र को आप क्या करेंगी ?"

महिला व्याख्याता-"बस गले में लगाने को चाहिये।"

श्री दाता मुस्कराते हुए-"बस तो सड़क पर रहती है, उसको गले मे कैसे लगाओगी ?"

म व्या-"बस नही ! आपका चित्र चाहिये दर्शन करने के लिये।"

श्री दाता-"यह तो अपनी अपनी भावना और अपनी अपनी मौज है। अब आपके कैसे है ?"

म का-"पहले से अब काफी अच्छा है। दाता की कृपा से अब अच्छा चल रहा है। आपके स्वप्न में दो बार दर्शन भी हुए है।"

श्री दाता-"यह तो यो ही है। पहले तुमसे हमने पूछा था तब तुम नही समझी।"

म. वा -"मै पहले नही समझ सकी थी। आपकी कृपा से ही तो आपके दर्शन होते हैं। बिना कृपा आपके दर्शन कहाँ ?"

श्री दाता-"दर्शन तो दाता के। दाता की लीला दाता ही जाने। म्हाका राम तो दाता का एक किंकर है। आप लोगो की तरह

ही उसके दरबार में पड़ा हूँ। मै तो अदनासा व्यक्ति हूँ। जैसे आप लोग दाता की लीला देखते हो, उसी तरह मैं भी देखता हूँ। दाता तो महान है। जो सच्चे मन से दाता का होकर दाता को पुकारता है, दाता उस पर अवश्य महर करता है। इसमें शका की कोई गुजाईश नही है। आपकी सच्ची लगन और भावही उसकी अनुभूति का प्रमुख साधन है। जिस जिसने भी आर्त स्वर में उसे पुकारा है, वह आया है। वह तो सदैव ही वन्दे के साथ है। वह तो हाजिर नाजिर है। वन्दे को विश्वास होना चाहिये आपको दाता ने स्वप्न में आकर दर्शन दिये, इसका मतलब है कि दाता की आप पर कृपा है। दाता तो इतना दयालु है कि हमारी थोडीसी भी इच्छा हुई नही कि वह दर्शन देने को आ जाता है। गल्ती तो हमारी है कि हम भौतिक बातो की इच्छा करने लग जाते है। सासारिक दु ख सुख को लेकर उसके सामने जाते हैं जब हम इन बातो के लिये उसे पुकारते है तो वह सुनता अवश्य है और हमारी इच्छाओ की पूर्ति भी करता है किन्तु उसमें मजा नही है। इस प्रकार करने से हमे सच्चे आनन्द की अनुभूति नही होती है। उस महान शक्ति का प्रयोग हम सासारिक सुख-दु ख में क्यो करे? क्यो न हम उसी के बन कर उसकी इच्छा करें? उसकी इच्छा करने पर सभी दु ख मिट जाते हैं।"

इस प्रकार की बाते हो हो रही थी कि भोपाल से कुछ सज्जन दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। उसमे से एक सज्जन ने प्रश्न किया :

सज्जन–"भगवान! सभी समर्थ अवतार क्षत्रिय कुल मे हुए है। दाता भी क्षत्रिय कुल में ही जन्मे है। श्री राम एव श्री कृष्ण भी क्षत्रिय कुल मे ही पैदा हुए थे। श्री दाता यही फरमाते है कि वह तो सर्वत्र है। सभी वर्ग और सभी जातियाँ उसके लिये समान हैं। फिर ऐसी क्या बात है कि उसे यह क्षत्रिय कुल ही प्यारा लगा। क्या इसमे कुछ विशेषता है?"

श्री दाता–"दाता की लीला दाता ही जाने। इस विषय मे म्हाका राम कई नही जाने।"

सज्जन–"भगवान सभी की शकाओ का समाधान करते हैं। मेरी शकाओ का समाधान आप नही करेंगे तो अन्य कौन करेगा।"

श्री दाता–"इस बारे में म्हाको (मेरो) राम कई नही जाणे हैं। दाता की लीला को दाता ही जान सकता है। हम अनुमान लगा कर कारण स्थिर करने वाले कौन होते हैं? हम तो दाता की लीलाओ को देख कर आनन्द मनाने वालो मे से हैं। उदयपुर की ही बात है। एक वन्दे का एक बच्चा गुम हो गया। खोज करने पर भी वह नही मिला। उस बच्चे का पिता बहुत दु.खी हुआ। दुःख होना स्वाभाविक है। पिता का दिल ही जो ठहरा। निर्वल के बल ही राम है। जब उस बच्चे को कोई ठोर-ठिकाना नही मिला तो वह दाता के सामने आकर रो दिया। म्हाका राम ने कहा कि दाता से पुकार कर दो। इसमें म्हाका राम के हाथ में क्या है। कर्ता-धर्ता वही है। सुनाई करने वाला भी वही है। बन्दा पुकार कर चला गया। कुछ दिनों बाद ही वह बच्चा आगया। बन्दे के भाव अच्छे थे, अतः दाताने उसकी पुकार जल्दी ही सुन ली। जब उस बच्चे को पूछा गया कि वह वापिस कैसे आगया। इस पर उस बच्चेने कहा कि वह एक होटल पर जाकर नौकर हो गया। बर्तन साफ करने का काम दिया गया। एक दिन वह बर्तन साफ कर रहा था कि एक लाठी धारी बाबा उसके पास आया। उसने आकर कहा कि उसको उसके पिता बुला रहे है। जल्दी ही वह यहां से जावे। जब उसके जाने से इन्कार किया तो वह लाठी वाला मारने दौडा। उसके डर से मैं चला आया। वह बाबा उसको उदयपुर तक लाकर छोड गया। बच्चे के लौट आने पर उसका पिता बडा प्रसन्न हुआ। वह आया और कहने लगा कि दाता की महर से ही उसका बच्चा लौट आया है। दाता की महर थी कि वह लौट आया। यह सब रहस्य तो दाता ही जाने। म्हाका रामने तो उसे साफ कह दिया कि इसमें म्हाका राम कुछ भी नही जानता है। सब कुछ दाता ही जाने। दादूजी ने फरमाया है–

करे करावे मेरे साईया, चित में लहर उठाय।
लोग मोपे भ्रम करे, ताते नीचे नैना॥

लोग हम पर शका करते है कि ये सब जानते है किन्तु म्हाका राम सच्ची कहता है कि वह कुछ भी नही जानता है।"

एक वन्दा–"भगवान्। हम भोपाल में आपका कीर्तन, ध्यान, आदि करते है फिर भी यहाँ आने की इच्छा वनी रहती है। भगवान ! आप सर्वत्र हैं। जितने आप यहाँ हैं, उतने ही वहाँ भी हैं। फिर यहाँ आने की इच्छा क्यो रहती है ?"

श्री दाता–"आप क्या करते है ?"

वन्दा–"सरकार की नौकरी करता हूँ।'

श्री दाता–"आपको क्या वेतन मिलता है ?"

वन्दा–"मुझको सोलाह सो रुपया मासिक मिलता है।"

श्री दाता–"अव आपको ओर ज्यादा वेतन पाने की इच्छा तो नही है।

वन्दा–' है क्यो नही ? अधिक वेतन मिले तो अच्छा ही है।"

श्री दाता–"फिर इसमे भी यही वात है। आपके पास जितना है आप उससे भी अधिक चाहते हैं। यही चाहते है न ? अच्छी वात है।"

एक वन्दा–"गोपियाँ दाता के लिये इतनी क्यो तडपती थी ? वह तो कण कण में विद्यमान है तो वह गोपियो में भी तो था। फिर तडफने की क्या आवश्यकता हुई ?"

श्री दाता–"कण कण में उसके होने का भान न हो तब तक तडफन है। आप वतावे गोपियाँ वडी है कि भगवान। म्हाको राम तो जाणे है कि गोपियाँ वडी है क्याकि उन्होंने उसको हृदय में वसा लिया था। पच तत्व का यह शरीर गोपियाँ है और उन्ही के द्वारा उसे प्राप्त किया जाता है।"

एक अन्य वन्दा–"भगवान ! आप मुझे कितना चाहते है ?"

श्री दाता — "आप जितना चाहते हैं उससे कुछ विशेष ही।"

एक अन्य बन्दा — "भगवान! आपके इस उत्तर से मुझे सन्तोष नही हुआ।"

श्री दाता — "अर्जुन को भगवान ने पूरी गीता ही सुना दी थी। फिर भी उसको उसकी शकाओ का समाधान नही हुआ। उसकी शकाएँ नही मिट सकी। बालक जब तक बालक रहता है तब तक तर्क करता है। बडे होने पर सभी तर्क समाप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार दाता के मार्ग मे भी अनेक तर्क आते है और अनेक प्रश्न उठते है। तर्कों के बढने पर प्रश्न भी बढते जाते हैं। प्रश्न भी ऐसे उठते है जिनका समाधान सभव नही या समझ से परे है। किन्तु बन्दा इस मार्ग पर ज्यो ज्यो आगे बढ़ता है, उसके सभी प्रश्न हल होते जाते है। रहस्य के समझ लेने पर सब ही बातें समाप्त हो जाती हैं। दाता तो तर्क और प्रश्नो से परे है। बुद्धि का जहाँ अन्त है, वही दाता की अनुभूति का प्रारभ है।"

० ० ०

भूख पैदा करो

दिनाक ४-३-८१ को श्रीदाता दातानिवास के बाहर विराजमान थे। कुछ भक्त जन भी बैठे थे श्री दाता ने एक बन्दे से पूछा "आप क्या करते है ? आपका पधारना कैसे हुआ ?"

बन्दा—"दाता की महर। दाता के दर्शन को आया हूँ। करता तो कुछ भी नही हूँ।"

श्री दाता—'दर्शन तो दाता के है। आप कुछ नही करते हो यह तो बडी बात है। कुछ नही करना तो सब कुछ करना है। दाता की महर तो है ही किन्तु बन्दे को कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। बिना किये कुछ होता नही। खेतो में किसान अनाज पैदा करता है तो उसको परिश्रम करना पड़ता है। बिना परिश्रम के अनाज होता नही है। उसको खेत जोतना पडता है। खेत में बीज डालना पड़ता है तथा खेत में पानी देना होता है। पौधो के निकल आने पर निनाई, खुदाई आदि भी करनी ही पड़ती है। खर-पतवार को अलग करनी होती है। जब यह सब वह कर लेता है तब दाता महर की वर्षा करता है। इतना होने के बाद फसल तैयार होती है। इसी तरह दाता के मार्ग में भी तो कुछ न कुछ करना तो पडता है। आप बैठते तो है नही फिर आप ही बतावें कि मेरे दाता आप पर वर्षा की महर करें तो करें कैसे ? आप दाता के लिये बैठोगे और बैठ कर उसमें मन लगाओगे तथा उसके नाम का स्मरण करोगे तभी तो आपको उसमें रस मिलेगा।"

बन्दा—"भगवान ! मैं बैठता तो हूँ। प्रात और सायं दोनो ही समय घन्टे आधे घन्टे बैठता हूँ साथ में घर के अन्य लोगोको भी बिठाता हूँ। हम बैठते अवश्य है किन्तु हमारा मन नही लगता हैं। जब बैठते है तब मन दाता की ओर न जाकर उड़ता फिरता है। न मालूम कहाँ कहाँ अटक जाता है और अजीब अजीब चित्र सामने प्रस्तुत कर देता है। मन भी नही ठहरता और ऊपर से अन्य

बाधाएँ भी सामने आ खडी होनी है। मजबूर होकर उठ जाना पडता है। यह मन प्रपच की बातो में और खेल-कूद में खूब लग जाता है। खाने-पीने की ह्विश बनी रहती है। गन्दगी में खूब दौडता है किन्तु दाता के चरणो में आने से हिचकिचाता है दाता के स्मरण में यह लगता ही नहीं। उसमें तनिक भी रस नही आता है।"

श्री दाता (मुस्कराते हुए)—"भगवान के स्मरण में रस तो आता ही है। आप को नही आता है तो इसका कुछ न कुछ कारण होगा। आपको भगवान के स्मरण की भूख नही होगी। आपको जब भूख लगी होती है तब खाने की वस्तुओ में रस आता है या नही। गुलाब जामुन, जलेबी, लड्डू आदि खाने में आपको रस आता या नही। अवश्य आवेगा। आपको भूख होगी तो अवश्य रस आवेगा किन्तु यदि आपको बदहजमी हो रही है तो कितनी भी रसदार वस्तुएँ खाने को दी जावे तो भी आपको किसी में रस नहीं आवेगा। उल्टी वे वस्तुएँ जहर सी दीखेंगी। आपको भूख है तो सूखी रोटी में भी रस आ जावेगा। यही बात दाता के नाम स्मरण में भी है। यदि आपको दाता क नाम की भूख है तो किसी भी स्थिति में आप क्यो न बैठे, रस आने लग जावेगा। यदि उसके नाम की भूख नही है तो अगरबती, केसर, चन्दन आदि लगाकर बैठो तो भी व्यर्थ है। अत यदि उसके नाम में रस प्राप्त करना चाहते हो तो भूख पैदा करो।"

"आप जानते हैं दर्द में रस है। दर्द नही तो रस नही। वेदर्द में रस कहाँ ? जब दर्द पैदा होता है तब जीव 'तू ही तू' चिल्लाता है। उस समय उसे दाता के सिवा कुछ अन्य नही दिखाई देता है किन्तु दर्द के समाप्त होते ही वह सब कुछ भूल जाता है। दर्द समाप्त होने पर उसका वापिस 'मैं ही मैं' दिखाई देने लगता है। इस तरह मनुष्य बडा ही स्वार्थी या यह कह दो कि हरामी है। वह एक क्षण में सभी अहसानो को भुला देता है। थोड़ा सा सकट आया तो मुह खोल देता है अर्थात् रो पडता है किन्तु सकट के हटते ही मैं चौडा और बाजार 'सकरा' वाली कहावत चरितार्थ करता है। मनुष्यो के बनिस्पत तो पशु ही अच्छे है जो उपकार को उपकार तो मानते हैं।

शेर जंगली जानवर है। वह हिंसक पशु है। पशुओं को मारना और उनका मांस खाना उसका काम है फिर भी वह अहसान फरामोश नहीं। जो उसका उपकार करता है उसका वह सदैव उपकार ही मानता है। वह कितना ही भूखा क्यों न हो किन्तु अपने उपकार कर्ता पर आक्रमण कर उसे हानि नहीं पहुँचाता है। ऐसे कई उदाहरण सुनने को मिले है। यह तो हुई उपकार कर्ता की बात। अब यदि मनुष्य के भाव पवित्र होते हैं तो भी वह मनुष्य पर हमला नहीं करता है। यदि किसी के हृदय में उसके प्रति हिंसा और घृणा के भाव नहीं हैं तो वह भी उसके प्रति वैसे ही भाव बना लेगा। योगिमुनि जंगलो में रह कर तप करते हैं। शेर-चीते आये दिन उनके पास घूमते रहते हैं किन्तु उनको वे कभी हानि नहीं पहुँचाते। क्या उनके पास जादूटोना है या कोई सिद्धि है जिसकी वजह से हिंसक पशुओं की हिंसा समाप्त हो जाती है? ऐसी कोई बात नहीं। रहस्य यही है। उनके हृदय में हिंसा के भाव न होकर प्रेम के भाव होते हैं, इसलिये हिंसक पशुओं के भाव भी प्रेम भाव में बदल जाते है। घृणा करने पर घृणा ही मिलती है। प्रेम करने पर प्रेम ही मिलता है। जैसे भाव होंगे अगले जीव के प्रतिरूप में वैसे ही भाव हो जावेंगे। यह है पशुओं की हालत, जिन्हें हम बुद्धिविहीन कहते है। बुद्धिधारी जीव तो अजीब है। वह तो अपना उपकार करने वालो अपकार करेगा। उनके स्वार्थपूर्ति में तनिक सी रुकावट आयी नहीं कि वह सब ही अहसानों को भुला बैठता है और राक्षस से भी बढ़ कर व्यवहार कर बैठता है। ऐसे प्राणी पशुओं से भी गये बीते हैं। वैसे यह मनुष्य जीवन अमूल्य जीवन है। चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ बताई गई है। यह श्रेष्ठ इस माने में है कि यदि जीव चाहे तो इस योनि में अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति कर सकता है। अत सकट में तो वह याद रहता है किन्तु सकट टलने के बाद भी उसे याद रखना जरूरी है। दुख में वह याद रहता है उसी तरह सुख में भी वह याद रहना चाहिये। हर समय उसका याद बना रहना चाहिये।"

"हमें सब खाने-पीने को मिलता है। हमारे रहने आदि की भी अच्छी सुविधा है। समाज में हमारी प्रतिष्ठा भी अच्छी है।

हमारा रहन-सहन भी ऊँचा है। सभी सुख-सुविधाएँ है। ऐसी स्थिति में हमारे होश हवास ठिकाने कैसे रहेंगे। हम मदहोश क्यो न होगे? हमें हमारी जरुरत की सभी वस्तुएँ मिल रही है फिर हमें आत्म-स्वरूप की क्या आवश्यकता है। हमने तो हमारा सिद्धान्त ही यह बना रखा है कि खाओ-पीओ और मौज उडाओ। किन्तु इन बातो में मौज है कहाँ। इन्द्रिय सुख तो क्षणिक सुख है, इसके बाद तो दु ख ही दु ख है। ऐसा सुख हमें नही चाहिये जो हमें सदा बेहोश रखता हो। इससे तो वह दु ख अच्छा जिसमें होश-हवास तो ठिकाने रहता है। दु ख प्राप्त होने पर हम होश में रहकर आत्मस्वरूप की चिन्ता तो करते है। यह दु ख ही है जिसमें दाता को याद करने में मजबूर हो जाते है। दु ख में ही हमें दाता के नाम में रस मिलने लगता है। कहा भी है-

वा सुख के माथे सिल पडे, नाम हृदय ते जाय।
बलिहारी वा दु ख की, पल पल नाम रटाय॥

यह सही है कि दु ख एव सकट में जब हमारे सभी सहारे समाप्त हो जाते है, तब एक मात्र सहारा, जो दाता का है, याद आता है। दुनिया के अन्य सभी सहारे व्यर्थ नजर आते हैं। माँ-बाप भाई-बहन पत्नी, मित्र, बन्धु-बान्धव, सगे-सम्बन्धी आदि सहारे वास्तव में सहारे नही हैं। ये सब तो स्वार्थ के सगे हैं। सुख में तो ये लोग इसलिये साथ रहते है क्याकि हमारे द्वारा इनके स्वार्थो की पूर्ति होती है। दु ख में इनके स्वार्थों की पूर्ति नही होती है अत साथ देने के बजाय उल्टे विरोधी बन जाते हैं। पैसा भी आपको दु ख देने वाला नहीं है। वह भी वक्त पर साथ देने के स्थान पर सकट उपस्थित कर देता है। कभी कभी तो पैसा आपके जीवन को समाप्त कर देने का कारण भी बन जाता। हमारा मान-सम्मान एव हमारी प्रतिष्ठा भी वक्त पर हमारा साथ नही देती। सकट आने पर वह भी हमारे लिये अभिशाप बन कर भयकर कष्ट कर देने वाली सिद्ध होती है। अत सकट के समय सहारा है तो केवल दाता का है। उसको विश्वास के साथ सच्चे मन व सच्चे प्रेम से पुकारने पर वह सकटमोचन के लिये तुरन्त चला आता है। आर्त होकर पुकारने मात्र की देर है। आर्त पुकार में ही रस आता है।"

"दाता बहरा नहीं है, जो ज़ोर की आवाज़ पर सुनता हो। वह तो हृदय में उठने वाली छोटी से छोटी तरंग को भी जानता है। आपका कोई भी भाव उससे छिपा नहीं है। उसके लिये कहा गया है'— चींटी के पग नेवर बाजे, वह भी साहिब सुनता है। न दाता आपसे दूर है जो आपकी आर्त पुकार सुन कर दूर से दौड़ा हुआ आवे। वह तो आपके निकट, निकट क्या आप में ही है। वह तो आपके भाव मात्र देखता है। सब कुछ आपके भावों पर निर्भर है। यदि आपके भाव शुद्ध है तो मार्ग सीधा है। भाव शुद्ध होने पर जम कर बैठने की और साधना—उपासना करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होगी। हर दम आपका ध्यान उसी मे रहेगा, चाहे आप उसके प्रतीक के सामने बैठे हो, चाहे बिस्तर पर सो रहे हो और चाहे कोई भी काम कर रहे हो। यदि आप उसके बन जाओगे तो वह आपका बन जावेगा।"

एक जज भी वहा बैठे थे। श्री दाता ने उनको सम्बोधन कर कहा, "क्यो जज साहब! जो मुलज़िम आप पर निर्भर हो जाता है विशेष उसकी देखरेख आप रखते है या नहीं।

जजसाहब—"जो मुलज़िम सरकार बन जाता है तब यह तो सरकार का कर्तव्य ही है कि वह उसकी पूरी देखरेख रखें। उसकी पूरी जिम्मेदारी सरकार की होती है।"

श्री दाता—"मुलज़िम जो जज साहब पर निर्भर हो जाता है, उसकी देखरेख की जिम्मेदारी जज साहब की हो जाती है। एक पत्नी अपने पति पर निर्भर हो जाती है तो वह अपने पति की ही हो जाती है। फिर पति उसकी हर प्रकार से रक्षा करता है। वह उसके लिये मर कर भी उसकी रक्षा करता है। आप भी उसकी पत्नि बन जाओ। अर्थात् पूर्ण रूप से उस पर निर्भर हो जाओ फिर देखो कैसा आनन्द आता है। हर प्रकार से वह आपका भार ग्रहण करेगा। अरे! धन्ना भक्त उसका बना तो दाता उसके यहाँ हाली (नौकर) तक बन गये। नामदेव उसका बना तो वह उसकी कुटिया का छप्पर छाने आगया। क्या नहीं करता है वह ? वह तो बन्दे का

हर काम करने को तैयार है, यदि बन्दा उसका बन जाता है। समर्पण तो आवश्यक है। बिना समर्पण के तो वह बहुत दूर है। अतः यदि आपको भूख है और यदि आप उसके बनना चाहो तो अपने आपको उसके चरणों में समर्पित कर दो।

"यह अहकार है, जो जीव को भटका देता है। मनुष्य अहंकार के वशीभूत होकर उसको तो भूलता है सो भूलता है किन्तु अपने आप को ही भूल जाता है। अहंकार मनुष्य का परम शत्रु है। भटकाव का मार्ग अहकार ही प्रस्तुत करता है। अतः अहकार से बचना चाहिये। वैसे अहकार उसकी प्राप्ति का साधन भी है। अहं से सो ऽहम व दासो ऽहं हो जाता है।"

"एक तार मे वल पड़ रहा है उसे सीधा करना है तो उसे जतरी में निकालना पड़ेगा। जन्तरी में तार को निकालने पर उसका वल निकल जाता है और वह सीधा हो जाता है। आप सम्पत्ति इकट्ठी करना चाहते हैं किन्तु कमाई करे तभी तो सम्पत्ति इकट्ठी होगी। केवल बातो से काम चलने का नही। जिसके पास सम्पत्ति होगी, उसे ही तो सेठ कहेंगे। आपने बागरिया जाति के लोगों को देखा होगा। उनका कार्य तो है मल-मूत्र की सफाई किन्तु उनमें से अधिकाश सम्पत्ति वाले है। जिसके पास सम्पत्ति होती है उसे लोग सेठ कहते है। जिसके पास सम्पत्ति है उसको बलिहारी है। सेठ होने में जाति-पाति या ऊँच नीच का कोई भेद नही। चाहे कोई भी हो, जिसके पास सम्पत्ति है वही सेठ हुआ। चाहे वह चमार हो, चाहे जाट हो या चाहे वह गूजर हो। सेठ है तो सम्पत्तिवान है और सम्पत्तिवान है तो आनन्द में है। सम्पत्ति ही मनुष्य को आनन्द पहुँचाती है। सम्पत्ति का वास्तविक अर्थ भौतिक वस्तुओं से नहीं है। सच्ची सम्पत्ति तो दाता की सम्पत्ति है। यह सम्पत्ति जिसके पास है वही सेठ है और वही मालामाल है। दाता रूपी सम्पत्ति को कोई भी प्राप्त कर सकता है, कारण कि उसके लिये बराबर है। वहाँ कोई भेदभाव नही। जो उसका बन जाता है वह उसी का हो जाता है।"

"उसके बनने के लिये आपको पतिव्रता स्त्री की तरह होना पड़ेगा। पतिव्रता स्त्री अपने पति के समर्पित हो जाती है अर्थात् पूर्णतया पति की हो जाती है। पति की इच्छा ही उसकी इच्छा होती है। अलग से उसकी कोई इच्छा नही। पति का आदेश ही उसके लिये सब कुछ होता है। उसके लिये सभी कार्य उसके पति के लिये हैं। खाती है, पीती है, सोती है, बैठती है, बोलती है, चलती है, घर के काम करती है और अन्य काम भी करती है किन्तु उसके सभी काम पति के होते है। यहा तक भी मरती भी है तो पति के लिये ही मरती है। आप भी उसी पतिव्रता की तरह हो जाओ। आपका प्रत्येक काम हो सो दाता के लिये ही हो। आप पथभ्रष्ट पत्नी की तरह न बनो जो दर दर की हाण्डिया चाटती हो। दर दर भटकने में तो जीवन ही नष्ट हो जावेगा।"

पतिव्रता स्त्री कभी अपने पति को देखने की कोशिश नही करती है। कैसा भी पति क्यों न हो, एक बार स्वीकार कर लिया सो कर लिया। देखने का काम तो पथभ्रष्ट और चरित्रहीन पत्नियों [illegible]का है। वे कामनाओं और वासनाओ में लिप्त रहती है इसलिये उनकी देखने की इच्छा होती है। आप लोग भी दाता को देखना चाहते हैं। आप लोग भी वासना-कामना मे लिप्त हो, इसी लिये तो उसे देखने की इच्छा करते हो। एक बार आपने उसे स्वीकार कर लिया अर्थात् उसके बन गये फिर देखने दिखाने की बात ही क्या रही। जिसको सच्ची भूख है वह देखता-दिखाता नही। यदि वह यह देखने बैठ जावे कि जो रोटी बनी है उसको किसने बनाई, गेंहूँ कहाँ पैदा हुए, कौन लाया, आदि तो जानते है, उसका क्या हाल होगा। वह भूखे ही मर जावेगा। अत. चुपचाप खा लेने से ही तृप्ति हो पावेगी। आप लोगों को सचमुच भूख तो है नहीं, इसी लिये बहकाने के लिये कोरी बाते ही करते हो। यदि आपको सच्ची भूख है तो वह आपके सामने प्रकट हो जावेगा। आप उसे देखना चाहते हो लेकिन आप यह नही जानते हो कि उसे देखनेवाला जब वह सामने आ जाता है, रहता ही नही है। नमक की पुतली यदि वह चाहे कि वह समुद्र को देखे तो क्या वह देख सकेगी? समुद्र को देखने के लिये वह समुद्र में गोता लगाती। आप जानते हैं

उसकी क्या हालत होगी ? क्या उसकी समुद्र को देखने की इच्छा पूरी होगी ? वह तो समुद्र का पानी होकर समुद्र में मिल जावेगी। उसका अलग से कोई अस्तित्व ही नही रहेगा। अस्तित्व समाप्त होने के बाद क्या प्रमाण कि उसने समुद्र को देख लिया है। लकडी आग को देखने की इच्छा करती है तो वह आग ही हो जाती है। अत उसको देखन की इच्छा ही समाप्त करो।

'आप अपने मे उसके लिये भूख जागृत करो। उसके लिये अपने मे दर्द पैदा करो, फिर देखो रस आने लगता है या नही तथा आपका मन लगता है या नही। आप देखोगे कि किस तरह अपने आप सब बाधाएँ और रुकावटे समाप्त हो जावेगी। भूख न होने पर उसे जागृत करनी ही होगी। भूख जागृत करने के लिये सत्सग है। ध्यान में बैठना, माला फेरना, जप तप करना, उपासना करना, पूजा करना आदि सभी बातें भूख लगाने के साधन मात्र है। जब भूख लग जावेगी तो ये सब बेकार हो जावेगा। भूख लगने पर तो भोजन ही सामने दिखाई देगा। जिस तरह प्यास में पानी है और भूख में भोजन है उसी तरह इस भूख मे दाता है।"

दाता को याद करने के लिये न तो कोई समय निश्चित है और न स्थान ही। सभी स्थान और सभी समय उसके है। आप समय और स्थान का इन्तजार करो और श्वास आया न आया। फिर सब बेकार हो जावेगा। अत समय और स्थान की चिन्ता किये बिना हर समय और हर स्थान पर उसका स्मरण करो। उसका स्मरण कभी व्यर्थ नही जावेगा। आप केवल मन्दिर में बैठ कर पुकारो ऐसी बात नही है। वह सर्व व्यापी है। उसको कही से भी याद कर सकते हो वह मन्दिर मे है तो घर मे भी तो वही है। सभी स्थानो पर वह है और सभी वस्तुओ में वह है। वह कीर्तन भजन में है तो राग-रग में भी तो वही है। वह तो अणु अणु में विद्यमान है। ऐसा कोई स्थान नही जहाँ वह न हो। वह सभी का। जो उसको भजता है वह उसे पा लेता है। कमी है तो अपनी इच्छा की है।"

"रैदासजी चमार जाति से थे और भगवान के परम भक्त थे। चमार होना पाप तो है नही। हम लोग चमार को नीच जाति का

मानते हैं। इसलिये नीच मानते हैं, क्योंकि वे हम लोगों की सेवा करते है और हमारा सम्मान करते है। कितने स्वार्थी है हम लोग रैदासजी जाति से चमार थे इसलिये उच्च वर्ग के लोग उनसे घृणा करते थे और परहेज भी। दुनिया भले ही घृणा करो, भक्त को इस बात की क्या निन्दा ? उसको तो भगवान से ही काम है। वे जो भी काम करते हैं भगवान का समझ करते हैं। बाजार के मध्य उनकी जूतों की दुकान थी। पूरे दिन दुकान पर बैठ कर जूते सीते थे और बेचते थे। जूते सीना ओर बेचना उनकी रोजी थी। शरीर तो दाता का बताया हुआ काम करता किन्तु मन उनका दाता में ही रमा रहता था। वे पहुँचे हुए भक्त थे। जानने वाले उनका बड़ा आदर करते थे। वहाँ के राजा ने भी उनकी भक्ति के बारे में सुन रखा था। वह भी उनका सम्मान ही करता था। प्रेम से नही किन्तु लोक भय मे ही सही, वह उनके दर्शनों को आ जाया करता था। एक दिन राजा उनकी दुकान के सामने से होकर निकला। राजाने भक्त राज को प्रणाम किया। राजा के साथ दरबारी भी थे। रैंदासजीने अपनी कठौती (चमड़ा गिला करने के लिये पानी का बर्तन) में से कुछ जल लेकर चरणामृत या प्रसाद के रूप में राजा को दिया। पानी गन्दला था ही। राजा ने भय और लोकनिन्दा से उस प्रसाद को ले तो लिया किन्तु उसका मन नही मान रहा था सच्ची श्रद्धा थी नही अत. उसने उसको प्रसाद माना नही। इन्कार कर भक्त राज को अपमानित करने का भी साहस नही था अत: राजाने चालाकी का प्रदर्शन किया। हाथ को मुँह के पास ले जाकर मुह को इस तरह आवाज़ की जैसे चरणामृत मुह में ले लिया हो। उसने उस पानी को बड़ी तरकीब से कोट की बाँह पर उतार दिया। रैंदासजी जानते हुए भी चुप थे। उन्होंने राजा के इस कार्य पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। देने की आवश्यकता भी नहीं थी। अपने अपने कर्म अपने अपने साथ।"

"राजा महलों में पहुँचा। उसने कोट को उतार धुलाने के लिये धोबी को दे दिया। जो चरणामृत रैंदासजी ने दिया था और जिसको राजाने कोट की बाँह पर उतार दिया था वह जम कर कोट

की बांह पर गाडा हो गया। शहद जैसा हो गया। दैवयोग से कपडो को सभालते वक्त धोबिन ने उस बाँह को मुह के बल पकड़ा। उस गाडे पदार्थ का कुछ अश उसके मुह में चला गया। अश के मुह मे जाते ही धोबिन की स्थिति हो भिन्न हो गई। उसको दृष्टि दिव्य हो गई। उसके ज्ञान चक्षु खुल गये और उसको भविष्य की बाते दिखाई देन लगी। वह भविष्य भाखने लगी। राजा को दूसरे दिन ही पता चल गया और सारा रहस्य समझ मे आ गया। वह बडा दुःखी हुआ। अगले दिन पुन वह बाजार में गया। रैदासजी की दूकान के पास होकर निकला और बडी श्रद्धा से प्रणाम भी किया किन्तु रैदासजीने कुछ भी ध्यान नही दिया। कुछ देर खडे रहने पर भी जब रैदासजीने चरणामृत नही दिया तो राजा से नही रहा गया। उसने स्वय ने चरणामृत माग ही लिया। इस पर मुस्कराते हुए रैदासजीने कहा राजाजी वह पानी तो मुलतान गया।"

'कहने का मतलब है कि दाता किसी जाति विशेष का नही है। जो उसको भजता है वह उसी का है। यदि एक ब्राह्मण उसको भजता है तो वह ब्राह्मण का है, राजा उसको भजता है तो वह राजा का है कगाल उसको भजता है तो वह कगाल का है, धनी उसको भजता है तो वह धनी का है, एक कसाई उसको भजता है तो वह कसाई का और एक गरीब उसको भजता है तो वह गरीब का है। कहा भी है –

राम का भजै सो राम का होय।

होनी चाहिये श्रद्धा। श्रद्धा वान लोग ही लाभ को प्राप्त होते है। राजा श्रद्धाहीन था तो उसे कुछ भी नही मिला। श्रद्धाहीन व्यक्ति सदा हो अन्ध कार में रहता है। उसको स्थिति भ्रम युक्त ही रहती है। उसको बात बात में धक्का होती है और वह कभी मुकाम पर नहीं ठहरता है। एक अन्धे व्यक्ति को एक ऐसे कमरे में छोड दिया जिसके एक ही दरवाजा था। उसने उस कमरे से बाहर आने की इच्छा की। उसने दीवार का सहारा लिया। दीवार के सहारे चलते चलते वह दरवाजे के निकट तक पहुच गया किन्तु वहाँ पहुचते

पहुंचते उसको शका हो गई। उसने दिवार का सहारा छोड दिया। फल यह हुआ कि दरवाजा निकल गया। उसका इतना सारा परिश्रम वेकार ही चला गया। यदि वह भ्रमित नहीं होता तो दरवाजा निकट ही था, वह बाहर आ सकता था। उसको बाहर आने के लिये पुन. प्रारभ से चलना पडेगा। अगली वार भी क्या विश्वास की वह भ्रमित नहीं होगा। उस अन्धे व्यक्ति की तरह हम सब भी अन्धे है। सहारे पर विश्वास है नही। यह ससार अज्ञान रूपी कमरा ही तो है। इस ससार रूपी कमरे से हम दाता की कृपा विना बाहर कैसे आ सकते हैं। उस पर अटूट विश्वास होगा तब ही पार पाया जा सकता है। अत पूरी श्रद्धा से आगे बढो। श्रद्धा होने पर इधर-उधर लुढ़कना समाप्त होकर एक स्थान पर टिकाव हो जावेगा। फिर आपके हर काम में आपको रस आने लगेगा। फिर सब काम छोड़कर आपको बैठने की इच्छा होने लगेगी।"

"सौ बातो की एक ही बात कि आप अपने में उसकी भूख पैदा करो। भूख पैदा होते ही आपको अपने आप मार्ग मिल जावेगा। फिर आपको किसी को भी पूछने की जरुरत नही पडेगी और भटकना भी नही पडेगा। सत्गुरु की महर ही आपका बेडा पार कर देगी और आप हसते हसते इस ससार रूपी सागर को पार कर सकेगे।

° ° °

उसको न भूलो

दिनांक २३-३-८१ को उदयपुर के भक्तजनों की प्रार्थना पर श्री दाता का पधारना उदयपुर हुआ। साथ में भीलवाड़ा जयपुर आदि स्थानों के लगभग चालीस व्यक्ति थे। श्री दाता का विराजना भवानी भवन में हुआ। यद्यपि श्री दाता का पधारना गुप्त ही रखा गया किन्तु आग को कोई छिपाना चाहे तो क्या वह छिप सकेगी? कुछ ही समय में लोगों को पता चल ही गया। अनेक स्त्री-पुरुष श्री दाता के दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। सभी सत्संग की इच्छा लेकर आये थे। श्री दाता यात्रा से यद्यपि थके हुए थे फिर भी जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को देखकर उनके बीच में आ विराजे। कुछ निकट के भक्तों ने विश्राम कर लेने का आग्रह किया किन्तु श्री दाता ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। सब के शान्ति से बैठ जाने पर श्री दाता ने फरमाया, "आप सब लोग भगवान के प्रति प्रेम रखते हो, यह बड़ी अच्छी बात है। हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। जीवन का सबसे बड़ा सार ही यही है कि दाता के चरणों में प्रेम हो। यही मार्ग आपको परम शान्ति का देने वाला है। संसार में अन्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो आपको शान्ति दे सके। आप चाहे भी कर देख लें। चाहे खूब धन कमा लो चाहे बन्धु बान्धवों में मन लगा लो और चाहे जो करके देख लो शान्ति कहीं नहीं है। सांसारिक कामों में ज्यों-ज्यों उलझोगे, त्यों-त्यों आपको अधिक अशान्ति ही मिलेगी। शान्ति चाहो तो केवल मात्र भगवान् के चरणों में ही मिल सकती है। सद्गुरु ही एक ऐसी शक्ति है जो आपके सब दुखों और परेशानियों को दूर कर शान्ति दे सकता है। उनके चरणों में ही आपको आनन्द मिल सकता है। म्हारा (मेरा) यह नहीं कहता है कि आप अपना सब काम छोड़ कर दाता का ही स्मरण करो। आप काम सब करो किन्तु उनमें उलझो नहीं। काम तो सब उनके हैं किन्तु आपका उसने निमित्त बनाया है, इसलिये काम तो आपको करना ही होगा किन्तु सब ही काम उनके समझकर करो। काम करते करते भी उनको याद रखो। समय निकाल कर

तो निकाल कर उसका स्मरण करो या ध्यान करो । भजन-कीर्तन आदि जो भी इच्छा हो और जिसमें भी आपको रस मिले वह करो । समय न भी मिले तो भी दुःखी होने का काम नहीं । काम करते-करते भी उसको याद रख सकते हो । बस हर दम उसको याद रखो । मार्ग अपने आप मिल जावेगा । हां ! एक बात सबसे बडी है कि उसको आप लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर पुकारते हो, यह ठीक नहीं है । स्वार्थ तो हमारे हैं ही किन्तु हम उसे छोटी छोटी बातों के लिये क्यों पुकारें । उस महासमुद्र में जाकर पानी की एक बून्द की इच्छा करे यह निरी मूर्खता ही होगी । एक बार की बात है, कुछ दिनों पूर्व यहाँ एक व्यक्ति आया । आते ही वह बडी भाव भक्ति दिखाने लगा । कहने लगा कि वह बडी दूर से आया है । उसकी बात सुनने योग्य है । वह बोला, मैं बडी दूर से आया हूँ । आपकी मैंने बडी तारीफ सुनी है । मैं बडी आशा लेकर आया हूँ । आप महापुरुष है । सैकडो व्यक्तियों को आपने मार्ग बताया है । मैं भी प्यासा और दुःखी हूँ । आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ हूँ ।"

हमने देखा कि यह तो बडा ऊँचा भक्त मालूम होता है । चलो सेवा करने का अच्छा मौका मिलेगा । उसको बिठाया । उसको खिलाया-पिलाया । विश्राम कर लेने के बाद उससे पूछा कि उनका पधारना कैसे हुआ । कुछ और लोग भी बैठे थे, अत उसको कुछ संकोच हुआ । वह आने का कारण बताने में हिचकिचाने लगा । हमें शका हुई कि दाल में कुछ काला है । अन्य लोगों को हटा कर उसको पूछा तो वह कहने लगा कि उसको एक आँख चाहिये । उसने कहा कि वह बरबाद हो चुका है यदि उस पर कृपा हो जावेगी तो उसकी लाज बच रहेगी । म्हाका (मेरा) राम को हसी आ गई । उसको कहा कि भगवान ने उसे दो आँखें दी है और वह एक आँख क्यों फोडना चाहता है । पहले ही वह मर रहा है फिर गले में फाँसी क्यों लगा रहा है । उसको समझा बुझाकर सीख दी । लोग कैसे हैं । मर रहे हैं फिर भी नहीं सभलते हैं । आक मागने के बजाय वह उस दाता को ही माग लेता तो निहाल ही हो जाता । कहने का तात्पर्य है कि हम हमारे छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति हेतु उसका

उपयोग करे यह कहाँ तक ठीक है ? अरे ! दाता के अपार भण्डार में जाकर भी हम बीडी-सिगरेट लेने की कोशिश करे, यह मूर्खता नही तो और क्या है ? यदि हम लेना ही चाहते है तो भण्डार की ताली ही क्यो नही माग लेते जिससे सदैव का टटा ही मिट जाय।'

'हमें वासना-कामना रहित होकर ही उस ओर वढना चाहिये। वासना और कामना को प्रधानता देना हितकर नही है। प्रधानता तो हमें दाता ही को देनी होगी, क्योंकि हमें उसी की ही तो चाह है। जब उसको प्रधानता दोगे तब ही आपके सब काम बनेगे। दाता आपसे दूर नही है। वह तो आपमें ही विद्यमान है। एक वाल की खाल खाली नहीं है। महात्माओ ने उसको वाल की खाल में निहारा है। आप भी उसे निहारने की कोशिश करो। आप और हम सभी कहते हैं कि हमें दाता से प्रेम है। प्रेम सभी रखते है किन्तु क्या प्रेम जो हम दिखा रहे हैं, सच्चा है ? यह प्रेम तो वासना और कामना का है। स्वार्थमय प्रेम है। इस प्रेम से काम वनने का नही। वहाँ तो नि स्वार्थ प्रेम रखना होगा तभी काम कर सकता है।"

"जब मनुष्य पर आपत्ति आती है और भय का वातावरण उपस्थित होता है तब तो वह उस ओर आकृष्ट होता है किन्तु आपत्ति और भय का वातावरण हटा कि वे जैसे थे वैसे ही हो जाते हैं। म्हाका (मेरा) राम बदरीनाथ की यात्रा में गया। वहाँ मार्ग बडा विकट था। पग-पग पर गिरकर मरने का भय था। लौटते वक्त वहाँ देखा कि बस मे बैठने वाले बडे भक्ति भाव से हरि-कीर्तन कर रहे थे। चारो ओर बस में 'हरी बोल' की आवाज ही आ रही थी। यदि कोई वहाँ अन्य बात करता तो लडने को तैयार हो जाते। हमने देखा कि यहाँ तो बडे भक्त लोग है। कैसे तन्मय होकर हरी-कीर्तन कर रहे हैं किन्तु ऋषिकेश से कुछ आगे पहुँचे कि विकट मार्ग समाप्त हुआ। ज्योही मार्ग की विकटता समाप्त हुई कि यात्रियो की वह भक्ति-भावना काफूर (समाप्त) हो गई। फिर तो सिनेमा के गाने चलने लगे। लोग गाने लगे —

सगम होगा कि नही, बोल राधा बोल।

कोई कहने लगा :--

हवा मे उडता जाय रे लाल दुपट्टा मल मल का।

सुनकर हम तो दग रह गये। उस समय तो वे दाता को बिलकुल ही भूल गये। कैसी अद्भुत बात थी। मनुष्य कैसा अजीब प्राणी है? कैसे कैसे विचित्र रूप वह बना लेता है? बहुरुपिया से भी वह बढकर है। वह दाता को धोखा देने में भी नही चूकता है। उसने दाता को इतना पागल समझ लिया है। क्या वह उनके कामों और भावों को नही जानता है? वह तो उसके स्वार्थों को, व उस स्वय को अच्छी तरह जानता है। उसके हृदय में उठने वाली छोटी से छोटी तरग को जानता है। उससे क्या छिपा है।"

"आपके मन की गति साफ और स्पष्ट होनी चाहिये। उसमें पूरा विश्वास रखकर ही चलना चाहिये। उसकी चचलता समाप्त होगी तभी तो काम चलेगा। मन की चचलता ही तो विषमता लाती है और आपकी स्थिति को डावाडोल करती है। अतः उसकी चचलता को समाप्त कर उसे स्थिर कर दाता के चरणो में लगा देने से ही काम बनेगा। अपने ध्येय को सदैव ही सन्मुख रखना चाहिये। ऐसा न करने से बडी कठिनाई का सामना करना पडेगा। पनिहारी की चाल चलते रहे। सब काम करते हुए उस एक का ध्यान रखो। सुरता रूपी पनिहारी है। इस शरीर रूपी घट मे अमृत रूपी गागर है। यह सुरता अपने अह रूपी सिर पर अमृत रूपी गागर को लेकर चलती है। यह इन वृतियो मे नाचती-कूदती अर्थात् रमण करती हुई अपने अह रूपी सिर को नही हिलाती है जिससे वह सरलता से उस गागर को घर ले आती है अर्थात् अमृत तत्व को प्राप्त कर लेती है। अतः आप अपनी गति भी पनिहारी सी बना लो। आप दुनिया में रहते हो। आपको इस दुनिया में रहते सभी काम करने पडते हैं। आप सभी काम करो किन्तु काम करते हुए भी ध्यान उसमें रखो जिसने आपको बनाया है। आपका मन हर समय उसमें लगा रहना चाहिये।"

कुछ अधिकारी भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। उनमें से एक ने पूछा।

अधिकारी "हम सत्गुरु को कहाँ प्राप्त कर सकते हैं ?"

श्री दाता "आप लोग कहाँ से आ रहे ?"

अधिकारी ··"अभी तो हम घर से आ रहे हैं।"

श्री दाता "अभी तो आप घर से आ रहे हैं किन्तु घर से पहले कहाँ थे ?"

अधिकारी· "इसके पहले हम अपने कार्यालय में थे।"

श्री दाता ··"कार्यालय में आप क्या कर रहे थे ?"

अधिकारी "सरकारी काम कर रहे थे।"

श्री दाता ··"आप किस पर बैठ कर काम कर रहे थे ?"

अधिकारी ··"हम कुर्सी पर बैठ कर काम कर रहे थे।"

श्री दाता···"वहाँ तो आप कुर्सी पर बैठ कर काम कर रहे थे किन्तु घर आने पर आप लोग कहाँ बैठे ?"

अधिकारी "वहाँ भी हम लोग कुर्सी पर ही बैठे।"

श्री दाता ·"कुर्सी आपके साथ आयी या आप कुर्सी के साथ ?"

अधिकारी ·"भगवान। वहाँ भी कुर्सी थी और घर पर भी कुर्सी थी।"

श्री दाता——"यही तो बात है। जिस तरह आपके घर भी कुर्सी थी और कार्यालय में भी कुर्सी थी, उसी तरह मेरे दाता भी कार्यालय में, घर पर, यहाँ, वहाँ और सर्वत्र हैं। ऐसा कोई स्थान

नहीं है जहां वह नही हो। वह हर स्थान पर विद्यमान है। वह तो घट घट वासी है। वह प्रत्येक स्थान और प्रत्येक घर में है। चाहिये उसको देखने वाला। अह रूपी चश्मा लगाने पर वह नजर नही आता है। उसको देखने के लिये अहकर और स्वार्थ रूपी चश्मो को उतारना पड़ता है। अपने भावो को शुद्ध करना होता है। प्रेम की धारा बहानी पडती है। आत्म–समर्पण करना होता है तब कही जाकर उसका अनुभव होता है। वह है तो सर्वत्र किन्तु उसको प्राप्त करना जितना सरल है उतना ही कठिन है। आपके लिये नाना प्रकार के पकवानों की योजना है। थाल भरे पड़े हैं। रस से वे परिपूर्ण हैं। सब के सब रसदार हैं। स्वाद उनका एक से एक बढकर है, किन्तु, आपको भूख होगी तभी तो आप उसका स्वाद ले सकोगे। बिना भूख या जब आपको अपच हो रहा हो, उस समय आपको उनमें कोई रस नही आवेगा। उस समय आप उन्हे कुदृष्टि से देखेंगे। अमृत के बजाय वे पदार्थ आपके लिये जहर के समान हो जावेगे। अत. समझ लो कि भूख में ही स्वाद है। उसकी अर्थात् सद्गुरु के लिये उसकी भूख जागाओ। जब आपको भूख लग जावेगी तो अपने आप काम बन जावेगा। कोरी बातो में स्वाद आने का नही।"

"आप लोग अपने घर को नही भूलते। चाहे आप कार्यालय में हो, चाहे बाजार में हो, या चाहे आप भ्रमण में हो, हर समय आपको घर याद रहता है। कारण, जो कुछ आप कर रहे हैं वह सब घर के लिये ही तो कर रहे हो। इसलिये आप भूलना चाहो तो भी घर को नही भूल सकते। चाहे आप सात समुद्र पार भी क्यो न चले जाओ, घर तो आपके मन में रमा हुआ ही रहेगा। जिस प्रकार हर स्थिति में आप घर को नही भूलते हैं, उसी प्रकार हर स्थिति में उसको याद रखो। फिर देखो कितना जल्दी आपका काम बन जाता है। आप लोगो को यह सीट दाता की अपार दया से ही मिली है। आप चाहो तो इस सीट पर बैठना सार्थक कर दो, वरना एक दिन आपको इस सीट से हटना तो पड़ेगा। हटते वक्त आपको बुरा लगेगा। आप पछताओगे, रोओगे किन्तु फिर रोने-

धोने से क्या होगा ? अतः समय रहते सम्भल जाना ठीक होगा। यह दुनिया और इसके काम बड़े निराले हैं। इसमें बड़ी चटक-मटक है। हर जीव को अपनी चमक-दमक दिखाकर अपनी ओर खींचने की कसर नहीं छोड़ती है। जो इस चमक-दमक में उलझ गया वह डूब गया, किन्तु जो इसमें नहीं फसा वह निहाल हो गया।"

अधिकारी लोग कुछ समय तक बैठ कर विदा हो गये। कुछ लोग उठकर चले गये। सीमलवाड़े के कुछ लोग आकर बैठ गये। श्री दाता जी कुछ देर विश्राम कर वापस आ विराजे। सीमलवाड़ा के आये हुए लोगों में कुछ आदिवासी भी थे। श्री दाता ने फरमाया, "आप लोगों की तरफ तो मिशनरीज काम कर रही है। आज धर्म के नाम की अनेक दुकानें खुली हुई हैं जो अपनी दुकानों की चमक-दमक दिखाकर भोलेभाले लोगों को बहका रहे हैं। आज अनेक धर्म और मत चल रहे हैं। धर्म के पुजारी अपने धर्म के प्रचार के लिये अनेक प्रयत्न कर रहे हैं। धर्म तो धर्म है, उसके प्रचार, प्रसार की आवश्यकता ही क्या है। प्रचार और प्रसार तो मत का है। ये संस्थाएँ राजनैतिक आधार लेकर चल रही हैं, और भोले भाले लोगों को गुमराह करती हैं। सोचो जो लोग झोली लगाकर अपने पेट को भरते हैं, उनसे क्या आशा की जा सकती है। जो स्वयं भिखारी हैं वे अन्यों को क्या दे सकते ? हमें इधर उधर भटकने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी ? हमारी स्वयं की संस्कृति क्या कम महान है ? सदियों से लोगों ने हमारी संस्कृति को नष्ट करने का प्रयास किया किन्तु सब ही विफल हुए। सच्चे मूल्यों को क्या कोई नष्ट कर सकता है ? क्या सत्य को कभी नष्ट होते सुना है ? सत्य तो सत्य ही है। उसको कभी आंच आने का प्रश्न ही नहीं उठता। आपकी संस्कृति में तो इतनी शक्ति है कि वह पत्थर को भी भगवान बना देती है। आपके यहाँ कितने महापुरुष हुए हैं। उनकी शक्ति का तो अनुमान करो। है कोई इस विश्व में राम और कृष्ण के मुकाबले में ! जहाँ की संस्कृति में पत्थर तक को पिघला देने की शक्ति है, उसको छोड़ कर अन्य की आशा करना कहाँ की बुद्धिमानी है ? महापुरुषों की हमारे यहाँ कमी नहीं। हमारे यहाँ के सन्त

महान् थे। वैसे सन्त महान ही होते हैं। हमें तो सन्त को नमन ही करना पड़ता है। हम तो आपको भी नमन करते हैं यदि हम आपमें भी उसका नूर देख लें। सन्त तो सच्चिदानन्दरूप ही होते हैं। सन्त तो विश्वनाथ के कोठार हैं। उनमें परम शक्ति होती है। वे जो भी चाहे बन्दे को दे सकते हैं। चाहिये बन्दे की श्रद्धा और भाव। आप लोग दाता के चरणों में अनुराग रखोगे तो आराम पाओगे। दाता की कृपा से ही यह मनुष्य जीवन और यह गृहस्थ जीवन मिला है। इसमें रहकर आप सरलता से उसकी अनुभूति कर सकते हो। गृहस्थ जीवन में सेवा के अवसर हैं। सेवा में तो मेवा है। मेवा से तात्पर्य उस परम आत्मा की अनुभूति से है। आप जानते ही हैं कि दाता घट-घट में विराजमान हैं अत यदि आप सेवा करते हैं तो उसी की तो सेवा होती है। जब सेवा करने वाले को यह अनुभूति हो जाती है तब अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। अत आप गृहस्थ में रहते हुए और गृहस्थ का सभी धन्दा करते हुए उसको याद रखो और उसको स्मरण करते रहो। एक श्वांस भी आपका खाली न जावे इस बात का ध्यान रखो। जो श्वांस उसकी याद में जाता है वही श्वांस सार्थक है। यह किसी को मालूम नहीं है कि अमुक श्वांस में उसकी झलक दिखाई देगी। किसी भी श्वांस में उसकी झलक दिखाई दे सकती है। वह श्वांस कब आवेगी, इसका पता नहीं है, ऐसी अवस्था में एक भी श्वांस खाली न जाने दो। यह शरीर रूपी गाड़ी उसी की कृपा से चल रही है। गाड़ी वाला अन्दर बैठा है और उसी की इच्छा से वह इसे चला रहा है। गाड़ी तेज चले चाहे धीरे यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। हमें गाड़ी से व इसके चलने से क्या मतलब है, हमें तो इस गाड़ी के ड्राइवर से मतलब है। हमें उसी को पकड़ना है। अतः उस ड्राईवर को कभी मत भूलो। उसकी महर से ही हमें यह गाड़ी मिली है। इस गाड़ी में बैठ कर ही मन्जिल पार करना है। वही हमें मंजिल पर पहुँचावेगा। यदि हम ड्राइवर को और मंजिल को भूल जावेंगे तो फिर सब परिश्रम बेकार ही चला जावेगा।"

"जमाना बुरा नही है। बुरे हैं तो हम हैं। हमारी चाह की कमी है। हमारी जेब में आगपेटी है किन्तु हम आग के लिये रोते फिर रहे है। भटक रहे हैं। आगपेटी से तूलिका निकाल कर एक रगड से आग प्राप्त कर सकते है किन्तु रगड लगाते नही। चाह रूपी रगड लगादें तो दाता रूपी अग्नि तत्काल प्रज्वलित हो उठेगी। हमारी हसी उडाने वाले अनेक मिलेंगे लेकिन सवल देकर उठाने वाले विरले ही होगे। दुनिया मे अधिक तर आसू दिलाने वाले अर्थात् रुलाने वाले ही अधिक हैं। आँसू पोछने वाला कोई नही। आँसू पोछने वाला यदि कोई है तो वह दाता ही है। दाता ही हमारे दु खो को मिटा सकता है। वही हमारे आसुओं को पोछने वाला है। वही हमारे तप्त हृदय पर शीतल जल के छीटे देने वाला है। दु ख-दर्द और माया-मोह से बचाने वाला एक मात्र वही है, अतः मव को भूलकर उसे याद रख लो। उसमें तल्लीन हो जाओ फिर देखो कितना आनन्द मिलता है।"

'जितनी देर आपकी चाह के पैदा होने में है, उतनी ही देर उसके मिलने में है। ज्योही चाह पैदा हुई और उसके नाम की भूख लगी कि उसी चाह और भूख में वह हाजिर हो जावेगा। यदि उसको प्राप्त करने की आपकी चाह है तो राम कृपा से कुछ भी दुर्लभ नही है। ध्रुव छोटा सा बालक ही तो था, किन्तु दाता के नाम की चाह पैदा होते ही, उसने सभी आराम की वस्तुओं को छोड कर दाता की खोज के लिये जगल में चल पडा। अधिक दूर नहीं जाना पडा उसको। उसकी चाह के सामने दाता को स्वय ही उपस्थित होना पडा। प्रह्लाद भी तो बालक ही था। उसकी चाह भी कितनी प्रबल थी। उसकी प्रबल चाह के सामने दाता को स्तम्भ फाड़कर आना पडा। दाता तो इतना दयालु है कि कुछ कहा नही जा सकता। यदि बन्दे की चाह ही नहीं है तो क्या किया जाय। जहाँ चाह है वहाँ वह (दाता) है। अत. उसकी महर चाहते *हो तो उसकी चाह करो।"*

"चाहे खाट पर बैठ कर माला फेरो चाहे मन्दिर में जाकर

माला फेरो, कोई फर्क नही पडता। कहीं भी बैठ कर फेरो लेकिन फेरो तो सही। आप किसी भी अवस्था में हो किन्तु आपको चाह तो हो। चाह पैदा होते ही प्रेम के अंकुर फूट पडेंगे। वे प्रेम के अकुर आपके भ्रम रूपी काटो को दूर कर देंगे। फिर जो कुछ रहेगा वह शुद्ध व निर्मल स्वरूप ही रहेगा। अन दाता से प्रेम हो जावे तो आपका जीवन ही सफल हो जाय।"

इतना कह कर श्री दाता चुप हो गये। सोमलवाडा वाले भक्तो ने भजन बोला। भजन था —

मैं तो गिरधर आगे नाचूगी ।

भजन चलता रहा। श्री दाता भावमग्न होकर समाधिस्थ हो गये। जब वे बाहरी दुनिया में आये तो फरमाया, "यह नाचने वाली सुरतारूपी सुन्दरी हैं। वह सदैव इस गिरधारी अर्थात् पचतत्व के शरीर को धारण करने वाले दाता के सामने नाचती है। वह अपने स्वरूप को प्राप्त करना चाहती है। वह अपने स्वरूप को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार के शृङ्गार भी करती है और अनेक प्रकार के हावभाव भी दिखाती है। जब तक पिया के दर्शन नही होते हैं तभी तक शृङ्गार और हावभाव है। पिया के दर्शन होते ही सुरतारूपी सुन्दरी के सब शृङ्गार उतर जाते हैं और सभी हाव भाव, नृत्य आदि समाप्त हो जाते हैं। फिर तो शुद्ध रूप ही रह जाता है। हम इस गाडी में बैठे हैं और सब कुछ जानते हैं किन्तु जानते हुए भी इधरउधर देखने लग जाते हैं। हम स्टेयरिंग को छोड देते हैं। फिर तो गड्ढे में पडना स्वाभाविक ही है। उसका स्वाद बनाये रखो। वह हमारे में ही है अतः उसे भीतर देखो। कहा है :—

जाके पिया परदेश बसत है लिख लिख भेजे पाती।
मेरे पिया मेरे घर बसत है, कहूँ न आती जाती॥

कितनी ऊँची बात कही गई हैं। मेरा पिया तो मेरे हृदय में ही है। वह सदा ही विद्यमान है। वह न कहीं जाता है और न कहीं

मे आता है। हमारा पिया तो देश–विदेश भी नहीं जाता है। भ्रम का परदा पड़ जाने पर वह परदेश में है अर्थात् ओट में है। भ्रम का परदा हटा नहीं कि वह घर में दिखाई देने लगता है। अतः भक्त लोग उसको अपने घर में ही देखते हैं। मीरा ने उसे अपने घर में ही देखा है। आपको भी अपने पिया से मिलने की इच्छा है तो उसे अपने घर में ही ढूंढो। उसको रिझाने को वहीं नृत्य करो। वह आपकी सच्ची चाह के सामने अवश्य प्रकट होगा।

"आप बड़े प्रेम से 'हरि हरि' बोलो। उस हरि की पूजा के लिये आप प्रेम का ही दीपक बना डालो और उसमें प्रेम की ही बत्ती लगा दो। उस दीपक में प्रेम का ही घृत डाल दो। फिर देखो किस प्रकार आपका प्रेम–मन्दिर प्रकाश से जगमगाने लगेगा। जिस मन्दिर में दाता की ज्योति जगमगाने लगती है, वह मन्दिर बड़ा है। सच्चे दर्शन ही हम उसके मानते हैं जिसको हमारे पिया की चाह हो। पिया की चाह ही बड़ी है। चाह करते ही हृदय जगमगा जाता है। वर्षा ऋतु में भयंकर काली घटाएँ छा जाती हैं। चारों ओर घनघोर अंधेरा छा जाता है। उस घोर अंधकार में हाथ से हाथ भी दिखाई नहीं देता है किन्तु उस घनघोर घटा में एक क्षण के लिये जो बिजली चमकती है वह ऐसा प्रकाश फैला देती है कि सुई भी पड़ी हो तो दिखाई दे जाती है। उसी प्रकार कितना ही अज्ञान-रूपी अंधकार हमारी मन-बुद्धि में छाया हुआ क्यों न हो, यदि उसकी कृपा की एक झलक भी दिखाई दे दे तो हमारा अज्ञानरूपी अंधकार और जड़ता एक क्षण में नष्ट होकर हमारा शरीर ही जगमगाने लगे।"

एक बन्दा—"हम दाता की चाह पैदा करने की हजार कोशिश करते हैं किन्तु मन उधर जाता ही नहीं। बैठते हैं तो मन वहीं नीची बातों में चला जाता है।"

श्री दाता—"आप दाता की चाह के लिये तो निरी बातें बनाते हो। चाह पैदा होते ही तो सब कुछ हो जाता है। आप ही बताओ आपको दुनिया की किस वस्तु की चाह थी और वह आपको

न मिली हो। आपने जन्म ग्रहण करने की इच्छा की तो शरीर धारण कर आ गये। आपको ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई तो आप ज्ञानवान बन गये। बड़े होने की इच्छा हुई तो आप बड़े बन गये। विवाह करने की इच्छा हुई तो आपने विवाह कर लिया। आपने सन्तति पैदा करने की इच्छा की तो आपको सन्तति हो गई। आपने धन कमाने की इच्छा की तो आप धनी हो गये। ऐसी कौनसी इच्छा है जो आपकी पूरी न हुई हो। आपने जो चाहा वही पाया। आप यदि मृत्यु की इच्छा कर लो तो वह भी मिल जावे। कहने का मतलब है कि दाता तो इतना दयालु है कि आपने जो भी इच्छा की उसको उसने पूरी की। फिर यह कैसे हो सकता है कि आप उसकी इच्छा करो और वह न मिले। चाह तो आप उसकी पैदा करते नही और झूँठी बाते करते हैं, इससे क्या होने–जानेका। आप अपनी कथनी और करनी को एक कर देखो। दीन भाव धारण कर उसकी ओर लगन लगाओ। अपना एक पल भी यो ही न गवाते हुए, उसका स्मरण करो। फिर देखो आपका मन कहाँ जाता है। आप काम कुछ भी क्यों न करो! चाहे आप नौकरी करो, चाहे आप व्यापार करो। आप कोई भी काम क्यो न करो किन्तु काम करते हुए उसको याद रखो। अरे! काम सब उसके हैं, अतः उसके काम समझ कर ही करो। फिर देखो उसकी याद रहती है या नहीं। आप कर सब सकते हो किन्तु करना नही चाहते हो। आपकी इस हठधर्मी पर दाता करे तो क्या करे।"

"प्रेम का पन्थ ही निराला है। और सब बात कहने में आ जाती है किन्तु प्रेम कहने में नही आता है। प्रेम के लिये कोई कानून कायदा नही है। किसी भी प्रकार का कोई कर्म-धर्म उसके लागू नही होता। एक स्त्री अपने पति से प्रेम करती है। ऐसा करने में वह कौनसे धर्म का पालन करेगी जिससे उसका पति प्रसन्न हो? वहाँ तो पति की चाह ही पत्नी की चाह है। यदि पत्नी अपने पति को प्रेम प्रदर्शित करने बैठ जावे तो क्या होगा, यह बात आप जानते हैं? पति उसको कुल्टा कहकर दुत्कार देगा। प्रेम प्रकट करने पर दूषित होता है। प्रेम तो गुप्त ही रहता है। वह प्रेमी

और प्रेमिका के जानने की ही बात होती है। प्रेमिका जब प्रेमी से प्रेम करती है तो वह नष्ट हो जाती है। उसका कोई अस्तित्व ही नही रहता। वहाँ तो दोनो का एकाकार हो जाता है। वहाँ तो प्रेमिका ही प्रमी बन जाता है और प्रेमी प्रेमिका। जब आप दाता के प्रेम के नशे में चूर हो जाओगे तो आप नही रहोगे। नशा लोग क्यो करते है? इसीलिये करते है कि नशे में चूर होकर वह अपने आप को भूल जाय। आप भी दाता का नशा कर अपने आपको भूल जाओ। आप उससे प्रम करो जिससे आपका अस्तित्व ही न रह। आप स्वयं दाता का स्वरूप ही हो जावोगे। प्रेम प्रेम है। उद्धव जी को ज्ञान और योग का अभिमान था। अब उन्होने गोपियो में प्रेम का स्वरूप देखा तो वे स्वय ही प्रममय हो गये। गोपियो के सन्मुख वे ज्ञान और योग को ही भुला बैठे। ज्ञान और योग को क्या, वे अपने आप को ही भुला बैठे।"

"पक्षी अण्डा देता है। आपने कभी देखा है कि बच्चा अण्डे से बाहर कैसे आता है? क्या पक्षी अण्डे को फोड कर बच्चे को बाहर निकालता है? नही! यदि वह अण्डे को फोड कर बच्चे को बाहर निकालन की चेष्टा करे तो उसके हाथ कुछ आने का नही है। वह तो चुपचाप धैर्य धारण कर अण्डे पर बैठता मात्र है। केवल सेता है। सेने से ही स्वय बच्चा अण्डा फोड बाहर आता है। इसी प्रकार प्रेम स्वय ही अकुरित होता है। आप उसे सेते रहो! फल अपने आप निकलेगा। ससार रूपी सागर अथाह है। इसमें जीव का क्या पता चले। एक निस्सहाय जीव इस अपार ससार–सागर को क्या पार कर सकता है! किन्तु महर है दाता की। उसके सम्बल से एक क्या एसे अनक समुद्र आसानी से हसते हसते–पार किये जा सकते है। एसे दयालु दाता का सबल ही हमारे लिये सब कुछ है। उसकी सहायता के बिना हमारा साधारण जीव कर ही क्या सकता है? *बस केवल उसका ही सहारा और उसका ही बल है। उसे ही* पकडे रहो। उसकी महर रूपी रस्सी से इस भयकर गहरे कूप से आप आसानी से बाहर आ जाओगे।"

एक बन्दा···"क्या खान-पान का भी हमारे विचारो पर प्रभाव पडता है ?

श्री दाता——"हाँ ! खान-पान का भी ध्यान रखना जरूरी है। यह गहरा विज्ञान है। खान-पान हमारी मन बुद्धि पर असर डालता है इसीलिये तो महापुरूष सात्विक अन्न एव सात्विक वस्तुएँ ग्रहण करने को कहते हैं। भोजन भी तीन प्रकार का होता है। सात्विक, राजसी और तामसी। प्रत्येक वस्तु अपने गुण को साथ लेकर चलती है। सात्विक भोजन सतोगुण को बढाता है। राजसी भोजन से रजो गुण की वृद्धि होती है और तामसी भोजन तमो गुण को पैदा करता है। जो दाता के मार्ग का साधक है उसे राजसी एव तामसी दोनो ही प्रकार के भोजनो से बचना चाहिये। उन्हे सात्विक भोजन ही करना चाहिये। ऐसा करने से उनके इन्द्रियाँ और वृत्तियाँ उत्तेजित नही होगी, मन मे विकार पैदा नही होगा। भोजन मन को गति देने का साधन भी है अत जैसा भोजन होगा वैसी ही मन की गति होगी। मन निर्विकारी रहे, इसके लिये जरूरी है कि ऐसी ही वस्तुएँ ग्रहण करनी चाहिये जिससे विकार पैदा न हो। सबसे बडी वस्तु है भाव। महापुरुष ऐसा कहते हैं कि भाव भोजन के गुणो को बदल देता है। उसमे अमृत रस घोल देता है। भोजन में गुण तो होते ही हैं, किन्तु साथ में यह भी देखना चाहिये कि उन वस्तुओ को प्राप्त कैसे व कहाँ से किया गया है ? दूषित तरीको से प्राप्त किया हुआ भोजन बडा कष्ट-दायक होता है। गुरुनानक देव जी का उदाहरण जो आपने सुना होगा। एक खत्री ने उन्हे भोजन का निमत्रण दिया, जिसको उन्होने अस्वीकार कर दिया। खत्री भक्त उनके चरणो में श्रद्धा रखता था। नानक देव के इनकार कर देने पर वह दुःखी हुआ और बार-बार आग्रह करने लगा। उसे समझाया गया फिर भी वह नही माना तब नानक देव ने उसे भोजन लाने को कहा। वह भोजन लेकर आ गया। ठीक उसी समय एक गरीब भक्त भी सूखी रोटी लेकर आया। नानक देव ने एक हाथ मे उस गरीब की रोटी और दूसरे हाथ में उस खत्री का लाया हुआ भोजन लिया और उनके सामने ही दबाया।

गरीब भक्त की लाई हुई रोटी से दूध टपक पडा जब कि उस खत्री के लाये हुए भोजन से खून की बून्दे निकली। सभी आवाक होकर देखने लगे। गरीब का अन्न शोषण का अन्न नही था। वह तो उसके परिश्रम का अन्न था। खत्री का अन्न अन्य व्यक्तियो के शोषण से प्राप्त किया हुआ था। अत. यह बडा गूढ रहस्य है। इतना ही याद रखो कि यदि आप दाता की अनुभूति चाहने के लिये साधक बनते है तो दूषित और तामसी अन्न से बचना चाहिये। सबसे बडी एक बात याद रखो कि जो कुछ आप खाना चाहते हो तो पहले उसको बडे प्रेम भाव से दाता के अर्पण कीजिये और फिर उसे उसका प्रसाद समझ ग्रहण कीजिये। ऐसा करने से आप जो कुछ ग्रहण कर रहे हैं वह लाभप्रद होगा। उससे आपको सन्तुष्टि मिलेगी। बस उस मार्ग पर उसका आधार लेकर चलते रहो।"

एक बन्दा—'मार्ग जानते तो है नही, फिर चलते कैसे रहे ?"

श्रीदाता—"आप लोग जानते सब कुछ हैं किन्तु बहकाने की बात करते हैं। कौन कहता है कि आप मार्ग नही जानते हैं। क्या आप अपने घर का मार्ग नही जानते ? आप में से कौन ऐसा है जो घर का रास्ता न जानता है ? जानते सब के सब हैं, किन्तु हमें भरमाने के लिये कह देते हो कि मार्ग नही जानते। आप लोग भूख लगने पर भोजन कैसे कर लेते हो ? एक बच्चा पैदा होते ही माँ का दूध कैसे पीने लगता है ? आवश्यकता होने पर आप काम कैसे करने लग जाते है ? जानते सब है किन्तु कहने को कह देते हैं कि दाता तक पहुँचने का मार्ग नही जानते। आप इसलिये नही जानते हो, क्योंकि इसकी आपको आवश्यकता नही है। एक गर्भवती स्त्री ने अपनी सास से कहा कि सासजी उसके बच्चा पैदा हो उस वक्त उसे जगा देना। सास हँसती हुई बोली कि इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नही। वह उसको क्या जगावेगी, वह दुनिया को न जगा दे। *आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आपको जब दाता* की आवश्यकता होगी तब आप स्वय मार्ग जान जावेगे।"

"आबू की बात है। आबू पर रमना हुआ। वहाँ म्हाकाराम

प्रति दिन नदी झील पर स्नान करने जाया करता था। रास्ते में अनेक बाबा लोग ठहरे हुए थे। म्हाका (मेरा) राम न किसी से बोलता, न बात करता, चुपचाप स्नान कर वापिस आ जाता था। यह बात उन बाबा लोगो को अच्छी नही लगी। उन्होने सोचा कि यह बाबा बडा अजीब है। न बोलता है और न नमस्कार करता है। रोज का रोज इधर से स्नान कर जाता है। उनमें से एक ने दूसरे से कहा कि कंकरी मारकर तो देखो। एक अन्य बाबा जो इस बात को सुन रहा था, उसने मना किया किन्तु पहला बाबा नही माना। एक दिन साहस कर उस बाबा ने पूछ ही लिया कि बाबा कहाँ से आये हो। म्हाका (मेरा) राम ने बडी नम्रता से कहा कि यही तो वह नही जानता है कि वह कहां से आया है और कहां जाना है। वे जानते हो तो उसे बता दे। यह उत्तर सुन कर पूछने वाला चुप हो गया। रास्ता सब जानते हैं। आपका मन बोल देता हैं आप लोगो को उसकी आवश्यक्ता तो हो। आप लोग उसकी चाह तो करो। उसकी चाह करना ही समर्पण करना है। उसकी चाह होने पर अन्य काम छोडने की बात तो क्या आप संसार को छोड़ने को भी तैयार हो जावोगे। उसके सामने छल-छिद्र और प्रपच नही चलते। वहां तो जितना सरल होकर रहा जावेगा, उतना ही लाभ मिलेगा। जितने आप सरल होवोगे, उतना ही आपका मार्ग सरल होगा। जितने आपके भाव शुद्ध होगें, उतना ही अधिक आपका काम बनेगा। जीव जीव पर आधारित है। सांप मेंढक को खाता है, मोर और नेवला साँप को खाता है और मोर नेवले को अन्य खाते हैं। कहा भी है कि जीवा जीवस्य भोजनम। बच्चा होते ही माँ के स्तनो में दूध आ जाता है माँ का दूध पीना, माँ का शोषण ही तो है किन्तु वहाँ शोषण के भाव नही हैं। वहा तो उदर पूर्ति के भाव हैं। अतः आपके मार्ग में कर्मो का प्रश्न ही नही रहेगा, यदि आपके भाव शुद्ध हैं। मन बडा चंचल है, किन्तु इसे दाता की ओर लगाना ही पडेगा। घर में जाने के लिये अर्थात् अपने पिया की प्राप्ति के लिये सब कुछ करना ही पडेगा। आचार विचार वहाँ सब समाप्त होते हैं। कर्म की वहाँ कोई गिनती नही। वहा तो भाव ही भाव हैं।

हमारा पिया तो भावो का भूखा है। आप प्रेम भाव दिखाओ कि वह अपना हुआ।"

बन्दा----"यही तो बात है कि मन बडा चचल है वह मानता ही नही। हम करे भी तो क्या करे ?"

श्री दाता---"हां। मन चचल है और वह रहेगा। चचल होना इसका गुण है। जिसमें इस को रस आता है, उसमें वह लग जाता है, और जिसमें रस को रस नही आता, उसमें वह नही लगता है। आपको जिसकी आवश्यक्ता होती है, उसमे इसे लगा देते हो। जिसमें आप लगाते हो, उसमें वह लग जाता है। यदि आपका मन दाता के मार्ग में नही लगता, इस का स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि दाता की आपको आवश्यकता ही नही है। आवश्यक्ता नही है, इसीलिये तो वह नही लग रहा है। दाता के बिना आपका काम आसानी से चल रहा है, इसलिये आपको उसकी जरूरत नही है। जिस दिन आपको यह अनुभव होने लगेगा कि दाता आपके लिये जरूरी है और उसके बिना यह जीवन ही सार हीन है, उस दिन देखो, यह मन आपको छोड कर कही नही जावेगा। आप दाता के चरणों में अपने आपको समर्पण करके तो देखो। इधर समर्पण किया नही कि आपका काम बना नही। जिस तरह इस समय सब काम अपने घर के लिये हैं उसी तरह आपके सभी काम उस घर के अर्थात् दाता के समझलो, तो फिर आपको कुछ भी नही करना पडेगा। आपका मन ही आपके लिये सब कुछ कर देगा।"

"आप लोगो के बच्चे हैं। आप लोगो ने उन बच्चो को अपना मान रखा है। आप उनके लिये पूरी तरह से बिक गये हो। उनके लिये सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हो, उसी तरह उस घर को भी अपना घर समझ लो। ज्यो ही आप उस घर को पराया न समझ अपना मान लोगे उसी दिन आपका काम बन जावेगा। तब आप दाता को अपने ही घर में देख सकोगे। घर हैं ही क्या, वह तो आपके बाल बाल में दिखाई देने लगेगा।"

"बाहर आडम्बर हो सकता है किन्तु घर में तो कोई आडम्बर होना नही। बाहर आप ड्रेस पहनकर जाते हैं, किन्तु घर पर ड्रेस को उतार कर रख देते हैं। घर में तो आप मनमाने ढग से रहते हैं। वहाँ किसी से किसी प्रकार का परदा नही है। दाता के घर में दाता को भी वे परदे पाओगे। घर में तो आप अनेक हैं, दाता के घर में जाने पर तो आप व दाता ही होगे। वहाँ फिर मौज ही मौज है। वहाँ तो जो कुछ है वह पिया का है वहाँ तो जो भी रग है, उसके हैं और जो भी कर्म हैं, उसके है। किसी ने एक सुन्दरी से पूछा कि क्या उसने पिया को देखा है या देखना चाहती है। यदि उसने उसे देख ही लिया हो और उसका पिया एक ही हो तो फिर उसने इतने रग क्यो पहन रखे हैं। सीधा सा उत्तर था। सभी रग उसके हैं। ऐसा कौनसा रग है जो उसका न हो। सभी रग उसके हैं और वह सभी रंगो से परे है। लोग कहते हैं कि काला रग अच्छा नही है किन्तु उसने तो काले रग को आँख में डाल कर देखा है। वह अच्छी तरह जानती है कि यह काला रग भी उसी का है। जो पिया का बन गया फिर पिया की सारी वस्तुएँ उसकी हो गई। अब मनमाने की बात।

दाख–छुहारा छोड कर विष कीडा विष खात।

० ० ०

साधना एक की

दिनांक २४-३-८१ को प्रातः १ बजे का समय था। कई लोग भवानी भवन में प्रात. से ही आ बैठे। कुछ समय बाद श्री दाता कमरे से बाहर पधारे और आंगन के एक किनारे पर बैठ गये। कुछ समय तक मूक सत्संग चलता रहा। कुछ समय बाद एक सज्जन ने पूछा।

सज्जन——"दाता! आप यह बतावे कि सत्गुरु कौन है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है?"

श्री दाता——"सत् नाम सत्य अर्थात अविनाशी का है। गु कहते हैं अन्धकार को और रू कहते हैं प्रकाश को। इस अंधकार में जो अविनाशी प्रकाश है वही सतगुरू है।" कुछ देर रुक कर फिर फरमाया, "सतगुरु महान है। वह उस विशाल समुद्र के समान है जिसका कोई आरपार नहीं। सत्गुरु को पहिचानने और उसके भेद को पाने को किसी का भी सामर्थ्य नहीं है। वेद पुराण भी उसके बारे में कुछ नहीं बता सके। उन्होंने भी 'नेति' 'नेति' कहकर छुटकारा पा लिया। ऐसे महान् सत्गुरु हैं। सतगुरु सत्यस्वरूप, पूर्ण अजर, अमर, अविनाशी एवं सर्व समर्थ हैं। वही विष्णु, वही ब्रह्मा और वही शिव है। वह पूरे ब्रह्माण्ड में छाया हुआ है। इस विश्व का एक मात्र सतगुरु ही आधार है। सतगुरु एक ही है। वही सतगुरु जब शिष्य का हित करना होता है तो गुरु का रूप धारण कर अवतरित होता है। दृढ निश्चय और सच्चे प्रेम से जो बन्दा गुरु के चरणों में अपने आप को समर्पित कर देता है वह सब कुछ पा जाता है। गुरू ही आधार है क्योंकि वह प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष का आधार संभव नहीं क्योंकि वहाँ टिकाव नहीं। गुरु ही ज्ञान का दाता है। वही जीव के अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर उसमें ज्ञान का दीप जलाता है। उसकी कृपा से ही ज्ञान का नेत्र खुलता है और अन्तर्ज्योति जागृत होती है। आप यह चाहते हैं कि

शहर में कहीं भी अन्धेरा न हो। रात्रि का समय है और आप कहीं भी अन्धेरा देखना नही चाहते। क्या यह सम्भव हो सकता है? क्या आपकी यह इच्छा पूरी हो सकती है? आप निराश होकर कह देंगे कि यह सम्भव नही है किन्तु यह साधारण सी बात है। आप हाथ में टार्च ले लीजिये और सर्वत्र फिर जाइये। आपको सर्वत्र उजाला ही उजाला नजर आ जावेगा। आपने अपने हाथ में टार्च या लाइट पकडो और आपका काम हो गया, उसी तरह आप सत्गुरु को पकड ले, आपका काम पूरा हो जावेगा आपका शरीर रूपी शहर रोशनी से जगमगाने लगेगा। कहा है --

एकही साध सब सध, सब साधे सब जाय।

एक सत्गुरु की साधना करने से सभी साधना हो जाती है, किन्तु यदि सत्गुरु को छोड कण-कण की साधना करने लगोगे तो आपकी उस वेश्या के समान गति हो जावेगी जो 'जण जण का थोक राखती, वैश्या हो गई बांझ' अर्थात जिसके अनेक पति हैं। सत्गुरु की साधना न करने पर घर उजाड तमाशा देखोगे। अत एव मात्र गुरु की आराधना ही आपके जीवन को सफल बना सकती है। अतः सत्गुरु की प्राप्ति ही आपके जीवन का मूल उद्देश्य होना चाहिये। सत्गुरु कितना दयालु होता है यह तो आप जानते ही होंगे। कोई आदमी आपकी सेवा करता है। आपमें वह श्रद्धा रखता है और आपको सर्वेश्वर मानता है ऐसे आदमी के साथ आप कैसा वर्ताव करेंगे? मैं समझता हूँ आप उसे दुत्कारोगे नहीं। एक पत्नी अपने पति को सब कुछ मान समर्पण कर देती है तो पति उसके सभी भार को अपने ऊपर ले लेता है। भार ही नही लेता वरन् उसको स्वामिनी ही बना देता है। यही बात आप दाता के समक्ष कर देखो। छल-कपट रहित होकर आप अपना सब कुछ दाता के चरणों में समर्पित कर दो और उसे अपने पिया के रूप में स्वीकार कर लो। आपका कुछ भी न रखो और अपना जो कुछ है वह पिया को बता दो फिर देखो, पिया आप पर कृपा करता है या नही। जिस प्रकार एक पिता अपने बच्चे की हर प्रकार स सहायता करता है उसी प्रकार दाता

भी अपने भक्त की सहायता करता है। वह अपने से बढकर अपने भक्त को मानता है। सुना है भक्त भगवान से भी बडा है। कारण उसके माध्यम से भगवान के दर्शन हो जाते हैं।'

"सतुगुरु वास्तव म सतगुरु है। वह सब कुछ करता है फिर भी परदे में रहता है। कठपुतली वाले की तरह सबको नाच नचाता है किन्तु रहता ओट में ही है। जीव समझ बैठता है कि नाच स्वय का है। बस यही वह गलती कर बैठता है और फिर उसके लिये यह गलती बडी महगी सिद्ध होती है।"

'सरकार सब कुछ व्यवस्था कर रही है किन्तु सरकार को किसी ने नही देखा है। सरकारी स्कूलो में आप पढते हैं, हम पढते है और अन्य सब लोग पढते हैं। सरकार पढा रही है किन्तु उस पढाने वाली सरकार को किसी ने नहीं देखा है। यह काया रूपी कालेज है। मन रूपी मास्टर है और इन्द्रिय रूप लडके हैं। पढाई हो रही है। व्यवस्था करने वाले ओट में हैं। सतगुरु ही काम का करने वाला है। इस रहस्य को समझने पर ही यह रहस्य खुलता है। हमारा गर्व तब ही नष्ट होता है, जब हमें यह मालूम होता है कि जिस काम का कर्ता हम अपने आप का समझ रहे हैं, वह गलत है। कर्ता-घर्ता हम न होकर कोई अन्य है। हम उस अन्य की ओर बढते हैं। हमारी जिज्ञासा बढती है। हमारी चाह बढती है और उस ओर बढने की कोशिश करते हैं। जब हम उस ओर झुक्त हैं तो रस मिलने लगता है। उसकी झलक मिलते ही हम जगमगा जाते हैं और हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। यही छोटी सी बात है। इस छोटी सी बात को जो कर लेता है वह मस्त हो जाता है।"

"कोई यह सोच ले कि इस मार्ग म तो सुख ही सुख है तो उसका यह सोचना गलत होगा। इस मार्ग में तो बात-बात में मरना पडता है। मीराबाई के जीवन का देखो। उसे कितना दु ख देखना पडा। उसे जहर तक पीना पडा। बाहर के व्यक्तियों ने दु ख दिया सो ठीक, किन्तु स्वय कृष्ण ने भी उसे कम कष्ट नही दिया।

उसके वियोग में वह झुर-झुर कर मरती रही। वियोग की अग्नि में जब सारा शरीर ही झुलस गया, तब जाकर पिया की प्राप्ति हुई। अत्यधिक दुःख देखते हुए भी जब वह उसे पकडे रही, तभी जाकर महर हुई। एक मस्ताने को पूछा गया कि उसने दाता को देखा है या नही उसने सीधा सा उत्तर दिया। वहाँ कुछ नहीं है। वहाँ तो रोना सिसकना और आहें भरना है। वियोग की अग्नि जब परा-काष्टा पर पहुँचती है तब ही सयोग की घडी आती है। अतः जो भी बन्दा उसको चाह करता है अपने भावो को उसके अनुकूल कर ले। यह मन रूपी बच्चा ऊधम मचाता है। इसकी गति उस ओर कर दो तो इसकी गति शान्त हो जावेगी। भौतिकवादी जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब अनित्य हैं और बनती-बिगडती है। अतः ऐसी अनित्य वस्तुओं में मन लगाना हानिकारक है। सब कुछ काम करते हुए भी उसको मत भूलो। सासारिक वस्तुओं को प्रधानता न देकर केवल उसी को प्रधानता दो।"

"मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में रहना होता है। समाज के प्राणियो के साथ व्यवहार भी करना पडता है। बडे आदमियो के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना भी उसके लिये आवश्यक है। समाज में रहने के लिये अनुशासन जरूरी है। अनुशासन में रह कर ही मनुष्य अपने में मानवोचित गुणो को ला सकता है। अनुशासन मे रह कर वह सच्चा मनुष्य बन सकता है। दाता के मार्ग में भी अनुशासन जरूरी है। बच्चे स्कूल में पढते हैं। वे मास्टर के अनुशासन में नही रहेंगे तो वे प्राप्ति कैसे करेंगे। यदि बाँध नही लगाया जाय तो पानी सीमा में कैसे रहेगा? मानव को सीमा में रखने के लिये अनुशासन जरूरी है। आदेश और निर्देश का पालन करना ही अनुशासन है। बात मान लेना और नियत्रण मे रहना ही अनुशासन है। गुरु का आदेश सर्वोपरि है। शिष्य पर गुरु का प्रेम ही तब होता है जब शिष्य नियत्रण में रह कर गुरु के आदेशो का शत प्रतिशत पालन करे। आदेश पालन के बिना समर्पण नही। जो अपने गर्व में रहता हुआ गुरु का निरादर करता है उसके समान अधम इस ससार में अन्य कोई है ही नहीं। एक कवि ने लिखा है—

जड़ अग्नि निशि दिन जरे, गुरु से चाहे मान।
तिन को यम न्योता दिये, हाँ हमार महमान ॥

जिन प्राणी में अहंकार की भावना रहती है वह प्राणी अन्य लोगों को हीन दृष्टि से देखता है। ऐसे लोग अपने आप को सबसे बड़े मानते हैं। अपने से बड़ों से भी मान की आशा रखते हैं। ऐसे लोग मूढ़ ही होते हैं उन्हें सदा ही जड़ता का निमंत्रण रहता है। ऐसे लोग अहंकार के वश में होने से अज्ञानी ही बने रहते हैं। ज्ञान प्राप्ति का अवसर उन्हें मिलता ही नहीं है। उनके लिये ज्ञान का मार्ग सदा बन्द ही रहता है। गुरु का आदेश पालन हमारे अहंकार को नष्ट कर देता है। वह हमें नम्र और विनयशील बना देता है। जब हमारा अहंकार नष्ट होता है तभी हम गुरु का महत्त्व दिखाई देता है और गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति बढ़ती है तथा समर्पण की भावना जागृत होती है।"

"यहाँ जितनी भी माया-बाबा बैठी है और जितने भी लोग बैठे हैं उन सब में उसी दीनबन्धु की मूर्ति है। कमी है तो इतनी सी है कि उस मूर्ति को देखने की भूख हमें अभी लगी नहीं है। हमें यदि जरूरत हो तो वह भूख लग सकती है। इस शरीररूपी परदे में वही छिप कर बैठा है। म्हारा (मेरा) राम सदैव उसी को नमन करता है। उसके और हमारे बीच का परदा उठ जाना चाहिये। जो काई काच पर आ गई है वह साफ होनी चाहिये। निर्मल काच में आपकी मूर्ति में कुछ भी फरक दिखाई नहीं देगा। यदि काच मैला है तो हाथ फेरकर साफ कर दो, फिर आपका चेहरा साफ दिखाई देने लगेगा। आपका यह शरीर बड़ा पावन है। आपके इस शरीर में दोनों बातें विद्यमान हैं। आपके इस शरीर में दाता भी बैठे हैं क्योंकि आपका यह शरीर उसका पावन मन्दिर है। आपके शरीर में मल-मूत्र भी है। दोनों वस्तुएँ बराबर भरी पड़ी है। अब आपकी इच्छा है कि आप किसको देखना चाहते हैं और किसमें लिप्त होना चाहते हैं। मल-मूत्र में लिप्त होना चाहते हो तो आपकी मर्जी है। यह मल-मूत्र और इन्द्रियों के सुख आपको इस इन्द्र जाल

में ऐसा क्सा देगें कि उबरते ही नहीं बन पडगा। इसम बैठने के बाद, इसम से ज्यो ज्यो बाहर निकलने की चेष्टा करोगे, त्यो-त्यो दलदल के गहरे में फसते जाओगे। अन्त में उसी में नष्ट होना पडेगा। यदि आप दाता को देखना चाहते हो तो फिर मन मूल से विमुख होकर उसे देखो। उसको देखने स आपको आनन्द की अनुभूति होगी और वह आनन्द आपका स्वयं आनन्द होगा। अत आपना सारा ही प्रम उस पर उडल दो। आत होकर दीन वाणी से उसे पुकारो। उसके लिये अपने सचित आँसू बहाओ। वह आवेगा और जरूर आवगा। वह आपको गले लगा, गोदा में उठा लेगा और प्यार करेगा तथा आपको अपना लेगा। कितना सरल माग है। आपके पास जो कुछ है उसे उसको सौंप दो, और बदले म विश्व की सारी सम्पत्ति ले लो। कैसा लाभप्रद सौदा है। आपकी जैसी मर्जी है। जो चाहो सो करो। हम तो कहना था सो कह दिया। मानना और न मानना तुम्हारे हाथ म है।'

० ० ०

दाता की इच्छा ही सर्वोपरि

डूगरपुर में सीमलवाडे के पास शीतल गाँव में डामोर गोत्रवालो के धर्मगुरु श्री गेमाजी रहते हैं। उन्होने दाता के दर्शनो की इच्छा की। खाण्डश्वर महादेव जी सीमलवाडा के निकट ही बात्रक नदी के किनारे पर स्थित है, वहा के महन्त रामदासजी और मथुरामदासजी ने भी दाता को वहाँ पधारने की अर्ज कराई, अत दाता अपने कुछ भक्तो को साथ लेकर बस द्वारा दिनाक २४-३-८१ को शाम के ४-४५ पर उदयपुर से रवाना हुए। उदयपुर से कुछ आगे बढते ही कीर्तन प्रारभ हो गया। '*श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवा*', श्रीकृष्ण चैतन्यप्रभु नित्यानन्दा, हरे दाता हरे राम राधे गोविन्दा' और भज गोविन्द बालमुकुन्द परमानन्दम् हरे हरे' का क्रमश कीर्तन हुआ। कीर्तन इतना जोरदार हुआ कि वहाँ विद्यमान लोगो ने बताया कि उन्होने अपने जोवन में ऐसा कीर्तन कभी नही देखा। श्री दाता ही नही, अनेक भक्त लोग भी भाव-विभोर होकर कीर्तन कर रहे थे। अनेक भावमग्न होकर बस में ही उछलकूद कर रहे थे। कई भक्तो के आनन्दाश्रु बह रहे थे। बस डूगरपुर पार कर सीमलवाड के पास पहुँची तब तक लोगो को कुछ ध्यान ही नही था। वे कीर्तन में इतने मस्त थे। सीमलवाडे के पास पहुँचने-पहुँचते बस एक गहरे गर्त में गिरते-गिरते बची। गिर ही जाती। किन्तु ऐसा लगा कि किसी ने बस को हाथ पर उठा सडक पर रख दिया हो। रात्रि को नौ बजे के लगभग महादेवजी के स्थान पर पहुँचे। वहाँ भी रात्रि भर भजन-कीर्तन होता रहा। प्रात ही श्री दाता नदी किनारे जा बैठे। मन्दिर के बाबा ने प्रसाद बना लिया था। स्नानोपरान्त श्री दाता ने प्रस्थान की आज्ञा दे दी। इस पर वहाँ के महन्तजी कुछ असन्तुष्ट हो गये। उन्होने सब लोगो के लिये प्रसाद बनवा लिया था। वे चाहते थे कि दाता सहित सभी लोग वही प्रसाद पावे। श्री दाता इस प्रकार वही भोजन करते नही। उन्हें मालूम भी नही था अतः चलने की आज्ञा दे दो। बाबा का नाराज होना भी स्वाभाविक ही था। उन्होंने श्री दाता से वही ठहरने की प्रार्थना की।

श्री रामदासजी---"भगवन् ! ऐसा नही हो सकता । आपको यही विराजना होगा ।"

श्री दाता---"म्हाका (मेरा) राम तो दाता का एक साधारण सा किंकर हूँ । आप बडे हैं । मैं तो गुलाम हूँ । गुलाम के हाथ म क्या है । उसके हाथ में तो हुक्म का पालन ही है । मेरे दाता जो भी हुक्म देता है उसका पालन करना ही पडता है । आपने प्रसाद बना लिया तो बडी कृपा की, किन्तु प्रसाद लेने वाले अनेक हैं । कण-कण पर नाम लिखा है । जिसके नाम का कण है वह लेगा ही । पराये कण को हम कैसे ले सकते हैं । आपकी महर हुई सो आपके दर्शन हो गय । अब हमें जाने की आज्ञा दीजिय ।

बहता पानी निर्मल, भरिया गन्दला होय ।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥

पानी बहता रहता है तभी तक निर्मल रहता है । यदि बहना रुक कर भरा रह जाय तो गन्दला हो जाता है । गन्दले पानी को कोई नही चाहता । उसी तरह साधु को भी एक स्थान पर नही रहना चाहिये । रमते रहने में ही मजा है । किसी प्रकार का कोई कलक रमते साधु के नही लगता है । जितने समय तक उद्देश्य की पूर्ति नही होती है तभी तक साधु को ठहरना चाहिय । हम तो साधु नही हैं, भोगी है । भोगी का काम सन्तो के दर्शन करना है, उनकी सेवा करना है । सन्तो को कष्ट देना उनका काम नही है । आपको हम लोगो ने रात भर कष्ट दिया, यह भी कम अपराध नही किया है । आपके दैनिक कार्य में बाधा ही डाली है किन्तु मजबूरी थी । अब अधिक ठहरने की मेरे दाता की आज्ञा नही है अत हम लोग जाने की आज्ञा चाहते हैं । भोजन करना इस गुलाम के हाथ में नही है । बन्दे के हाथ में क्या है ? जो कुछ है, दाता के हाथ में है । दाता की आज्ञा के बिना कोई कुछ नही कर सकता । एक पत्ता भी तो उसकी इच्छा के बिना नही हिल सकता है ।"

"म्हाका (मेरा) राम वृन्दावन गया । जयपुर वाले साथ थे ।

लगभग चालीस-पचास लोग थे। एक दिन इन्होने बाँके बिहारी जी के मन्दिर में प्रसाद लेने का निश्चय किया। लगभग आठ सौ रुपये भोजन के लिये जमा कराये। प्रसाद तैयार होने पर सभी लोग वहाँ पहुँचे। वहाँ जाने पर भोजन करने का मन ही नही हुआ। बडा आश्चर्य हुआ। बाँके बिहारी जी का प्रसाद है, और मना कर रहे हैं। लोगो ने बडा आग्रह किया किन्तु मजबूरी थी। म्हाका (मेरा) राम ने भोजन नही किया। वहाँ से जो प्रसाद ये लोग लाये उसको भी ग्रहण नही किया। जिस प्रकार वहाँ के प्रसाद की आज्ञा नही हुई वैसे ही ऐसा लग रहा है कि यहाँ के प्रसाद की भी आज्ञा नही है, अत आप लोगो को नाराज नहीं होना चाहिये। हम तो दाता की कठपुतली हैं। जैसा वह नाच नचावे, नाचना ही पडता है। आप भी तो दाता के आश्रय यहाँ बैठे हैं। बोलो! दाता आपको रखेगा वैसे ही रहोगे या अपने मन की चलाओगे? दाता के सामने अपने मन की थोडे ही चलती है। मन की चलाने पर तो दाता के यहाँ एक क्षण भी नही ठहर सकते हैं। दाता हमें जैसा रखे वैसे रहना ही पडेगा। हाँ! ना! करने से काम नहीं चलता है। कोई नाराज हो तो भले ही हो। किसी के कहने से पिया की आज्ञा की अवहेलना थोडे ही की जाती है। एक पतिव्रता नारी को कह दिया जाय कि तुम पति की आज्ञा को मानना बन्द कर हमारी आज्ञा मानो। बोलो वह क्या करेगी। पति का कहना न मान कर आप लोगो का कहना मान ले तो क्या होगा? उसका जीवन ही नष्ट हो जावेगा। अत. हमें भी हमारे पिया की आज्ञा माननी ही पडेगी। हम तो आपसे भी यही कहेंगे कि आप भी अपने पिया की आज्ञा मानो।"

इस बात का श्री मधुरामदास जी पर बडा प्रभाव पड़ा। वे पानी-पानी हो गये। रोते हुए वे बोले।

श्री मधुरामदास जी---"भगवन्! आप प्रसाद को स्वीकार नही कर रहे हैं तो कोई बात नही किन्तु कुछ प्रसाद तो भक्तो में बाँट लेने दीजिये।"

श्री दाता ने ऐसा करने की आज्ञा दे दी। वे वहाँ से उठकर अन्यत्र जा बिराजे।

गढा ठाकुर श्री मानसिह जी एव उनका दल भी दाता के सामने आ खडा हुआ ।

श्री दाता---"आप फरमावे । आप क्या चाहते है ?"

ठाकुर ---'आपकी महर है । आपके दर्शन करने आये थे सो दर्शन हो गये ।"

श्री दाता---"दर्शन तो दाता के । म्हाको (मेरा) राम तो दाता के दरबार का एक कूकर है ।"

ठाकुर---"आप क्या हैं ? यह तो हमने अच्छी तरह से देख लिया है । रात्रि को आप पधारे तब भी यहाँ की सब गायें आपके पास आकर खडी हो गई थी । अभी भी जब आपके पधारने का समय आया तो देखिये सब की सब आपके दर्शनार्थ आ उपस्थित हुई । सभी किस तरह आपको देख रही है ! यही बताता है कि आप क्या हैं ?

श्री दाता---"यह तो इनका और आपका बडप्पन है ।"

ठाकुर---"हमें दु ख इसी बात का रहेगा कि आपका नाम और आपका कार्यक्रम सुनकर आस पास के गाँवो से अनेक लोग आ रहे हैं । कुछ समय बाद ही वे आ जावेगे । वे निराश होगे । हम उन्हे क्या कहेगे ।

श्री दाता---"कह देना कि वह तो यो ही था । वह यो ही चला गया ।"

श्री दाता भी हसने लगे और उपस्थित मण्डली भी हँसने लगी । कुछ ही देर में श्री दाता यहाँ के दोनो सन्तो का सम्मान कर और भेंट पूजा कर रवाना हो गये । वहाँ से सीधे शीतल गाँव में गोमाजी भक्त के यहाँ पहुँचे । गोमाजी ने अपने सभी कुटुम्ब के लोगो को साथ लेकर बडी भाव भक्ति से श्री दाता का और उनके भक्तो का स्वागत किया । उस दिन रग पचमी थी । श्री दाता को उन्होने

खूब होली खिलाई और खूब कृष्ण भक्ति के भजन सुनाये। वहाँ श्री दाता को जलपान की इच्छा हुई। जल का जो लोटा भरा था उसको तो गोमाजी ने दाता की पूजा में खर्च कर दिया था। उस पात्र में जल की दो-चार बून्दे मात्र रह गई थी। गोमाजी जल लाने दौड़े, किन्तु श्री दाता ने उन्हें रोक लिया और उसी पात्र के वे दो चार बूंदे ही लेकर उन्हें दाता के अर्पण कर प्रसाद रूप में पा लिया। धन्य भाग गोमाजी का। जिस प्रकार शबरी के बेर ग्रहण किये थे, उसी प्रकार गोमाजी के यहाँ का जल प्रसाद रूप में ग्रहण कर लिया। गोमाजी गदगद् होकर आंसू बहाते ही रहे। श्री दाता अपने भक्तों को लेकर कीर्तन बोलते हुए वहाँ से रवाना हो गये।

० ० ०

चरित्र की आवश्यकता

चैत्र माह की अमावस्या को फागोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर जयपुर, उदयपुर, डूगरपुर, अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, भोपाल, कोटा, भीलवाडा आदि अनेक स्थानो के भक्तजन उपस्थित हुए। खण्डेश्वर महादेव के महन्त श्री रामदासजी, श्री मधुराम दास जी, शीतल के श्री गोमाजी मय कुटुम्ब के और डाकोरजी के महन्तजी आदि सन्त भी उपस्थित हुए। दिनाक ४।४।८१ को सध्या समय श्री दाता, दाता निवास के बाहर विराजे हुए थे। अनेक भक्त जन श्री दाता के सन्मुख विराज रहे थे। होली के अवसर के भजन बोले जा रहे थे। एक बन्दे ने भजन गाया। भजन था :--

रसिया को नार बनाओ,
लहगा पहना के याकू चूदडी ओडारो,
याके मुखन गुलाल लगावो री, रसिया को
कजरा लगाके याके बिन्दिया लगावो,
या को नक बैसर पहना ओ री, रसिया को
कमर कर धनी, पावो में पायल,
याके हाथो में पहुँची डारो री, रसिया को
बाजो घग मृदग ढोल-ढ़ब,
याको ब्रज मण्डल में घुमावो री, रसिया को
इलरी, तिलरी और पचलरी,
याको बाजू बन्द पहनाओ री, रसिया को . .
नैना माके कजरा सारो,
याकी मोतियन माग भराओ री, रसिया को . .
सब सखियन मिल पकड ले आओ,
याको यशुमति आग नचाओ री, रसिया को .
नारायण प्रभु की छवि निरखो,
याको ठुमुक—ठुमुक नचाओ री ॥ रसिया को .

भजन के बाद बातचीत प्रारभ हुई।

वन्दा—"गोपियाँ भगवान कृष्ण को नचाती थी या भगवान कृष्ण गोपियों को नचाते थे ?"

श्री दाता—"नाचने व नचाने वाले सब दाता ही हैं। ये सब दाता के ही खेल हैं। जब भगवान उनमें बैठते थे तब वे नाचते थे और जब भगवान नचाते थे तो वे नाचती थी। वहाँ तो प्रेम की पराकाष्ठा थी। प्रेम में गोपियाँ तो कृष्ण थी और कृष्ण गोपियाँ। आपने अभी तो गाया है। गोपी दही बेचने निकली किन्तु बोलने क्या लगी ? —

> कोई श्याम मनोहर लोरी, सिर धरे मटकियाँ डोले।
> दधि को नाम विसर गई ग्वालिन, हरि लो, हरि लो, बोले।
> कृष्ण रूप छबि है ग्वालिन, और हि औरे बोले।
> मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चोरी भई बिन मोले॥

जब लकडी में आग का प्रवेश होता है तब वह लकडी नहीं रहती। वह भी आग ही हो जाती है। अब आप पूछोगे कि लकडी चमक रही है या आग। इसका जवाब आप ही दे लो। आप समझते हैं कि शराब में नशा है। यदि यह बात मान लें तो बोतल में शराब भरा रहता है। बोतल को नशा आना चाहिये। शराब को तो जब आप सेवन करोगे, तब ही तो नशा आवेगा। जब नशा आवेगा तो जो कुछ करेगा वह नशा ही तो करेगा। आप कहोगे कि यह आदमी नहीं बोल रहा है, यह तो इसमें का नशा बोल रहा है। जब गोपिया को भगवान का नशा चढ गया तो फिर उनसे जो कुछ करा रहा था वह वही नशा तो करा रहा था। राम कृष्ण परमहंस जी के गले में गलकण्ठ हो गया था और उन्हे खाने पीने में कष्ट होने लगा। लोग बडे दु:खी हुए। तब श्री राम कृष्ण देव ने यही कहा था कि जो सब खा रहे हैं वह सब वही तो खा रहे हैं। कितनी मार्मिक बात थी। यह सब भाव की बात है और भाव बनते हैं मन की गति से। मन की गति एक सी नही रहती। जब बैठे हैं, और पूर्ण समर्पण के भाव हैं तो हम उन्हे भगवान कह देंगे। किन्तु जब भाव नीचे होते हैं तो स्थिति दूसरी हो जाती है। जिस वक्त जैसे

भाव होते हैं, प्राणी वैसे ही बन जाते है । राम कृष्ण देव माँ (देवी) के सन्मुख आसन पर बैठते थे, तब जब उनके भाव ऊँचे होते तो कह देते थे कि वे ही तो माँ का रूप है अत. उनकी ही पूजा करो। और माँ की पूजा के लिये जो सामग्री आती थी वह सारी की सारी स्वय ही ग्रहण कर लेते थे । वे भाव जब समाप्त हो जाते तो कहते कि वे तो साधारण जीव हैं । यह सब भावो की बात है । भाव जैसी मन की गति होती है वैसे ही बन जाते हैं। गोपियो के भाव ही ऐसे थे कि भगवान को उनके लिय सब कुछ करना पडा ।"

"श्री राम, क्या बेर के भूखे थे जो शबरी के झूठे बेर खाने दौड पड़े ? ये तो शबरी के भाव थे जिसके कारण जगल में भगवान राम को जाकर शबरी को कुटिया में बैठना पडा । शबरी के झूठे बेर खाये तो क्या ? उस समय शबरी में वही (राम) तो थ । उन्होने ही शबरी में स्थित होकर बेरो की कोर काटी और वे ही राम बनकर सन्मुख बैठ बेर खाने लगे । श्रीकृष्ण विदुरजी के घर जाकर केले के छिलके खाने लगे। यह भी बडे प्रेम से और स्वाद लेकर। बलिहारी है दाता की । दाता की लीला को दाता ही जाने । हाँ ! एक बात जरूर है। दाता सब कुछ सहन कर लेता है किन्तु वह अपने भक्त का अपमान नही सहन कर सकता है । अहकार में आकर मतग ऋषि शबरी का अपमान कर बैठे । सभी ऋषियो के सामने पश्चाताप करना पडा । बडी लीला है लीलाधारी की । यह सब भावो की ही खेती है। एक बात का ध्यान रखो । 'देखा देखी साधे जोग, छीजे कामा बढे रोग ।' देखा देखी नही करना चाहिये । एक समय एक बन्दा दाता के यहाँ आया । वह जूते पहिने था । हमने उसके जूता को स्पर्श कर लिया । इस पर उसने उन जूतो को उतार कर सिर चढा लिया । उसने उनको पहिनना बन्द कर दिया । उससे पूछा गया तो बताया कि उनको दाता ने छू लिया है अत इन्हें अब पूजा में रखा जावेगा । हमने देखा यह अच्छी रही । उसको पास बुला हमने उसके चरणो को स्पर्श कर लिया और बोले कि अब इन चरणो को भी पूजा में रखदें । उसके बात चट से समझ में आ गई । उसके भाव अच्छे थे किन्तु मेरे दाता तो कण कण

में हैं। आप किस किस वस्तु का प्रयोग छोडेंगे। अत सोचना तो पडेगा ही। एक बन्दा सर्दी की वजह से गर्म कपडा पहनता है। उसकी सर्दी यदि नही जाती है तो वह ऊपर से कोट ओढ लेता है। सर्दी के हटने और गर्मी के आने पर भी यदि वह उस कोट को नही हटावे तो क्या होगा ? गर्मी के कारण उसकी हालत खराब न हो जावेगी कपडो के अन्दर वह घबरा जावेगा। अत जैसा अनुकूल हो वैसा ही करना चाहिये। एक व्यक्ति के लिये एक वस्तु अनुकूल है, वही वस्तु दूसरे के लिये प्रतिकूल हो सकती है। बैंगन एक को वायु कर सकता है तो दूसरे के लिये यह पथ्य सिद्ध हो सकता है। यह तो अपनी अपनी प्रकृति की बात है। अत एक व्यक्ति जो काम करता है वह दूसरा भी करे, ठीक नही है।"

"कर्म तो करना ही चाहिये। कर्म जरूरी है। यह पचतत्व का शरीर धारण किया, इसलिये इसको रखने के लिये कर्म तो करना ही पडेगा। कर्म आवश्यक है। किन्तु कर्म में ही उलझ जाना ठीक नही। कर्म के लिये कर्म करना ठीक नही। आवश्यकता को पूरी करने के लिये कर्म करना ठीक है। ब्राह्मणो ने क्या किया ? वे कर्म में ही उलझ गये अत उनका अलग ही कर्मकाण्ड बन गया। आपका नौकर आपसे ज्यादा काम करता है फिर भी वह आपका नौकर है। कर्म के रहस्य को समझकर ही कर्म करना चाहिये। कर्म को प्रधानता न देकर भावो को ही प्रधानता देनी होगी। एक व्यक्ति जिस वस्तु को देखता है, दूसरा व्यक्ति भी उसी वस्तु को देखता है किन्तु देखने देखने में फर्क है। दोनो ही अलग-अलग भाव से देख रहे हैं। दोनो के भाव समान नही। एक सुन्दर बालिका सडक पर जा रही है। उसको अनेक लोग देख रहे हैं। सडक पर चलने वाला साधु भी उसे देखता है तो अन्य लोग भी। एक व्यक्ति ने उस साधु को पूछ लिया। उसने कहा कि वह साधु होकर बालिका को देखता है। साधु ने जवाब दिया कि यह उसकी भूल है। वह न तो बालिका को देख रहा है और न उस बालिका में भरे हुए मल-मूत्र को देख रहा है। वह तो उस कारीगर की कारीगरी को देख रहा है। उसने कितना सुन्दर नमूना अपने साचे मे ढाला है। उसने उस व्यक्ति को

को बताया कि वह विषय वासना से युक्त है इसलिये उसे तो केवल मल-मूत्र ही दिखाई दे रहा है। यह भावना की ही बात है। आप अपने भावों को शुद्ध रखो फिर मजे से अपना काम करते रहो। इन्द्रिया सब अपना काम करती रहें। वे तो करेंगी ही किन्तु भावों के शुद्ध होने पर आप कर्म बन्धन में नहीं बधोगे। आप माला जपो या जप-तप करो, चाहे आप उपासना करो या आराधना करो, आपके भाव ही प्रधान होंगे। कबीर जी ने कहा है।

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मन का छोड दे, मन का मन का फेर॥"

एक बन्दा : "भगवन्! आध्यात्मिक विषय मे चरित्र की क्या आवश्यकता है? दाता के मार्ग में चरित्र कहां बाधा डालता है?"

श्री दाता : "यह प्रश्न आप हमें न पूछ कर हमारी माई अर्थात् आपकी पत्नी को पूछा होता तो अच्छा रहता। आपको वह पूर्ण रूप से ही चाहती होगी। अब आप ही बतावे कि आपकी प्राप्ति में उसके लिये चरित्र की कोई आवश्यकता है या नहीं? यदि वह असत्य भाषी, चोरी करने वाली और चरित्रहीन है तो आप पर क्या प्रभाव पडेगा। यदि वह साध्वी है, पतिव्रता है, विकार रहित और शुद्ध विचार वाली है तो आपका कैसा प्रभाव पडेगा। आप किस प्रकार की पत्नी को पसन्द करेंगे। यह सही है कि कोई भी पत्नी गन्दगी धारण कर, गन्दे वस्त्र धारण कर यदि पति के पास जावेगी, तो पति उसे पसन्द नही करेगा। वह प्यार करने के स्थान पर उससे घृणा करने लगेगा। आप पूजा करने बैठते हैं तो शरीर और मन की सफाई कर उन्हे शुद्ध कर के ही तो बैठते हैं। शरीर और मन की शुद्धि से ही तो मन लगता है। आप पूजा करते वक्त शरीर तो साफ करते हो हैं किन्तु इत्र, अगरबती और सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग कर वातावरण तक को सुन्दर व सुगन्धित बनाते हो। यह सब इसीलिये तो करते हो कि मन पवित्रता एव सुन्दर वातावरण को अधिक पसन्द करता है। गन्दगी से सभी को घृणा है। हर प्राणी गन्दगी के बजाय पवित्रता में दाता को देखना अधिक

पसन्द करता है। शरीर और मन की शुद्धि से ही तो मन लगता है। चरित्र का प्रभाव सीधा मन पर ही तो पडता है और इस मार्ग में मन ही प्रधान है। मन को ठीक मार्ग पर चलाने के लिये मन को विकार रहित रखना जरूरी है।"

"दाता सर्वत्र है। वह तो कण कण में हैं। विश्व की कोई भी वस्तु एसी नही है जिसम वह न हो। वह गटर के नाले की गन्दगी मे भी है तो बाग के सुगन्धित फूलो की खुशबू में भी है। किन्तु आप उसे सुगन्धित फूलो में ही देखना पसन्द करेगे। यही आपके लिये उचित भी है कारण मानव प्रकृति गन्दगी को पसन्द नही करती है। वह खुशबू या स्वच्छता व सुन्दरता को अधिक पसन्द करती है। आप जानते हैं कि आपका मन बडा चचल है। गटर के नाले में प्रविष्ट होकर आप उसको देखने की कोशिश करोगे तो आपका मन वहाँ गन्दगी मे फिसल न पडे इसका भय हर समय बना ही रहेगा। इसलिये महापुरूषो ने कहा है कि उसको फूलो की सुगन्ध म ही देखने की कोशिश करो। मन्दिर को स्वच्छ, साफ और सुगन्ध से युक्त रखने का यही तो राज है। धूप-दीप, केसर, चन्दन आदि का प्रयोग भी इसी हेतु किया जाता है। दाता इन वस्तुओ का भूखा तो है नही। वह इन वस्तुओं में भी है और इनके बाहर भी है। उसको इनसे क्या लेना देना। उसके लिये तो सुगन्धी और गन्दगी समान है। दोनो ही वस्तुएँ उसकी है। साधक के लिये जरूरी है कि साधना के समय उसका मन विकारो में ग्रस्त न हो जाय। विकारो की चटक-मटक में वह फस गया तो फिर चटक-मटक ही उसके सामने रह जावेगी। मूल वस्तु अर्थात् दाता को तो वह भूल ही जावेगा। अत उसको प्राप्त करने के लिये सभी पथ्य परहेज रखने होगे। शरीर की और मनकी पवित्रता बन्दे को आगे बढाती है। दाता के स्मरण में आने वाली बाधाओ को यह शुचिता दूर करने में मदद देती है। आप पर्वत के शिखर पर जाना चाहते है तो आपको पूरी तैयारी के साथ परिश्रम करना पडेगा। आपकी तैयारी अधूरी रह गई तो फिर शिखर तक पहुँचना बडा कठिन हो जावेगा। अत आपको अपने पिया के पास पहुँचने के लिये पहले

सभी शृङ्गार करने पड़ेंगे। शृङ्गार के साथ ही साथ मन और शरीर की पवित्रता रखनी ही होगी। ऐसा करने पर ही पिया मिल सकता है। हम कैसे हैं, क्या यह आप से छिपा है? हम एक पैसे तक के लिये तो खाना-पीना छोड देते हैं। आप अपनी लज्जा रखने को कपडे धारण करते हो और किसी के सामने नग्न होना पसन्द नही करते हो किन्तु यदि आपको अच्छी नौकरी मिलती है तो आप डाक्टरी कराने को तैयार हो जाते हो। छोटी सी बात पर तो आप सब कुछ करने को तैयार हो जाते हो। आप अपनी बात रखने को हर तरह का काम करने को उतारू हो जाते हो। आप पूरी तरह बिक जाते हो। फिर उस सर्व शक्तिमान् की ओर बढना, साधारण काम नही है। उसके लिये तो हर सभव प्रयास करना ही पडेगा। उसके लिये तो जो आप कर सकते हैं वह सभी करना पडेगा। सत्य को प्राप्त करने के लिये अपने आप को सत्य स्वरूप बनाना ही पडेगा। शुचिता में ही प्रेम है। विकार रहित होने पर ही प्रेम जागृत होता है। और प्रेम के जागृत होने पर ही पिया का मिलन होता है। दाता प्रेम बिना नही मिलता, चाहे आप लाख उपाय क्यो न करो। कहा है:-

> मिले न यमुना सरस्वती में, मिले न गग नहाय।
> प्रेम सरोवर में जब डूबे, प्रभु की झलक लखाय॥
> मिले न पर्वत में निर्जन में, मिले न वन भरमाय।
> प्रेम बाग मे घूमे तो हरि को घट में ले पधराय॥
> मिले न पण्डित को, ज्ञानी को, मिले न ध्यान लगाय।
> ढाई अक्षर पढ़े प्रेम का, तो नटवर नैन समाय॥
> मिले न मन्दिर में, मूर्ति में, मिले न अलख जगाय।
> प्रेम बिन्दु दृग सो टपके, तो तुरन्त प्रकट हो जाय॥

सीधी सी बात है। आप उस दाता को अपने हृदय मन्दिर में बैठाना चाहते हैं तो आप ही बतावे कि आप आपके हृदय मन्दिर की सफाई करेंगे या नही। आपके हृदय एव मन में कूडा-कचरा भरा पडा है। क्या आप उसका आसन कूडे-कचरे में लगाओगे? आप ऐसा नही करोगे। एक साधारण से महमान के आ जाने पर

तो आप सारे घर को सिर पर उठा लेते हो। सब को तंग कर मारते हो। फिर इतना मँहगा और बड़ा महमान आ रहा है उसके लिये क्या सफाई की आवश्यकता नहीं होगी ? हम समझते है कि उसके लिये भी सफाई करने में कोई कोर कसर नहीं छोडोगे।"

उसको पाने को आप सभी शक्ति लगा दो। इस दुनिया में आपको इस काम में सहयोग देने वाले कम ही मिलेंगे। दुनिया की बात दूर रही, घर में ही आपको सहयोग नहीं मिलेगा। सभी, जो आपको सहयोग नही देते है आपके दुश्मन हैं। आपका मन भी यदि विपरीत चलता है तो आपका शत्रु है। घर वाले आपके मित्र होते तो आपको इस ओर बढने में सहयोग अवश्य देते। उस दाता को पाने के लिये आपको सब कुछ ही करना पड़ेगा। एक हाथी सड़क पर जा रहा था। वह अपनी सूड से सड़क की मिट्टी उठा उठा कर शरीर पर फेंक रहा था। एक दर्शक को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि इस हाथी का शरीर शुद्ध है फिर भी गन्दगी अपने ऊपर डाल रहा है। उसने हाथी से पूछ ही लिया। हाथी ने जवाब दिया :-

गाज सुनी गजराज की क्या करते हो महाराज।
जिस रज सू अहल्या तरी, उस को ढूंढत हूँ आज ॥

कितना मार्मिक उत्तर था। गजानन का प्रयास उस रज को ढूढने में हैं जिस रज से अहल्या का उद्धार हुआ था। इस रज में वह रज समाई हुई है। तलाश है उसी रज की। निरन्तर यही प्रयत्न जारी है। अन्त में कभी न कभी सफलता तो मिलेगी ही। कहा है :-

करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात हैं, सिल पर होत निशान ॥

निरन्तर प्रयास करने से सफलता अवश्य मिलती है। अतः दाता को चाहते हो तो अपने आपको तैयार कर पूरी शक्ति से आगे बढ जाओ।"

"आप इस दुनिया में रहते हैं अतः इसको जानने की कोशिश करते हैं। आपकी इच्छा होती है किन्तु यह व्यर्थ की इच्छा है। दुनिया को जानने से कोई लाभ है नहीं। जानने की वस्तु तो इस दुनिया का निर्माता है। उसी को जानने को प्रयास हमारा होना चाहिये। दुनिया की प्रत्येक वस्तु में हमें देखना है तो उसके नूर को ही देखें। उसकी कारीगरी देख देख कर उसकी महता को स्वीकार करें और यह अनुभव करे कि दाता कितना दयालु है। उसने हमारी सुविधा के लिये कैसे कैसे साधन जुटायें हैं। हम पैदा नही हुए उसके पहले उसने हमारे लिये माँ के स्तनों में दूध पैदा कर दिया। उसने हमारे लिये चाँद-सूरज बनाया है। उसने हमारे लिये वनस्पति का निर्माण किया है। उसने हमारे लिये अग्नि, हवा, पानी, पृथ्वी आदि का निर्माण किया है। किस तरह वह एक पिता की तरह हमारी हर प्रकार और हर समय रक्षा करता है और पूरी तरह पालन करता है। कितनी महानता है उसकी और हमारी क्षुद्रता को तो देखो कि हम उसकी बनाई हुई वस्तुओं का तो प्रयोग कर लेते हैं किन्तु उसके तनिक भी अहसान मन्द नहीं है। उसको पाने की भी कोशिश नही करते हैं। हमें देखना है तो केवल मात्र उसी को देखना चाहिये। निरन्तर उसकी कारीगरी को देखना चाहिये ताकि हमारा प्रेम उस ओर उमड पड। प्रेम करने की वस्तु है तो केवल वही है। उसी से प्रेम करो। भ्रमित होते हैं। बडे बडे महात्मा लोग भी भ्रमित हो जाते है। अर्जुन कैसा भ्रमित हुआ था ? उसने कृष्ण का विराट रूप तक देख लिया फिर भी भ्रम नही भागा। जब कृपा हुई कृष्ण की तब ही उसका भ्रम भागा। उसको देखने की इच्छा हमें भ्रमित करती है। सबसे बडी बात है उसकी बनाई हुई वस्तुओ को उससे अलग देखने का प्रयत्न करते है तो भ्रम पैदा होता है। प्रत्येक वस्तु में वस्तु के साथ ही साथ उसको देखेंगें तो भ्रम के स्थान पर उस पर श्रद्धा होगी जिससे प्रेम जागृत होगा सारभूत वस्तु तो वही है अत उसको देखने की इच्छा ही जागृत करो।"

"संसार की सभी वस्तुएँ प्यारी तो है ही क्यो कि सब में वह विद्यमान है किन्तु सबसे प्यारा स्वरूप आपका है। आपने पूछा

जाय कि इस विश्व म सबसे सुदर स्त्री कौनसी है। तो आप विश्व सुन्दरी को न बता कर अपनी पत्नी को ही सुन्दर बतावेंगे। उसी तरह आपका स्वय का स्वरूप भी अन्य स्वरूपो से अधिक सुन्दर दिखाई देगा। वास्तव में आपका स्वरुप ही सबसे सुन्दर है, क्यो कि वह तो दाता का स्वरूप है। अब आप इस आपके स्वरुप को देखना चाहते है किन्तु क्या आप स्वय इसे देख सकते है ? बिना किसी सहारे के आप इसको नही देख सकते हैं। देखने के लिय कांच जैसे माध्यम का सहारा लेना ही होगा। आप कांच में अपने मुह को देख सकते हैं। उसी तरह अपने सत्य स्वरूप को देखने के लिये सत्गुरु रूपी कांच की आवश्यकता पडेगी। सत्गुरु की कृपा बिना आप अपन स्वरूप को नही देख सकते हैं। सत्गुरु ही है जो आपको भ्रम रहित कर उस ओर बढा सकता है। सत्गुरु के चरणो में समर्पण ही आपका मार्ग प्रशस्तकर सकता है।"

'आप सुखी बन कर रहना चाहते हैं तो बच्चे बन कर रहो। बच्चे बने रह कर ही आप,पिता का आनन्द ले सकते हो। बच्चा ही आगे जाकर पिता बनता है। जो गाय पहले बछिया बनी और गाय का दूध पीकर मस्त रही वही आगे जाकर गाय बनी अत बच्चे बन कर ही दाता का आनन्द ले लें। इस ससार में आपको सभी दुखी नजर आ रहे हैं। जिसको पूछो वह यही कहेगा कि वह बडा दुखी है। कोई यह नही कहता की मैं सुखी हू। किसी को न पढ पाने का दुख तो कोई सन्तान न होने से चिल्ला रहा है। कोई अधिक सन्तान होने से दुखी है तो कोई अपने पुत्र के सताप से दुखी है। किसी को धन की कमी का दुख है तो कोई अधिक धन के होने से दुखी है। हमने तो सभी को दुखी देखा है। सुखी देखा है तो केवल मात्र एक को। वह है दाता का बन्दा। बस विश्व में वही सुखी है। अब आप देखो कि दुख क्या वस्तु है। दुख कुछ नही केवल मन की कमजोरी ही है। मन के हारे हार है और मन के जीते जीत। मन जिस बात में दुख मान लेता है वह दुख हो जाता है। मन जिस बात में प्रसन्नता का अनुभव करता है, वही सुख हो जाता है। बन्दा प्रसन्न क्यों है ? वह इसलिये प्रसन्न है कि

उसने मूल तत्व को जान लिया है। उसका मन उसके पास है। वह जान गया कि वह दाता का है और दाता उसके हैं। सभी काम दाता के हैं, सभी प्राणी दाता के और सभी वस्तुएँ दाता की हैं। उसका जीवन ही दातामय है अत वह सुखी है। घर मे कोई पैदा होता है तो भी सुखी है और कोई मरता है तो भी वह यह मानकर चिन्ता नहीं करता कि दाता की वस्तु को दाता ने उठा लिया। भार हलका हुआ जब नरसी महता को उनकी पत्नी की मृत्यु का सदेश मिला तो उनकी पहली प्रतिक्रिया थी – "भलो भयो मिटी जजाल, सूखसू भजस्या श्री गोपाल" ससारी लोग इसी लिये दु खी है कि वे सब ही वस्तुओ को स्वय की मानते हैं। वे सोचते हैं कि घर उसका है, स्त्री उसकी है बेटा उसका है धन उसका है आदि। दु ख होना स्वाभाविक ही होगा। दाता को बन्दा बने बिना चैन नही। हम मालिक बन बैठते है इसी का तो दु ख है। हमारा भोलापन तो देखो कि हम कुछ घण्टो के लिये बस में बैठते हैं तो भी कहन लगते की यह बस हमारी है। हम एक समय म एक रात्रि का विराम करते है तो दूसरे दिन कह देते है कि यह हमारी है और छोडते वक्त दु खी हो रहे है। यह 'मैं' और 'मेरा' ही हमारे दु ख का कारण बना है। बिन सतगुरु की महर के यह अज्ञान रुपी अन्धकार मिटने का नही। अतः होश हवास ठिकाने कर सतुगुरु के चरणो में स्नेह रखनेका प्रयास करो जिससे शाश्वत सुख की प्राप्ति कर सको।'

"हमारी भूल ही हमें दु खी करती है। जो कुछ है वह मनका ही है। जान बूझ कर तो हम शिला सिर पर रखते हैं और फिर सिर धूनते हैं। इसमें कोई करे तो क्या करे। यह तो हमारे हाथो और हमारे मन का ही दु ख है। हमारे मन और हमारी मान और प्रतिष्ठा का दु ख तो हमें ही सहन करना पडेगा। अत स्पष्ट बात है कि यदि आप सुखी बनना चाहते है तो सच्चे रूप में दाता को स्मरण करो। अपने अहभाव को भूल कर तू और तेरा ही याद रखना पडेगा। दाता के नाम की भूख बढाओ तो सुखी हो जाओगे।"

"भूख बढाने के लिये सत्संग जरूरी है। जिस प्रकार रस्सी के बार-बार घिसने से पत्थर में भी गड्ढा पड जाता है उसी प्रकार बार-बार के सत्सग से मन पर प्रभाव पडे बिना नही रहता। सत्सग से और महापुरुषों के दर्शन और सम्पर्क से मन में निर्मलता आती है। आप सत्सग में आते हैं तो सत्सग रूपी रग के छीटे अवश्य लगेंगे। यदि आप अपने कपडो को रग में नही डालोगे तो भी रग के पास निकलने पर छीटे अवश्य लगेंगे। आप यहाँ काफी समय से बैठे हैं, अत सत्सग का प्रभाव आप पर अवश्य पडा ही होगा। आप का मन भी लगा ही होगा। दाता करे आप इस रग में रग जाय। दाता आपकी सहायता करे।"

o o o

उसकी चाह

सन १९८१ में भी रामनवमी का सत्संग माडल ही हुआ। दिनांक १२-४-८१ को श्री दाता का बिराजना बादल महल में था। कुछ भक्तजन दाता के पास ही बैठे थे। उस समय श्री दाता ने फरमाया, "दाता ने कृपा कर यह मनुष्य शरीर दिया है यह उनकी बडी कृपा है। उसने तो हमें यह शरीर दे दिया है, अब हम यदि इसे सार्थक कर सके तो बड़ी उत्तम बात होगी। जिसने हमें बनाया है और हमारी सुख सुविधा के लिये अनेक चीजें बनाई है, उसका हमें अहसान मानना चाहिये। उसने हमारे लिये सूर्य बनाया है, जो अनन्त प्रकाश देता है। उसने चन्द्रमा बनाया है जिसने हमारी सारी वस्तुओ मे मधुरता घोल रखी है। उसने सुन्दर सुन्दर वस्तुएँ बनाई है जिनका प्रयोग कर हम सुखी होते है। ऐसे परमात्मा का अहसान ही क्या माने उन्हें तो सर्वस्व समझ प्यार करना चाहिए। उसने जब हमें सब कुछ दिया है तो हमे भी हमारा जो कुछ है, उसे अर्पित कर देना चाहिए। वैसे आपने देखा है कि हमारा तो कुछ है नहीं। जो कुछ है सो उसी का है। फिर उसीकी वस्तु को उसे सौंप देने में क्यो दुःख होता है। हम तो बड़े ही अज्ञानी हैं। जिससे प्रेम करना चाहिये उससे तो प्रेम करते नही वरन् इसके विपरीत झूठी वस्तुओ से प्रेम करने लग जाते है। आपको पूछा जाय कि आपके घर में सबसे प्रिय वस्तु क्या है? कोई स्त्री को सबसे प्रिय बतावेगा। कोई पुत्र को सबसे प्रिय कहेगा। कोई कहेगा धन ही सब से प्यारा है क्यों कि इसके बिना काम ही नही चलता है। एक अन्य व्यक्ति कहता है कि मुझको तो मेरा शरीर ही सब से प्यारा है। यदि यह शरीर नही तो स्त्री पुत्र और धन किस काम का। सब ही अपने अपने माने में ठीक प्रतीत होते है क्योंकि आप लोगो ने मन में यही बिठा रखा है। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो पुत्र, मित्र आदि तो स्वार्थ के सगे है। जब तक हमसे उनका स्वार्थ हल होता है तब तक ही वे हमारे है और प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। स्वार्थ की पूर्ति होने में कमी आयी नहीं कि वे ही जिन्हें हम अपने प्यारे समझते हैं और

जिनके लिये हमने अनेको कष्ट सहन किये हैं, हमारे नाश का कारण बन जाते है । धन भी हमारा नही है । हमारे पास धन है तो निरन्तर दूसरो का आँखे उसे प्राप्त करने की होती है । वही धन जिसको हमने बडे कष्टो से कमाया है हमारे सकट का कारण बन जाता है । शरीर भी हमारा साथ नही देता । अशक्त होते ही भार बन जाता है । अब सच माने में सोच समझ कर देखो कि आपका सच्चा साथी कौन है । हमन हमारी पहली पुस्तक में पढा है कि दु ख में केवल ईश्वर ही साथी है । आपने भी हिन्दी शिक्षावली भाग एक में यह बात पढी होगी । सच्ची बात यही है । शिक्षा के प्रारभ में और अन्त में एक यही वस्तु आती है कि दु ख में केवल ईश्वर ही साथी है । उसके अतिरिक्त देखने में देख लो, कोई भी अन्य साथी नही है जो आपको दु ख से उबार ले । जब आपको यह विश्वास हो जाता है कि वही सच्चा साथी है, तो फिर अपने घर का पूरा अश उसे ही अर्पित करो । उसी को अपना सब से प्यारा समझो । अपना प्यार उस पर उडेल दो और फिर देखो उसकी ओर से आपको कितना प्यार मिलता है । आपको उसकी दी हुई वस्तुएँ तो मिल ही रही है । प्यार मिलने पर आप निहाल हो जाओगे ।"

"सब बलहारे को बलराम यह कहावत सही है । जब सब बल थक जाते है तब राम का बल ही सहायक होता है । बडे बडे भक्त हुए जिनकी जीवनियाँ बताती है कि किस प्रकार उन पर सकटो की घनघोर घटाएँ आयी और किस प्रकार दाता ने उन सब को दूर किया दाता की लीला ही निराली है । भक्तो पर बार बार सकट आते हैं, और उन्हें वह दूर करता है । भक्तो को सकट में रखने में ही उसे आनन्द आता है । ठीक भी है क्यो कि सकट में ही तो मन स्थिर रहता है और दाता की याद आती रहती है । द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण से यही तो वरदान मागा 'हे भगवान् बार बार हमारे में सकट पडे और बार बार हमारे सकट को दूर करने के लिये आप आवें । भक्त भगवान् से सकट ही मागते हैं क्योकि उनमें उन्हें भगवान् की लीलाओ के दर्शन होते हैं । भक्त को भगवान् को कष्ट देना अच्छा नही लगता किन्तु उसकी लीलाओ को देखने का लोभ वह सवरण करने में असमर्थ होता है, इसीलिये

वह यही पुकार करता है। सुदामा जी कितने उच्च कोटि के भक्त हुए हैं। वे श्रीकृष्ण के परम भक्त थे ही। क्या दाता उन्हें धन सम्पति नही दे सकते थे? अवश्य दे सकते थे किन्तु यह बात सुदामा को कहाँ मजूर थी। उन्हें तो एक गाँव जाओ, दो गाँव जाओ, सवा सेर बेकरडा ही मिलता था। किन्तु वे उसी में मस्त थे। वे इस के लिये भी दाता का बडा अहसान मानते थे और बडे प्रसन्न थे। उनकी पत्नी ने उन्हें भगवान् के पास जाकर मागने के लिये मजबूर किया। मजबूरी से वे गये भी, किन्तु सकोच के वशीभूत रह कर कुछ बोल नही। उन्होने भगवान् से कुछ भी नही मागा। भगवान् ने महरकर उन्हें विश्व की सारी सम्पति दे दी तो उन्होंने उसे देख कर यही कहा कि उसकी तो पुरानी कुटिया ही अच्छी थी। यह धन सम्पत्ति किस काम की। सच्चा धन तो उसके दाता है। उसे तो दाता ही चाहिये। दाता के सिवा उसे कुछ भी अच्छा नही लगता। ऐसा धन किस काम का जो दाता को भुला दे। वाह रे सुदामा! भक्त ऐसे ही होते हैं। भक्त भगवान के अतिरिक्त ससार की किसी भी अन्य बात को नही देखते हैं। दुनिया के कोई चमत्कार उन्हे प्रभावित नही कर सकते हैं। वे जानते है कि जितने भी दुःख सुख है वे सब दाता के ही तो दिये हुए हैं। राम कृष्ण देव के गले में गल कण्ठ हो गया। वे कहा करते थे कि माँ की महर से ही तो यह कृपा हुई है। वे उस बीमारी को भगवान की कृपा का प्रसाद मानते थे। उनके स्थान पर हम लोग होते तो दाता को कोसने लग जाते। कहने लगते 'हमने तेरा क्या बिगाडा है जो तूने यह दुःख दिया है। भक्त लोग जानते हैं कि दाता दाता हैं और वे उनके बच्चे हैं। एक पिता अपने बच्चे का सदैव भला ही सोचता है। उसके हाथ से कभी बुरा हो ही नही सकता है। आप लोग सभी दुःखी प्रतीत होते हैं। आप लोगो के दुःख को देख कर हमें भी दुःख होना है किन्तु दाता की मरजी है। दाता की इच्छा के सामने हम क्या कर सकते है। आप यह समझते हो कि म्हारा राम बहुत कुछ कर सकता है, यह आपका भ्रम है। हमारे हाथ में होता तो आपके दुःख को दूर करने में एक मिनिट भी नहीं लगावे, किन्तु हाथ में कुछ नही हैं। म्हाराराम भी तो रोग से पीडित है।

यह उसकी ही इच्छा है। जैसे वह रखे रहना पडता है। हमारे लिये तो ठीक वैसी ही बात होगी जैसे एक बच्चे को बारूद के कमरे में खडा कर दो और उसके हाथ में माचिस दे दो। होगा वही कि वह बच्चा भी नष्ट होगा और अन्यो को भी नष्ट कर देगा। होगा वही जो वह चाहता है। हम तो बच्चे मात्र है। आप यह बताओ कि क्या आप अपने मकान या तिजोरी की ताली अपने छोटे बच्चे को देते हो। यदि आप स्वय नही देते हो तो सोचो मेरे दाता किस तरह अपने अमूल्य खजाने की ताली मुझ जैसे अबोध और अज्ञानी बच्चे को देगा। आप कहने को कुछ भी कह दो किन्तु कर्ता-धर्ता सब वही है। आप अपनी वासना से प्रेरित होकर उससे अपना स्वार्थ पूरा कराना चाहते हो और वह करता भी है किन्तु उसकी इच्छा से ही करता है। जो कुछ उसकी इच्छा होती है वही करता है और आपके विश्वास पर ही करता है।"

"विद्यालय के मास्टर छात्रो को पढाते है किन्तु परीक्षा में पास फैल करना उनके हाथ में नही है। पास फैल तो छात्र अपने अपने भाग्य एव कर्मो से ही होते हैं। मास्टर कर्ता होते हुए भी वहाँ अकर्ता हो जाते है। अत सुख-दु ख अपने अपने मन के कर्मों के और भाग्य के हैं। दु ख हमें ही नही देखना पड रहा हैं, बडे बडे महापुरूष हुए हैं जिन्हे शरीर का कष्ट तो देखना ही पडा है।"

एक बन्दा– आप फरमा रहे है कि दाता ही सब कुछ है और उसे ही हमें प्राप्त करना चाहिये। हमने दाता को तो कभी देखा है नही और न हमें उसका अनुभव ही है। ऐसी अवस्था में यदि हम दाता की प्राप्ति की कोशिश करे तो उसकी क्या पहचान होगी ?"

श्री दाता–"उसकी याद होकर उसकी चाह हो जाना उसके मिलने की निशानी है। आप म्हावाराम से मिलना चाहते थे। आप कैसे मिल गये ? आपने मिलने की चाह की तो आपके पैर इस ओर पड गये। जिनको मिलने की इच्छा हुई वे तो आ गये। माल्ल में और भी कई लोग हैं। उन्हें मिलने की इच्छा नही हुई, इसलिये वे लोग नहीं आये। यही बात वहां भी है। जो अपनी इच्छा और

चाह करता है, उसको वह मिल जाता है। आप जानते हैं कि आपकी चाह के सामने कोई रुकावट नहीं है। जो जिस बात की चाह करता है, उसको वह बात मिलती ही है। लोगों ने चन्द्रमा तक जाने की इच्छा की, तो वे वहाँ तक पहुँच गये। अतः उस ओर बढ़ने की यही निशानी है कि आपको उसकी याद होकर चाह हो जाय।"

एक बन्दा-"सब से बड़ी रुकावट तो यही है कि उसकी चाह हो। उसकी पूरी चाह हो तो कैसे हो?"

श्री दाता-'आप क्या काम करते हैं?"

एक बन्दा-"मैं तो मास्टर हूँ।"

श्री दाता-"हमें आप यह बताओ कि आप मास्टर कैसे बन गये।"

एक बन्दा-"मास्टर बनने के लिये तो मैंने बहुत पहले से तैयारी की है। जब मैं होश सभाला तब मैं ही पढ़ना शुरु कर दिया। परीक्षा पास करने पर भी ट्रेनिंग करनी पड़ी। प्रार्थना पत्र देना पड़ा तब नौकरी मिली।

श्री दाता-"ठीक है। आप जानते तो सब है किन्तु हमें यों ही पूछ रहे हैं। अब आप मास्टरी के लिये पूरी तरह बिक चुके हैं। आप और बिक कर देख लो। आपने भोजन किया या नहीं।"

एक बन्दा-"कर लिया है। मैं निपट कर आया हूँ।"

श्री दाता-'अब थोड़ा और कर लीजिये।"

एक बन्दा-"इस समय तो भूख नहीं है क्यों कि आज खूब खा लिया था। इस समय तो तनिक सी भी इच्छा नहीं है।"

श्री दाता-"अभी भूख नहीं है तो अब फिर कब करोगे?"

एक बन्दा-"जब भूख लग जावेगी तब इच्छा होगी तो खा लेंगे।"

श्री दाता-"यही तो बात है। आपको जब दाता के नाम की भूख लग जावेगी, तब आपमें अपने आप चाह पैदा हो जावेगी।

फिर उस ओर जाने में रुकावट नही होगी। चाह होने पर सम्मान हो ही जाता है। आपका कुछ काम तो चलता ही है, किन्तु उससे तृप्ति नही होती है। तृप्ति वैसे इसमें होनी ही नही चाहिये। आपके मन मे अनेक प्रश्न है। ये सब प्रश्न इस लिये हैं कि आप उसमें अभी मस्त हुए नही है उसमें मस्त हुए नही कि आपके सब ही प्रश्न हल हो जावगे। मस्ताने के पास कोई प्रश्न ही नही होते हैं। आपके सामने तीन स्थितियाँ हैं। आप इनमे से किसी एक को अपनाले। या तो आप कठ पुतली वन जाओ। आप जानते है कि कठ पुतली वनने पर नचाने वाला उसे नचाता है। कठपुतली वहाँ कुछ नही है। वहा तो सब कुछ नचाने वाला है। देखने में नाचने वाली कठपुतली है किन्तु वास्तव में नचाने वाला ही कठपुतली को नचाता है। अत. आप अपनी स्थिति को कठपुतली की स्थिति बनालो। यदि ऐसा न कर सको तो बाजीगर का बानरा वन जाओ। कभी देखा है आपने बाजीगर का बानरा ? बाजीगर उसको जैसा भी वह चाहता है नचाता है। वहाँ बानरा (बन्दर) अपनी स्वय की इच्छा कुछ भी नही रखता। स्वय बहुत कुछ होते हुए भी बाजीगर के सामने कुछ भी नही है। वहा तो बाजीगर की इच्छा ही उसकी इच्छा है। अत आप बाजीगर का बानरा वन जाओ यह बात भी आपके लिये कठिन हो तो फिर पनिहारी वन जाओ। अपना चाल पनिहारी की चाल के समान बना लो। देखा है कभी पनिहारी को। *अब तो गाँव गाँव और घर-घर में नल लग गये हैं।* पहले स्त्रियाँ कुएँ से पानी लाती थी। वे पानी के घडे को अपने सिरपर रख कर लाती थी। पानी लाने वाली स्त्री को ही पनिहारी कहते ह। वह नाचती-कूदती, हसती-बोलती और चारो ओर देखती हुई भी अपने सिरपर रखे हुए घडे में पानी ले आती है। सब काम करते हुए भी वह अपने सिर को नहीं हिलाती जिससे उसका पानी घर लाने में सफलता मिल जाती है। पनिहारी की तरह सब काम करते हुए भी अपने मन को दाता में रखो। आपका सम्पूर्ण ध्यान उस ओर होना चाहिए। इन तीनो स्थितियो में से किसी एक को अपना लो तो आपका काम बन जावेगा। इन तीनो में से भी यदि कुछ न कर सको तो फिर इस ससार रूपी सागर में गोते लगाते रहो।

एक स्थिति और है। आप कमल की चाल चल सको तो चलो। आपने देखा है कि कमल कीचड और पानी में उगता है किन्तु उसके पत्ते और फूल सदैव ही पानी से ऊपर होते हैं। जिस प्रकार कमल कीचड और पानी में रहते हुए भी कीचड और पानी से परे है, उसी प्रकार की आपकी स्थिति बना लो। यह शरीर रूपी कमल है। कर्म रूपी कीचड है और मन रूपी फूल है। कर्म रूपी कीचड में पैदा होकर भी यदि वह कर्म-रूपी कीचड से अलग रह जावे, उसमें फस नही तो आसानी से काम चल सकता है। दाता सब कुछ करते हुए भी अकर्ता है। उसके तो कार्य ही ऐसे है –

होनी अन होनी होय, अनहोनी होनी कर दिखावे। वाको भेद कौन बतावे। वह निराला है और उसके कार्य भी निराले है। आप मान लो तो सौदा आपके लिये सस्ता पडेगा। आप आज नही मानोगे तो कल तो मानोगे ही किन्तु उस समय सौदा महगा पडेगा। ज्यों ज्यो दिन निकलता है त्यो त्यो 'वह भी ढलता है। चेतन चेत सके तो चेत, नितर फिर पछताये क्या होवत है, जब चिड़ियन चुग लिया खेत।' इस चेतन में चेत सको तो चेत जाओ, नही तो ये वृतियाँ रूपी चिडियाँ इन श्वासा रूपी दानो को चुग लेगी तो फिर शेष क्या रहेगा। समय बडी तेजी से भागा जा रहा है। समय निकल जाने के बाद सिर धुन कर रोओगे और चिल्लाओगे कि यह क्या हो गया।"

"लोग हिम्मत जरूर करते है। वे विचार करते है कि हमें उसके लिये कुछ समय अवश्य निकालना चाहिये किन्तु दुनिया का चक्कर ही ऐसा है कि आजकल आजकल करते करते सारी आयु ही निकाल देते हैं। दाता तो दयालु है और वह आपको निरन्तर देखता रहता है। आपकी चाह पैदा हुई नही कि वह किसी भी वेष में आकर दर्शन दे देता है और आपका मार्ग प्रशस्त कर देता है। वह बहुत कुछ देता है किन्तु प्रश्न उठता है कि बन्दा भी कुछ लेने को तैयार है कि नही। दक्षिण यात्रा मे गये। अमरावती के बाहर बस खराब हो गई। सब एक कुएँ पर जा बैठे। भजन बोले गये। एक वृद्ध धोबिन वहाँ आकर खडी हो गई। भजन सुनने वाले

अनेक थे, किन्तु सच्च रूप से सत्सग लेने वाली वह एक थी। जहाँ चाह है वहाँ राह है। उसको सत्सग की चाह थी, अत दाता न उसक घर जाकर सत्सग दिया। इसी तरह आलीन्दी में बस में बैठते बैठत एक व्यक्ति आया। दर्शन कर वह मस्त हो गया और कहने लगा कि उसने जन्म जन्म का फल पा लिया। अब दाता की दया को देखा। वह इच्छा करते ही इच्छा को पूरी करता है। वियोग म जो रोना चाहता है, उसे वह रूलाता है। सयोग में हँस कर जा प्रसन्न होना चाहता है, उसे हँसाता है। आपका तनिक सा कार्यक्रम बना नही कि उसका कार्यक्रम बन जाता है। उसके कार्यक्रम का किसी का कुछ पता नहीं चलता है। कौन जाने कब उसकी महर हो जाय, अत उचित तो यही है कि निरन्तर उसकी चाह रखो। न मालूम किस क्षण उसकी महर हो जावे। उसके महल के झरोखे बहुत हैं। सब ही झरोखो में वह मौजूद है। आप जिस झरोखे से झाक कर देखोगे तो उसकी झलक पा जाओगे। उसकी दयालुता की तो हद ही है। सुदामा जी के तनिक से झुकने पर उनको सब कुछ मान उनका चरणामृत ले लिया। ऐसे दयालु दाता को छोड कहाँ भटकते फिरें। ऐसे दयालु दाता को छोड कर अन्यत्र भटकना चाहो तो आपकी मरजी है। आपके मनकी बात नही रखने से भटकते हो तो आपकी मरज़ी। मन की बात तो आज तक किसी की रही नही। उस समय जयपुर के कुछ बडे डाक्टर बैठे थे। श्री दाता न उन्हें सम्बोधन कर पूछा।

श्री दाता– क्यो डाक्टर साहब एक रोगो आपसे दवा मागता है। उसके मन की दवा क्या आप उसे दे दोगे।"

डाक्टर- नही ऐसा नही होता।"

श्री दाता–'आप उसको उसके मन की दवा नहीं देंगे। वह कितना क्यो न चिल्लावे किन्तु उसके कहे कहे दवा नही देंग। दवा तो आप अपने मन के अनुसार ही देंगे। हाँ! यह बात जरूर है कि रोगी कैसा भी हो, वह कितना भी गन्दा क्यो न हो, आप उसकी गन्दगी की चिन्ता न कर इलाज करेंगे। आप मरीज से कभी

घृणा नहीं करेंगे। इसी तरह हमारा डाक्टर भी हम मरीजों का पूरा ध्यान रखता है। रोगी बनने पर वह पूरी देखरेख रखता है। कमी तो हमारे रोगी बनने की ही है। अस्पताल में आकर फिर रोगी अन्यत्र चला जावे तो जा ही कहाँ सकता है। कष्ट तो उसे सहना ही पडता है किन्तु यदि कुछ मजबूत रहेगा तो गाडी पार लग जावेगी। उसके रोग का इलाज हो जावेगा। भागने से क्या पीछा छूटता है। एक रोगी की तरह आप भी उसके रोगी होकर डटे रहो। डटे रहने से काम बन ही जावेगा। अन्त म महर की वर्षा होगी ही।"

"आप जानते है कि साधु-सन्त छिप कर रहते हैं। आप उनके छिप कर रहने का कारण जानते ह। कभी आपने सोचा ही नहीं होगा। एक बाबा को किसी ने पूछ ही लिया। उसने बताया कि सरलता से पहुँचन के स्थान पर तो पैसे वाल आ जाते है किन्तु विकट स्थानो पर तो दिल वान हो जाते हैं। उसके कहने का तात्पर्य है कि हर प्राणी सीधी रोटी खाना चाहता है। बिना परिश्रम के मिल जाय तो अच्छा है। परिश्रम कर खाने वाले कम ही होते है। बिना परिश्रम की रोटी मे आप जानते है कोई आनन्द नही है। परिश्रम द्वारा प्राप्त की हुई रोटी में सन्तोप भी है और रस भी है। इसी कारण साधु लोग विकट स्थानो म रहना पसन्द करते है। जिनको सचमुच दाता की चाह है वे ही वहाँ पहुँचते हैं। जिनको अपने अह या पैसो का गर्व है, वे वहाँ तक नही पहुँच पाते है। कहने का मतलब इतना सा है कि दाता को प्राप्त करने के लिये आपको परिश्रम तो करना ही पडेगा। यदि आप में उसकी चाह है तो ठीक।"

० ० ०

प्रेम ज्योति जला दो

श्री दाता, कल्याणपुरा, लोरडी और विजय नगर होते हुए भीलवाडा पधारे। शिवसदन मे ही विराजना हुआ। उस दिन अप्रैल माह की उन्नीस तारीख थी। ५७ के ११-१५ का समय था। चार-पाच व्यक्ति ही श्री दाता के पास थे। श्री दाता उस समय अपनी मस्ती में थे उन्होने फरमाया, "इस समय दाता की वडी महर है। आप सब लोग ध्यान रखना।" यह वह श्री दाता ध्यानस्थ हो गये। वहाँ उपस्थित लोग एक टक श्री दाता के शरीर को देखने लगे। बैठे बैठे ही सब के शरीर मे एक शीत लहर सी दौडने लगी। सभी आनन्द मग्न हो गये। सभी लोग दाता की महर रूपी वर्षा मे अनुरंजित हो गये। कुछ समय तक यही स्थिति रही। इसके वाद श्री दाता वापिस पूर्व की स्थिति में आ गये। उन्होने फरमाया, "दाता की कितनी महर है इसका अन्दाजा आप लोग नही लगा सक्ते। आपने देखा डूगरपूर के पास जब बस में कीर्तन हो रहा था तब कैसा दिव्य कीर्तन था। उस समय यह वस ही विश्व रूप वन गई थी। आप लोग स्वार्थ, वासना और कामना के ऊपर उठ कर देखोगे तो आपको आनन्द ही आनन्द दिखाई देगा। कीर्तन के समय आप लोगो को अनुभूति हुई ही होगी। उस गहरे गड्ढे को फलाग कर सडक पर बस जा पहुँची, तव भी आप लोगो को कुछ अनुभूति अवश्य हुई होगी। दाता के सिवा कोई अन्य ऐसी महर कर सकता है? सडक सकरी और सडक पर मोड, एक ओर दस फीट का गहरा गड्ढा, कैसी विषम स्थिति थी। वस के पीछले पहिये अधर में झूल रहे थे। किसने रक्षा की थी उस वस की। ऐसा लगा कि उस भयकर अधकार में किसी ने हाथो से उठा कर वस को सडक पर ला रखी हो। आप लोगो का आच तक नही आने दी। यह सब चमत्कार आपके उस दिव्य कीर्तन और दाता की महर का ही था। आप लोग कहते हो कि हमे तो कुछ मालूम ही नही पडता। मालूम कैसे पडे? आपने कभी उसे प्रधानता दी है। सदैव मन को ही प्रधानता देते रहते हो। जब दाता के दरवार मे

जाते हो और जब दाता की महर होने का समय आता है तब कहने लगते हो कि सिर म दर्द है, पेट मे दर्द है, नौकरी छूट गई, भाई लडता है, पत्नी बीमार है आदि। फिर आपको अनुभूति हो तो कैसे हो। वह महर कर आपको इशारा करता है, किन्तु आप इधर-उधर के कामो में उलझ कर उस पर ध्यान ही नही देते हो। उस सैन को पकडते नही हो, फिर व्यर्थ के दावे लडते हो कि दाता की महर नही है। अब आप ही बताव कि मेरे दाता करे तो क्या करे।"

"आप लोग द्वारिका जा रहे थ। आप लोग मस्ती से कीर्तन कर रहे थे। आप की बस तेज गति से जा रही थी। आग एक ट्रक जा रहा था। आपकी बमन उस ट्रक को कवर करना चाहा। ठीक उसी समय एक साईकिल वाला सामने आ गया। साईकिल वाला भय से साईकिल स आपकी बस के सामने आ गिरा। बस का ड्राईवर हक्का-बक्का रह गया। उसके हाथ पाँव फूल गये। वह किंकर्तव्य विमूढ हो गया। उस समय दखा आपन दाता के चमत्कार को। बस को एक धक्का सा लगा। बस सडक के पत्थर को तोडती हुई किस प्रकार सडक से नीच उतर कर वापिस सडक पर आ गई। किसने किया था यह सब। ऐसा न होता तो वह साईकिल वाला तो मरता ही। यदि साईकिल वाला किसी तरह बच भी जाता तो आप सब लोग ता मारे ही जाते। दाता ने उस साईकिल वाले को भी बचाया और आप सब लोगो को भी बचाया। बस का ड्राईवर कैसा फूट फूट कर रोया था। महर इसको कहते ह। इतनी महर के होते हुए भी आप लोग बहक जाते हो फिर दाता को दोष देते हो कि दाता की महर नही है। अरे! दाता तो निरन्तर आप लोगो का ही हित-चिन्तन करता है। आप का जीवन जिस तरह सुखी हो वही काम वह करता है। जब भी भक्त में भीड पडती है वह दौड पडता है। आप लोगो न तो कई बार देखा है। अब तो आप का पूरा विश्वास हुआ ही होगा। आप लोग तो दाता की लीला को जानते हो अत आपको क्या कहें। जो नही जानता है उसे बताना ठीक है। जानने वाले को क्या बताया जावे।"

" हमने अच्छी तरह दखा है कि दाता के सिवा कोई अपना कहाने वाला नही है। यह शेखर जानता है कि एक समय ऐसा आया

जब घर के सभी व्यक्ति तक विरोध करने लग गये। उस समय घर क्या गाँव के न पूरे चोखले (क्षेत्र) के लोग ही विरोध कर रहे थे। विरोध भी साधारण नही। बडा भयकर विरोध था। उस समय म्हाकाराम से कोई बात करने तक से डरता था कारण, बात करने वाले को भय था कि कही वह दण्डित न किया जावे। जाति और समाज ने वहिष्कार किया। साथ ही ऊपर से मुकदमें अलग लगाये गये। विरोध की भयकर आँधी थी उस समय। दाता के सिवा किसी का भी सहारा नही था। दाता ने महर कर किस तरह उन सब सकटो से बाहर निकाला। यदि दाता का आसरा न होता तो गडक की मौत मारे जाते। ऐसे दयालु दाता को छोड कर जावे तो कहाँ जावे। हम तो बस दाता का ही आसरा है और तुम्हें भी हमारा तो यही कहना है कि दाता का ही आसरा रखो। उसके सहारे ही पडे रहो। उसकी दया के भिखारी बन जाओ। वह जैसे रखे रहो। प्रसन्न रहो। वह मारे तो मरो और जिलावे तो जीओ। मुह से चू तक न करो।"

"दाता का जैसा नाम वैसे गुण। दाता तो दाता ही है। सदैव ही अपने भक्तो की रक्षा का ही काम है। इतिहास बताता है कि उसने सदैव ही अपने भक्ता की रक्षा की है। गजराज को ग्राह ने पकड लिया। वह खींच कर उसे पानी में ले गया। सूई के बराबर सूड पानी से बाहर रही। ऐसे समय में उसने दाता को पुकारा। पुकार सुन कर दाता दौड पडे। उन्होंने ग्राह से गजराज को छुडाया। राणा ने मीरा के पास विष का प्याला भेजा। मीराने उसे दाता का प्रसाद समझ हँसते हँसते पी लिया। दाता ने विष को अमृत में बदल दिया। है कोई दाता जैसा जो अपने भक्तों की इस कदर रक्षा करता है। राणा ने मीरा की हत्या करने के लिये साप को पिटारी में बन्द कर भेजा। दाता ने साप का चन्द्रहार ही बना दिया। वाह रे मेरे दाता! तेरी लीला का पता चलाते चलाते वेद पुराण भी चक्कर खाने लग गये। वे भी नेति नेति कह कर दूर हुए। बडे बडे ऋषि मुनि भी दाता की लीला का पार नही पा सके। ऐसे दीन दयाल दाता हम लोगो पर कितनी महर कर रहे है। हम कितने भाग्यशाली हैं। अरे! इस दाता की महर को प्राप्त

करने के लिये हजारों ज्ञानी-ध्यानी, एक जीवन नहीं, कितने ही जीवन बीता चुके हैं किन्तु दाता उनके ध्यान में नहीं आया। वही गोपियों का आराध्य देव हम पर कितनी कृपा कर रहा है। सच पूछा जाय तो हमने ऐसा किया भी क्या है! हम तो भिखारी हैं। देने को भी हमारे पास कुछ नहीं है। हमारे तो अन्दर और बाहर गन्दगी ही गन्दगी भरी पड़ी है। किन्तु हमारे दाता ने हमारी किसी भी बात की ओर न देख कर, महर कर अपना लिया। हमें तो इस बात का गर्व है कि हमारे जैसा कोई नीच और पामर दाता के दरबार में नहीं है किन्तु साथ ही इस बात का भी गर्व है कि दाता जैसा दीन दयाल भी इस विश्व में और नहीं है। ऐसे दाता को निरन्तर याद रखो। आप सब निहाल हो जावोगे।

सतगुर की किरपा से, हो जावे बेड़ा पार।
नहीं तो रे बन्दे डूबेला भव सागर में मनधार।
सतगुरु की शरण में जाया करेलो।
गया सू बिना थारो काम न सरेलो।

आप सब को एक एक कर दाता का सैन (संकेत) मिलता ही रहता है वह दाता की महर ही है। आप उस सैन को पकड़ कर उसके अनुसार चलने का प्रयास करो। सतगुरु का सैन आपकी सभी कठिनाइयों और इस जग के जजालों को समाप्त कर देगा। एक बार दाता का आसरा पकड़ा नहीं कि फिर मोज है। दाता का आसरा पकड़ना कठिन है किन्तु उससे भी अधिक कठिन पकड़ने के बाद छोड़ना है। कोई पति अपनी पत्नी को छोड़ता नहीं है। यदि छोड़ता है तो जग में उसी की हँसी होती है। जब हमारे पिया ने हमारा हाथ पकड़ लिया है तो अब छोड़ेगी तो लाज उसकी ही जावेगी। अतः निश्चिन्त होकर उसके बन रहो।"

"सूरदास जी अन्धे थे। एक दिन वे दाता को रिझाने के लिये एक गीत गा रहे थे। भावमय गीत था। सुनकर दाता उनके निकट आकर बैठ गये। अन्धे आदमियों के अन्य ज्ञानेन्द्रिया अधिक काम करती है। दाता के आने की आहट उनके कान में पड़ी। उन्होंने समझ लिया कि दाता के सिवा अन्य आने वाला कौन हो सकता है। चट हाथ पकड़ लिया। दाता ने देखा यह अच्छी रही। उन्होंने

अपना हाथ छुडा लिया । सूरदास जी रो पडे किन्तु उन्हें दृढ विश्वास था अत दाता से लड ही पडे । वे बोले –

> हाथ छुडा कर जात हो, निर्बल जान कर मोहि ।
> हृदय से जाओगे, तब मर्द बनुगा तोहि ॥

यह तो भक्त की अपने भगवान से लडाई है । भक्त और भगवान तो एक ही है । आप दाता के हो तो दाता तो आपका है । वह अपना हाथ आपके हाथो स छुडा भी लेगा तो भी हृदय से तो जा सकेगा नही । आप उसे अपने रोम रोम में बिठालो । फिर वह जावेगा तो कहाँ जावेगा । एक कवि ने ठीक ही कहा है –

> खुले हैं मन मन्दिर के द्वार, पधारो इसमें हे दातार,
> मन्दिर सूना तुम बिन मनका, कोई नही तुम बिन जीवन का,
> प्रेम ज्योति जलती आशा की, चाव तडपता मधुर मिलन का,
> बसा दो उजडा यह ससार, पधारो इस में हे दातार,
> पूजा को मन ज्योत जलाई, अश्रुवन हार पिरोकर लाई,
> भक्ति भावना की थाली में, तेरी आरती आज सजाई,
> चढाऊ चरनन मन का प्यार, पधारो इस में हे दातार ।
> हृदय कमल से जरियाँ साजे, स्वागत को मन बीणा बाजे,
> द्वार खोल कर बाहर निहारू, काहे न प्रीतम आन विराजे,
> सुनो तो मन की प्रेम पुकार, पधारो इसमें हे दातार ।
> इस मन्दिर में रहना आकर, कुछ कहना कुछ सुनना आकर
> प्रीत की रीत निभाने को दाता, बाण प्रीत के सहना आकर,
> तुम्ही हो जीवन के आधार, पधारो इस में हे दातार ॥

अपने मन मन्दिर में दाता को बिठाने पर ही सूनापन समाप्त होगा । बिना दाता के है ही क्या ? सारा ससार ही सूना है । आप उस सूनेपन को मिटाने के लिये प्रेम ज्योति जला दो । आपके हृदय में ज्यो ही प्रेम की भावना पैदा हुई नयी कि मिलन की चाह पैदा हो जावेगी । चाह के पैदा होते ही हमारे पिया का मिलन हो जावेगा । उसके मिलते ही उजडा हुआ ससार फिर से बस जावेगा । उसके मिलने से ही आप आबाद है वरना बरबाद है । अत दाता के होकर दाता को आप के मन मन्दिर में बिठाओ ।

• • •

गुण ग्रहण करो

दिनाक १३-६-८१ को कुछ भक्त जन दाता-निवास के बाहर रेतीपर बैठे हुए थे। इधर-उधर की बात चल रही थी। श्री दाता का पधारना मकान के भीतर से बाहर हुआ। वे भी रेती पर आकर विराज गये। आते ही पूछा "क्या हो रहा है।" भक्तजन सिट पिटा गये। एक ने उठकर जवाब दिया।

वन्दा-' भगवन्, हम तो इस समय यो ही समय नष्ट कर रहे हैं। हम लोगों से किसी की प्रशसा तो होती ही नहीं। निन्दा करने म ही लगे रहते हैं। हँसी मजाक में भी पर निन्दा ही हो जाती है। बडी गन्दी आदत है। प्रभु कृपा से छूट जाय तो अच्छा है।"

श्री दाता-"तुम ठीक ही कहते हो। यह तो मानव मात्र की कमजोरी है। मानव की आदत है कि वह अपने आप को न देख कर दूसरा को देखन की इच्छा करता है। अपनी बुराई को कभी नही देखता है किन्तु दूसरो की छोटी सी कमी को हजार गुणा बडी कर देखता है। बडा भा ा प्राणी है। देखा जाय तो पर तो कोई है ही नहीं। अत वह जो भी निन्दा करता है वह स्वय की ही तो निन्दा करता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को गाली दे रहा था। पहला व्यक्ति क्रोध में आकर गालियो पर गालिया दिये जा रहा था और दुसरा व्यक्ति मुस्करा रहा था। वह चुप था। देखने वाले ने उसे पूछा कि वह उमे गालियाँ दे रहा है और वह चुपचाप सुन रहा है। उल्टा वह मुस्करा रहा है। उसको उसके कार्य की सजा देनी चाहिये। दूसरे व्यक्ति ने कहा कि यह गालियाँ दे रहा तो उसका मुह ही दर्द कर रहा होगा। मेरे को तो गालियाँ लग ही नही रही हैं। जिसकी वस्तु है वह उसी के पास है। सुनने वाला स्तब्ध हो गया। निन्दा करना समय नष्ट करना ही नही किन्तु अपने आप को नीचा बनाना है। 'हम जानते हैं -

> जो ताको काटा बोवे, ताहि बोई तू फूल।
> ताको फूल को फूल है, वाको है त्रिशूल॥

पर निन्दा मे हमें क्या मिलता है। व्यर्थ ही उनके अवगुणो की ओर हमारी दृष्टि जाती है। बुराई करने पर हमारे मन में भी विकार पैदा होते है और धीरे-धीरे हम भी वैसे ही बन जाते हैं। हमें तो सूप के समान व्यवहार करना चाहिये। कहा भी हैं–

> साधु ऐसा चाहिये जैसे सूप स्वभाव।
> सार सार को गहि लिये थो था देहि उडाय॥

सूप सार सार को तो ग्रहण करता है और थोथी चीज को उडा देता है। बन्दे को भी उसी तरह अन्य व्यक्तियो के गुणो को ग्रहण कर लेना चाहिये। उनके अवगुणो की ओर ध्यान नही जाना चाहिये। अवगुणो और कमियो पर हमारा ध्यान जाना ही नही चाहिये। जो जिस वस्तु का ग्राहक होता है, उसकी दृष्टि उसी पर जाती है। बुराई पर हमारी दृष्टि जाती है, इसका अर्थ हुआ कि हम बुराई को पसन्द करते हैं। पसन्द करने का अर्थ हुआ कि हम बुराई को चाहते है और उसे अपनाना चाहते है। इसलिये हमारी नजर सदैव दूसरो के गुणो पर ही जानी चाहिये, जिससे हम दूसरो के गुणो के ग्राहक बन सके। दूसरी देखने की यह बात है कि पराया है ही कौन। सब में तो दाता विराजमान है, इसलिये सभी तो अपना ही रूप है। तथा साथ ही सभी कामो का कर्ता धर्ता भी वही हैं। अत हम किसी की निन्दा कर रहे हैं तो किसकी कर रहे हैं। उसी दाता की ही निन्दा हुई। इस प्रकार के भाव हो जाने पर निन्दा करना अपने आप बन्द हो जावेगा।"

"यह भी अच्छा है कि तुम लोग गुनाह करते हो किन्तु दाता के सामने सत्य सत्य कह देते हो। तुम कितना बडा गुनाह क्यो न करो, यदि दाता के सामने सत्य बोल देते हो तो वह गुनाह नही रहता। दाता ऐसे गुनाह की माफी दे देता है। कहा भी है, 'सत्य सो गुनाह की एक दवा।' इसका यह अर्थ भी नही लेना चाहिये कि दाता के सामने तुम ने सत्य कहा और दाता ने तुमको माफ कर दिया। अब आप निडर होकर गुनाह करते ही रहो। किये हुए गुनाह के लिये पश्चाताप तो होना ही चाहिये। और साथ में यह भी निश्चय होना चाहिये कि भविष्य में आप उस गुनाह को

दोहरावेंगे नही। गुनाह आपके द्वारा न हो इसके लिये आवश्यक है कि आप दाता को सदैव साथ समझो। यदि यह विश्वास रहेगा तो दाता का भय हर समय में रहेगा जिससे आप गुनाह करते डरेंगे। सत्य के सम्मुख झूठ नही चलता। प्रकाश के सामने कभी अन्धकार नही ठहरता। श्री दाता के सामने किसी प्रकार के विकार नही ठहरते। एक ही सिद्धान्त बना लो 'जिसमें है रजा तेरी उसमें है खुशी मेरी।' इस बात के मान लेने पर ईश ही मिट जाता है। फिर सुख-दुःख के आने पर हम नही घबरावेंगे। हमारे घर मृत्यु हो चाहे जन्म हमें मृत्यु पर न दुःख होगा और जन्म पर न प्रसन्नता। कुछ लोग अपने प्रिय जनों कि मृत्यु पर दुःखी हो जाते है। वे दुःखी होकर रोते-पीटते और आंसू बहाते हैं। किन्तु यह उनकी यह नादानी है। कारण हमारा उस पर क्या अधिकार है। खेलने के लिये दाता ने खिलौना दिया। रहा तब तब खेल लिया। चला गया तो उसकी इच्छा। हमें क्या एतराज हो सकता है। एतराज करते है तो गलती करते है।"

"हमे जो कुछ दर्द होता है वह हमारे स्वार्थ का है। यह गृहस्थ एक मीठा जाल है। लौडी का पत्थर गुड है। ऊपर से तो मीठा है किन्तु अन्दर से बडा कठोर है। ऊपर से मीठा होने से आपने उसे स्वीकार कर लिया। आपने विवाह कर बच्चे पैदा कर लिये। अब उनके सुख-दुःख से आप सुखी और दुःखी होते हो। अब एक गधे के वजन से भी अधिक वजन आपके सिर हो गया। अब आप इस भार को वहन करने में असमर्थ पा रहे हैं। सिर धुन रहे है किन्तु किया क्या जाय। ऊखली में सिर दे दिया तो अब चोटो से क्या डर है। भोगना ही होगा। मीठे का स्वाद लिया तो अब अन्दर की कठोरता को भी ग्रहण करना पडेगा। आपकी दशा उस स्त्री जैसी है जिसने अपना स्वप्न सत्य करने के लिये अपने पति को ही मार दिया। आप सब कुछ जानते हुए भी भूलते हैं। आप इसी दलदल में रस ले लेकर आनन्द मना रहे हैं। ऊपर से चोटें पड रही है फिर भी कह रहे हो कि फूल बरस रहे हैं। आपकी व आपके स्वार्थों की बलिहारी है।"

"लोग आजकल स्वार्थ में इतने अन्धे हो गये कि कुछ कहा भी नही जा सकता है। उनका धर्म-कर्म तो सभी समाप्त हो गया।

हमारी संस्कृति कितनी महान रही है। एक समय था जब गृहस्थ सेवा को सबसे ऊपर मानता था। घर आये हुए शत्रु का भी सम्मान होता था। साधु-सन्तो और अभ्यागतो की तो बात ही दूसरी थी। घर आया और मा जाया बराबर था किन्तु आज अजीब बात ही देखने को मिल रही है। शहर तो भौतिकता के केन्द्र है। वहाँ की बात छोडी जाय किन्तु देहातो मे भी स्वार्थ की पराकाष्ठा है। आज अतिथियो व साधुसन्तो की सेवा की बात अलग दु खी एव भूखे व्यक्तियो को आधी रोटी देने की भी उनकी भावना नही रही। कैसी विडम्बना है। पर सेवा के तो भाव ही नही रहे। उन लोगो को दाता का भी डर नही। बस उन्हें स्वार्थ ही स्वार्थ दिखाई देता है। जब दु ख की चपेटे पडती हैं तब अवश्य वे दाता की ओर झुकने का प्रयास करते है किन्तु भोगेच्छा उन्हें अपने चगुल से निकलने नही देती है।"

'आप लोग दाता को चाहते हो। हो सकता है आपका चाहना भी आपके स्वार्थों मे ही हो किन्तु आपमे और अन्य व्यक्तियो में भेद तो है। भेद इस बात का हैं कि स्वार्थ के वशीभूत ही हो किन्तु आपका दाता से प्रेम तो है और आपको उस असीम आनन्द का अनुभव तो हो चुका है। आप और ऊपर उठने की कोशिश करो तो अच्छा है। आप अपना प्रेम नि स्वार्थ प्रेम में बदल दो। दाता से आप प्रेम करो, किन्तु उसमे भौतिक वस्तुओ की माग न करो। दाता आपके माता, पिता, बन्धु, भाई, सखा आदि सब कुछ है। आपका हित वह आपसे अधिक जानता है। उसे आपकी हरदम चिन्ता है। ऐसी अवस्था में उससे आप माग करने की भूल क्यो करते हैं।"

"आप दाता के लिये नाचो किन्तु उसे आपके लिये न नचाओ। आप अपने मन को उस म रमा दो। कहो कि आपका मन उसके लिये खूब नाचे। मन का मूल स्थान वही है। अपने स्वार्थ को छोडो। मान और प्रतिष्ठा को छोडो। इनमें कुछ भी नही धरा है। उसकी महर होगी तो ये सब आपके हाथ में होगे। आप इनके हाथ में नही रहोगे।"

एक बन्दा—"भगवान ! आपकी तो अपार महर है। एक पिता जिस तरह अपने बच्चे को रखता है उसी प्रकार आप हमें बड़े लाड़ प्यार से रखते हो। आनन्द भी कम नहीं देते हो फिर भी मन कभी कभी कभी उसे उल्टा उल्टा क्यो रहता है।

श्री दाता—"मन की गति तो उलट-पलट होती है और होनी ही चाहिये। यदि ऐसा नही हो तो यह ससार ही नही चले। यह तो चक्र है। चक्र की पखुरियाँ चलती रहती है। कभी पखुरी ऊपर आती है, तो कभी नीची चली जाती है। पखुरी कभी एक स्थान पर नही ठहरती। यदि पखुरी टिक जाय तो क्या होगा ? चक्र चलना ही बन्द हो जावेगा। जिस वक्त मन उस रग वाली पखुरी पर आता है तब तो आनन्द ही आनन्द मिलता है किन्तु मन जब दूसरी पखुरी पर आता है, तब दु ख होता है। सुख और दु ख का चक्र तो है ही और यह चक्र दाता का है और दाता ही उसको चला रहा है। हमारे हाथ में है ही क्या। हमें तो वह जैसे रखे वैसे ही रहना है। हम चाहते हैं कि वह भी बना रहे और हम भी बने रहे। हम बने रहेंगे तो उसका आनन्द लेते रहेंगे। यदि हम भी उसमें लय हो जावे तो फिर आनन्द कौन लेगा ? लकड़ी के आग में जाते ही आग हो जावेगी। फिर आग का अनुभव करने और उसका आनन्द लेने लकडी कहाँ रहेगी। हमारा मन उल्टा जाता तो है, इसका हमें अनुभव तो होता है। उल्टा जाते हुए भी हम उसको याद तो रखते है। यह क्या कोई कम बात है। उसकी महर बिना यह सभव ही नही है। एक बन्दा एक स्थान पर बैठ कर सिजदा कर रहा था। वह जाति से मुसलमान था। जहाँ सिज़दा कर रहा था, वहाँ मसजिद नही थी। एक मौलवी साहब ने आकर कहा 'अरे ! यह क्या कर रहे हो ? तुम्हारा सिजदा तो खुदा को मजूर नही है। यह सुनते ही वह बन्दा मस्त होकर लोट पोट हो गया। वह नाचने कूदने लगा। मौलवी साहब के पूछने पर उसने बताया कि उसका सिजदा अच्छा हो या बुरा, कम से कम वह खुदा की निगाह में तो है। यह क्या कम है कि खुदा की निगाह तो पड़ी है। मेरे जैसे खुदा के लिये सैकड़ो है। खुदा को इतनी कहाँ फुरसत कि वह हर एक पर अपनी महर की नजर दौड़ावे। यदि मेरे

सिजदा पर दाता की नजर हो गई तो मै तो निहाल हो गया। बस इस भाव के आते ही वह दाता का हो गया और दाता उसके हो गये। अत मन डावा डोल होता है तो होने दो। इस मनरूपी घोडे को दौड लेने दो। तुम इसके साथ मत दौडो। अपने आप थक कर चकनाचूर हो जावेगा। फिर तो चुपचाप अपने स्थान पर आ ही जावेगा। मन हर फूल पर भँवरे की तरह भ्रमण करता है किन्तु जो विशेष फूल होता है वहाँ जाकर टिक जाता है। वह देखता सबको है। महर होने पर वह अन्यो को छोड देता है और उसी विशेष पर, घर कर लेता है। आपने लोगो को देखा होगा कि उसको प्राप्त करने को कोई आसन लगाता है तो कोई उल्टा ही लटक जाता है। कोई गृहस्थ में रहता है तो कोई विकट पहाडो की गुफाओ में जाकर आसन लगा देता है। जिसको जैसा रुचता है वैसा ही वह करता है। किन्तु यह सब क्यो? उसी एक को प्राप्त करने के तो ये सभी नाटक हैं। हम सब जानते हैं कि उसको पाये बिना कोई मुक्ति नही है। वही कोई टिकाव नहीं है। वही हमारा वास्तविक घर है और वही हमें जाना है। हम कई काम लेकर घर से बाहर निकलते है। काम करते है। कई स्थानो पर जाते हैं किन्तु हमें वहाँ शान्ति नही मिलती। हमारे घर से भी अच्छे घर है। अच्छी साधन–सुविधा है। अच्छे ऐशो आराम के साधन हैं, परन्तु जो सुख हमें घर पर मिलता है, वह वहाँ नही मिलता है, क्यो कि वहाँ आडम्बर है। वे सब वास्तविकता से परे है। घर में ही हमें सुख व शान्ति मिलती है। उस घर के लिये ही तो हम बाहर गये थे। ठीक उसी तरह हमारा वास्तविक घर तो दाता का ही घर है। उसी के तो हम बच्चे हैं वही से हम आये है अत वही पहुँचेंगे। तभी तो हमें सुख–शान्ति मिलेगी। रास्ते में ही ठहर जावेगे तो हमें शान्ति और वह आनन्द कहाँ। अत घर पहुँचना तो जरूरी है। घर में मन लगा रहेगा व लगन लगी रहेगी तो हमें घर पहुँचने से कौन रोक सकता है। बस भाव यही बने रहे कि वह हमारा है और हम उसके हैं। वह नटवर नागर है और हम उसकी गोपियाँ हैं। दाता मेरा, मैं दाता का, कहो तो बजाऊँ ढोल यही तो परम भाव है। यही रहते रहो –

मैं तो हूँ पतित आप पावन पतित नाथ
पावन पतित हो तो पातक हरोइगे,
मैं तो महादीन आप दीन बन्धु दीनानाथ
दीन बन्धु हो तो दया जिय में धरोइगे,
मैं तो हूँ गरीब आप तारक गरीबन को
तारक गरीब हो तो विरद बरोइगे,
मेरी करुणा पै कछु मुकर न दाता
करुणा निधान हो तो करुणा करोइगे।

अपनी नाव तो उसी के भरोसे चल रही है। यह संसार रूपी नदी तो बड़ी ही विशाल है। हजारों मगरमच्छ इस नदी में विद्यमान है। हमारी नाव तो साधारण सी नाव है। हलकी-फुलकी और पुरानी है। उसकी महर के बिना क्या पार होना संभव है। उसकी महर हुई नहीं कि अच्छी अच्छी नावें तो यों ही धरी पड़ी रह जाती है और हमारी नाव सरलता से किनारे लग जाती है।" श्री दाता इस तरह फरमा कर उठने लगे तो अन्य भक्त जन मस्त होकर गाने लगे:-

केउ ध्यान धारना समाधि विसे लीन भये,
मिलावे परमात्मा में आत्मा विचारिको।
केते निष्काम मन अजपा को जाप जप,
केते भजे शंकर धतूरे के अहारि को।
केते है स काम मंत्र यंत्र आठों याम जपें,
केते लोभ दामते गणेश सुखकारी को।
तेरो ज्ञान ध्यान तेरो, आसरो तिहारो मोहि
कोई कछु ध्यावे मैं तो ध्याऊ गिरिधारी को॥

भजन सुनकर श्री दाता मुस्करा दिये। उन्होंने फरमाया, "न करने से तो कुछ न कुछ करना अच्छा हैं। करे सरेगा कोरी बातों से काम चलने का नहीं है। दाता का मिलना जितना आप सरल समझ रहे है उतना सरल है क्या? उसमें लीन तो होना पड़ेगा। लीन होकर देखोगे तो ही उसकी ज्योति का भान होगा। फिजूल की बातों से काम चलने का नहीं।"

इस पर भक्त लोगो ने एक अन्य भजन बोला। दाता की कृपा तो उन पर थी ही। दाता की महर की वर्षा तो उन पर हो ही रही थी। श्री दाता विराज गये। वे गाने लगे –

तेरी शरण मे आय के फिर आस किसकी कीजिये।
नही दीख पडता है मुझे दुनिया में तेरे शान का।
गगा किनारे बैठ कर फिर आस किसकी कीजिये।
हरगिज नही लायक हूँ मैं शरण तेरी पडा।
अब सफल कर इस नाम को अपना मुझे कर लीजिये।
मिलता है ब्रह्मानन्द जिसका नाम लेने से सही।
ऐसे दाता को छोड फिर किस से हेत कीजिये॥

यह सुनकर श्री दाता मुस्कराते हुए अन्दर पधार गये और भक्तजन आनन्द के सरोवर म गोते लगाने लग।

० ० ०

अभी समय उसका

श्री दाता, दाता निवास के बाहर चबूतरे पर विराज रहे थे। गुरु पूर्णिमा के पर्व के कारण उनके भक्त जन वहाँ उपस्थित थे। कुछ लोग इधर उधर का काम कर रहे थे। कुछ श्री दाता के पास बैठे थे। काम करने वालो को देख कर श्री दाता ने फरमाया, "यह आप लोग जो कुछ कर रहे हो, वह सब कुछ अपने लिये ही कर रहे हो। यहाँ जो कुछ साधन सामग्री है वह सब आप लोगो के लिये ही है। हमें क्या चाहिये। एक रोटा और एक लगोटा। यह तो जहाँ जावेगे वही मिल जावेगा। यहाँ यह जो कुछ है वह आप लोगो की सेवा के लिये ही है। गृहस्थ में इसीलिये बैठे हैं कि इसी बहाने आप लोगो की सेवा हो जाती है। आप लोगो की सेवा कर यही संतोष कर लेते हैं कि दाता की सेवा हो रही है। दाता का जो कुछ है वह सब आपका ही है।"

"सेवा छोटी बात नही है। सेवा करना बहुत बडी बात है। सेवा दबाव से नही होती। सच्चे मन से स्वेच्छा से जो सेवा होती है वही सही माने में सेवा है। सेवा करते समय सेवाभाव आवश्यक है। सेवा भाव रहित होकर की गई सेवा, सेवा नही है। आवश्यकता से अधिक सहयोग देना भी उचित नही है। दाता के यहाँ पतासी नाम की गाय थी। वह कुछ कमजोर हो गई और बेसकी (उठने में असमर्थ) पड गई। उसको हमने खेत की मेड पर हरी घास चरने छोड दिया। हरि घास खाने की वजह से दो तीन दिन में उसके पैरो मे ताकत आ गई और वह स्वस्थ हो गई। जब उसको उठने-बैठने की तकलीफ नही रही तो अन्य गायो के साथ उसे भी जगल में चरने को भेजने लगे। लेकिन वह हरी घास के लालच मे वापिस जल्दी ही आने लगी और साथ में अन्य गायो को भी लाने लगी। फल स्वरूप उसे भी हरी घास से वचित होना पडा। अत उतनी ही सेवा करनी चाहिये, जितनी आवश्यक हो। जैसा पात्र हो वैसा ही तो दान दिया जाता है। अधिक देने पर तो बाहर आवेगा और वह

व्यर्थ होगा। आपकी सेवा व्यर्थ न जाने इसके लिये यह देखना जरूरी है कि जिसकी आप सेवा कर रहे हो, उसको सेवा की जरूरत है या नही और यदि है तो कितनी है। जिस मात्रा में आवश्यकता हो उतनी ही सेवा करना चाहिये। सेवा में आनन्द आता है। सब के मन का कनेक्शन तो है ही। अत सेवा में एक जीवात्मा को सन्तुष्टि होती है तो आपकी जीवात्मा को भी तो तुष्टि होगी ही। इसीलिय महापुरुषा न सेवाभाव को श्रेष्ठ माना है।"

वन्दा–'भगवन ! लोग क्रोध कर लेते है। कभी कभी महापुरुष भी क्रोध कर लेते है। आपको भी कभी कभी क्रोध हो आता है। अत क्रोध करना चाहिए या नही।"

श्री दाता– भिन्न भिन्न स्थिति के लिये भिन्न भिन्न बात है। वही क्रोध हानिकारक है तो वही लाभप्रद भी है। माना कि कोई व्यक्ति अपने घरके प्राणियो को लेकर कही जा रहा है। मार्ग में लुटेरो का सामना हो गया। लुटेरो ने उस व्यक्ति के घर वालो का लूटना चाहा। क्या वह व्यक्ति खडे खडे देखेगा। व्यक्ति शक्तिशाली है तथा रक्षा करने में समर्थ है। ऐसी अवस्था में यदि वह क्रोध कर लुटेरो का सामना करेगा तो न केवल अपने धन की ही रक्षा कर सकेगा वरना अपने व्यक्तियो की लाज की रक्षा कर सकेगा। गरीबो और असहायो पर अत्याचार होते है और कोई चुपचाप उस अत्याचार को देखता रह जाय और क्रोध न करे तो भी ठीक नही होगा। जहा क्रोध करना आवश्यक है वहाँ क्रोध करना ही चाहिये। आवश्यकतानुसार क्रोध भी आवश्यक ही है। वैसे क्रोध करना बुरा है। प्राणी को कभी क्रोध नही करना चाहिये। क्रोध में प्राणी होश हवास में नही रहता है। क्रोध मे न ऊँच नीच का ज्ञान रहता है और न भले बुरे का। आपने देखा होगा कि जब प्राणी को क्रोध आता है तो उसका शरीर पीपल के पत्ते की तरह कांपने लगता है। आवाज भी कांपने लगती है। शरीर और मुह की आकृति भी बिगड जाती है। क्रोध से मन की गति तो बिगडती ही है साथ ही शरीर भी क्षीण होता है। आप देखते है कि जिस व्यक्ति को क्रोध आता है उसका शरीर दुबला पतला ही होता है, कितनी भी खुराक

वह क्यों न पावे। खुराक उसके शरीर को पुष्ट नहीं कर सकती है। भोजन की शक्ति भी क्रोध रूपी अग्नि में जलकर भस्म हो जाती है। अतः क्रोध करना बुरा ही नहीं, बहुत बुरा है। दाता के मार्ग के साधक के लिये तो यह बड़ा शत्रु है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि साधक के महाशत्रु हैं और दाता के मार्ग में रुकावट होकर सामने आते हैं। जिसने इनको जीत लिया उसने जीवन में बहुत बड़े किले को फतह कर लिया। दाता के नाम से प्रेम है और यदि जीवन में आप आनन्द चाहते हैं तो क्रोध करना छोड़ दो।"

"आपने कहा कि महापुरुषों को क्रोध आता है। यह सही है, किन्तु महापुरुष महापुरुष हैं। उन्होंने तो इन्द्रियों पर पूरी तरह विजय प्राप्त कर ली है और उन्होंने दाता के नाम को भी साध लिया है। ऐसा करने पर ही तो वे महापुरुष बनने की स्थिति में आये हैं। वे क्यों क्रोध करने लगे फिर भी वे क्रोध करते देखे गये हैं। उनके क्रोध करने में रहस्य होता है। उस रहस्य को हम नहीं जान पाते है। बिना किसी रहस्य के महापुरुष क्रोध नहीं करते हैं। महापुरुषों का क्रोध अपने बन्दों के हित के लिये ही होता है।"

"यह जीव कुछ नहीं कर सकता है। जो कुछ होता है उसकी महर से ही होता है। उसकी शक्ति ही काम करती है। उसकी माया ही काम करती है। आप माने चाहे न मानें, जितनी भी अदृश्य योनियाँ है वे सब दाता के नाम को नमन करती हैं। जो काम अच्छे अच्छे डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों की दवा नहीं कर सकती है उस काम को दाता का नाम कर देता है। उसके नाम के सामने तो सारी प्रकृति ही सिर झुकाती है। पूरे शास्त्र पढ़ लिये। वेद, पुराण, महापुराण, उपनिषद, षठदर्शन आदि अनेक शास्त्र पढ़ लिये, मन कहता है कि इनको तो उसने ही बनाया है, अतः बनाने वाला बड़ा है। किन्तु हम तो देखते है कि वह तो दूसरों को सताने में बड़ा है। मनुष्य तो अहसान फरामोश है। जिसने उसको बनाया है और जिसने उसके लिये सब कुछ किया है, उसको तो वह भूल बैठा है और अपने अहंकार में मस्त है। अहंकारी व्यक्ति दाता के नाम की क्या परवाह करेंगे। इन पशु पक्षियों को तो देखो, जिनके

लिये हम कहते हैं कि इनमें तो बुद्धि नही है। ये पशुपक्षी उस दाता के नाम का कितना सम्मान करते हैं। इन गायों को देखो, दाता को देखते ही राभ ने (आवाज करने) लगती है। इनको आवाज दो तो दोडी चली आती है। इन्हे ठहरने को कहो तो ठहर जाती है। अब दाता का आसन लगता है तब कई गायें ध्यान मग्न होकर दाता के शरीर को देखती रहती है। क्या आपमें से कोई ऐसा कर सकता है? पर्वती में नारूजी गूजर के एक गाय थी। वह ब्याही तो उनके बछिया हुई। होते ही उसने हेज (प्रेम) छोड दिया। उसने उस बछिया को दूध नही पिलाया। बिना दूध के आधार के उस बछिया की हालत खराब हो गई। कुछ गायें ऐसी भी होती है जो अपने बछडो को दूध नही पिलाती है। उनका मालिक इसके लिये प्रयास करता है। उसने भी खूब परिश्रम किया किन्तु कुछ भी फल नही निकला। हजार प्रयास कर थक गया किन्तु कुछ नही हुआ तब उसको दाता की याद आयी। वह थक कर दाता के पास आया और पुकार कर रो पडा। उसे हुक्म हुआ कि वह जावे और उसे ले आवे। वह दौडा हुआ गया और बछिया को गोद में लेकर गाय को ले आया। उसको केवल ईशारा होकिया गया। केवल यही कहा गया कि यह बछिया भी उसकी ही है। आवाज सुनते ही वह दौडी हुई आई और बछिया को चाटने लगी। उसने बछिया को दूध पिला दिया। अब बताइये पशु बडे या आदमी बडा। और देखो वह गाय जब तक रही दाता के नाम को नमन करती रही। उस गाय की कितनी महानता थी।

बन्दा—भगवन ! हमें दाता का स्मरण कब करना चाहिये। प्रात या सायकाल ? उसके स्मरण करने का कौनसा अच्छा समय है।

श्री दाता—"सभी दियाडा (दिन) राम का। सभी समय राम का ही है। दिन भी उसका है तो रात भी उसकी है। प्रात-काल भी उसका है तो सायकाल भी उसका है। उसके नाम स्मरण के लिये कोई समय निश्चित नही। आप समय निश्चित करें, पता नही उस समय तक आप रहेगें या नही। अत सभी समय उसका है। एक क्षण भीव्यर्थ बिताये बिना उसको स्मरण करते रहो।

नही बैठा जाय तो मत बैठो। स्नान न कर सको तो न सही। सभी काम करते हुए उसको याद रखो। एक गर्भवती स्त्री जब प्रसव समय आता है तब वह सोचे कि एसी गन्दगी में उसे कैसे याद करू तो काम कैसे चलेगा। एसी स्थिति में कौन उसको उस दर्द से छुटकारा दिलावेगा? उसके पास उस समय किसका बल होगा? अत हर समय उसका ही है।"

बन्दा-"यदि सभी समय उसके नाम स्मरण के है तो फिर शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि दिन क्या निश्चित किये गये है।

श्री दाता-"ठीक है। ये दिन इसलिये निश्चित किये गये है कि रोज रोज यदि आप उसे याद न रख सको तो इन पर्वो पर तो उसका नाम ले सको। न मानने और निरतर उसको स्मरण न करने वालो के लिय ही ये पर्व है। उन जीवो के लिए वातावरण तैयार किया जाता है कि वे इस वातावरण म कुछ तो बैठे, जिससे रग नही चढे तो भी कुछ छीटे तो लगे। वर्षा में कोई नही रहता किन्तु वर्षा की हवा तो उसे लगती ही है। इससे कुछ देर के लिये तो उसका मन प्रसन्न ही होगा। लोग कहते है कि ये सब बनावटी है। अरे! बनावटी है या असली, देख तो लो। म्हाराराम कुछ आदमियो को लेकर एक जगल म गया। उन्हे तो एक ओर बिठा दिया और म्हाराराम एक चट्टान पर आसन लगा बैठ गया। कुछ देर बाद एक शेर व एक शेरनी गुफा से बाहर निकले। जिस प्रकार कुत्ते रमते है उसी प्रकार वे रमते रहे। वे व्यक्ति शेर व शेरनी को देखकर सकते में हो गये किन्तु चुपचाप बैठे रहे। ज्यो ही शेर व शेरनी की निगाह उन पर पडी, तो वे क्रोधीत होकर उन पर झपटने की इच्छा करने लगे। उन्हे तनिक सा सकेत किया गया। सकेत पाते ही उन्होने अपना इरादा छोड दिया। वे दोनो उछलते कूदते एक ओर को चले गये। देखने वालो से पूछो क्या यह सब बनावटी है?

"सब से बडी बात उसको याद रखने की है। किसी भी रूप मे उसे मान कर उसका विश्वास तो कर लो फिर आपके लिए न

समय की पाबन्दी रहेगी और न अन्य किसी वस्तु की। जितनी भी खरावी है वह हमारी ही है। अगर वास्तव में देखा जाय तो नीच है तो हम ही है। दूसरा को नीच कहना ही स्वय का नीच होना है। हमारा मतलब निकला कि सब व्यवहार समाप्त है। जितने भी धर्म बने है वे सब कर्म से ही बने है और वर्णाश्रम धर्म भी इसी तरह बना है। दो व्यक्ति है। एक पढा हुआ है। व दूसरा अनपढ। पढा हुआ व्यक्ति बैठ कर रामायण का पाठ कर रहा है। अनपढ रामनाम का स्मरण कर रहा है। दोनो में कौन अधिक ? दोनो ही बराबर है क्योकि दोनो ही अपना अपना काम कर रहे है। दोनो का उद्देश्य समान है एक उसकी महिमा का अर्थात् उसके गुणो का गुणानुवाद कर रहा है तो दूसरा उसके नाम को लेकर बैठा है। हमारे यहाँ चार वर्ण है। उनमें म तीन वर्ण पैरो पर ही टिके हैं। सिर, हाथ और धड पैरो पर ही टिका है। पैरो ने तो तीनो ही को धारण कर रखा है। यदि कोई पैर पकड लेता है तो उसे तत्काल माफी मिल जाती है। पैर की इतनी महानता है कि इसने सारे विश्व को सभाल रखा है। फिर भी आप पैर को नीच कहते हो, यह आपकी नादानी ही होगी। तीनो वर्ण चतुर्थ वर्ण के लिये सोचते है कि वह नीच है किन्तु आपही सोच ले कि नीच कहने वाले ही नीच हैं। क्योकि चतुर्थ वर्णपर तो तीनो ही वर्ण निर्भर है। यदि एक भी चतुर्थ वर्ण का व्यक्ति विधर्मी बन जाता है तो उसका मानना तो दूर अपने स्वार्थ के लिये उसके चरणो मे नाक तक जा रगडते है। मनुष्य मात्र म भेद रखना गुनाह है। मनुष्य मनुष्य में कौनसा भेद ? भेद रहता है किन्तु उनमें न रहकर आहार में रहता है। आहार में समदर्शी बनना उचित नही। समदर्शी तो उसकी लगन में होना है। लगन लगाई कि हम में भी वह प्रगट हो जावगा। गुलाब के पौधे में फूल क्या कभी बाहर से आया है ? यदि अन्दर से भी आया है तो चीर कर देख लो। जिस प्रकार गुलाब मे फूल है, उसी तरह दाता घर घर में हैं। किन्तु यदि आप उसे चीर कर देखना चाहे तो कुछ हाथ आने का नही। जिस तरह पानी, गर्मी एव खाद देने पर फूल प्रगट होता है, उसी तरह आपकी चाह, आपकी लगन, आपका प्रेम आदि के देने पर ही दाता प्रगट होते हैं।"

बन्दा - ---"जब आप स्वयं ही हैं तो फिर लगन किस बात की।"

श्री दाता – – - - "आप ब्राह्मण हैं न। ब्रह्म का आनन्द लेने के लिए ही तो ब्राह्मण हुए हो। आप पिता हो कि पुत्र ? पिता का आनन्द लेने के लिए पुत्र होना ही पड़ता है। अपनी अवस्था को प्राप्त करने के लिए यह सब कुछ करना ही पड़ता है।"

० ० ०

कर्मफल

जन्माष्टमी के अवसर पर उदयपुर, अजमेर, भीलवाडा, करेडा आदि स्थानो के भक्त जन दाता-निवास एकत्रित हुए। सभी ने भजन-कीतन का आनन्द लिया। दिनाक २३-८-८१ को दिन का समय था। श्री दाता दरवाजे में विराज हुए थे। बातचीत हो रही थी।

एक बन्दा "भगवन! सब प्राणी तो आपके ही हैं फिर भी सब को सुख-दु ख लगे ही रहते हैं। यह क्या रहस्य है?"

श्री दाता "सभी प्राणी है तो दाता के ही क्यो कि वह तो सबका ही निर्माता है। दाता सब कुछ कर सकता है किन्तु अपने दरबार से किसी को अलग नही कर सकता है। कौनसा स्थान ऐसा है जो उसका नही है? ऐसी अवस्था में तो सभी हैं तो दाता के ही किन्तु फिर भी दु ख सुख ता लगे ही रहते हैं। मेरे दाता न तो किसी को दु ख देते हैं और न सुख। वह तो किसी को न तो कुछ देता है और न कुछ लेता है। प्राणी को सुख और दु ख अपने कर्मों से मिलते हैं। कर्म रूपी एक बेल है जिसके सुख और दु ख, ये दो फल हैं। आप जैसा करोगे वैसा हो पावोगे। बदमाश व्यक्ति किसी से कुछ लेता नही तो सज्जन व्यक्ति किसी को कुछ देता नहीं। यह तो कर्म का खेल है। अत कर्म करते रहो। कर्म न करने पर अकर्मण्य कहलावोगे। कर्म करते हुए दाता को मत भूलो, इसी में बलिहारी है। आपके घर की क्या पहिचान है? आपका घर वही है जहाँ आपको विश्राम मिले। आपके घर में आपको विश्राम मिलता है। आप कहोगे कर्म कौनसा अच्छा है और कौन सा बुरा? वही कर्म अच्छा होगा जिसमें आपको शान्ति मिले, आनन्द मिले। आप कर्म करो किन्तु उसमें लिप्त न हों। निर्लिप्त होकर कर्म करते रहो। ऐसे कर्म करने से आपको आनन्द की प्राप्ति होगी।"

' गया हुआ समय वापिस आता नही है । घडी के एक चक्कर में एक घण्टा, एक दिन और एक वर्ष बीत जाता है । पूरा हो जाता है । अत एक क्षण को खोये बिना उसके नाम में अपनी लगन लगा दो । कौनसा समय अच्छा है और कौनसी वार अच्छा है ? लोग कहते हैं कि अमुक मुहुर्त अच्छा है । उस मुहूर्त पर हम अमुक काम करेंगे । सब व्यथ है । सभी वार उसके हैं और सभी समय उसके हैं । बस जिस काम को, जब करने की इच्छा हो जाय, तभी कर दो, कारण, कार्य करने की प्रेरणा भी तो उसी से मिलती है । म्हारा (मेरा) राम कुभ के मेले म गया । वहाँ एक सन्त महात्मा ने फरमाया कि ब्राह्म महुर्त में स्नान करने से बडा पुण्य लाभ होगा । अत सभी को ब्राह्म मुहुर्त में ही स्नान करना चाहिये । हमने तो जवाब दिया कि आप ही करो । हमारे तो सभी मुहूर्त ब्रह्म के ही हैं। लोग ब्रह्म मुहुर्त में स्नान करने गये । पता है क्या हुआ ? वहाँ पटरा ही साफ हो गया । वहाँ हजारो लोगो की मृत्यु हो गई । नदी का किनारा टूटा और हजारो लोग ओम् स्वाह हो गये । अत किस समय व किस मुहुर्त का इन्तजार कर । श्वास आया था आया ही नही, इस बात को कौन जानता है ।"

"समय कु समय कुछ भी नही है । भाव शुद्ध होना चाहिये । वहाँ भावो का ही महत्व है । सोने में, लोहे में और पीतल में क्या अन्तर है ? कठारता में सोना लोहे का कुछ भी मुकाबला नही कर सकता है । लोहा कौनसा कमजोर है ? थोडा सा लोहा भी चाहे तो सैकडो तोले सोना ला सकता है फिर भी लोहा, लोहा है और सोना, सोना है । इसका कारण यही है कि सोने का भाव ऊँचा है और लोहे का भाव नीचा है । अत हमारे भाव शुद्ध होने चाहिये कर्म बन्धन भावो से ही होता है । उस कर्तार की सभी वस्तुऐं सुन्दर हैं । उस सुन्दरता में वह कर्तार ही है । किन्तु भावो के कारण देखने देखने में दृष्टि भेद हो जाता है । एक सुन्दर बालिका है । वह सौन्दर्य से परिपूर्ण है । वह दुनिया के सामने हैं । अनेक लोग उसे देखते हैं । क्या सभी एक भाव से ही उसे देखेंगे ? नही ऐसा नही होगा । एक व्यक्ति उसमें उस कर्तार की झलक देखेगा, दूसरा उसको

कामना-वासना से देखेगा, तीसरा उसको बेटी के भावसे देखेगा, चौथा उसे बहन के भाव से देखेगा और पाचवा उसको मां के भाव से देखेगा। वस्तु एक है, किन्तु भाव अलग अलग होने से प्रत्येक का दृष्टिकोण अलग अलग हो गया।"

कर्मफल भावो के अनुसार ही लगते हैं। जिसके जैसे भाव होग उसके कर्मफल उसीके अनुसार होगे। डाक्टर एक रोगी को काटता है किन्तु उसके भाव रोगी को हानि पहुँचाने के न होकर लाभ पहुँचाने के होते हैं, अत डाक्टर दोषी नही, किन्तु यदि कोई दुष्ट व्यक्ति किसी अन्य प्राणी को कष्ट देने के लिये शरीर काटता है तो सजा का भागी होता है। अत. भाव ही मुख्य है। सभी प्राणी एक से नही होते हैं। सभी में वह दाता रमण करता है, किन्तु फिर भी स्वभाव से सभी भिन्न होते हैं। सस्कारो के आधार पर ही भावो का निर्माण होता है। एक राजा के भण्डार में चार चोर चोरी करने गये। चोरी करते करते पकडे गये। चारो को राजा के सन्मुख ले जाया गया। एक चोर को राजा ने तेज नजर से देख कर ही ही छोड दिया। दूसरे को डाट फटकार बता कर छोड दिया। तीसरे पर जुर्माना किया और चौथे को सजा दी। राजा के इस निर्णय पर सभी को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होने राजा से ही निवेदन किया कि एक से अपराध के दण्ड देने में यह भिन्नता क्यो? राजा ने उन्हे उन चारो का पता लगाने भेजा। उन्होने देखा कि जिस चोर को राजा ने तेज निगाह से देखा वह ग्लानि से आत्महत्या कर बैठा। जिसको राजा ने डाटा-फटकारा था, वह देश छोड कर अन्यत्र चला गया। जिस पर जुर्माना हुआ था, वह शर्म के मारे घर में जा छिपा। उसने घर से बाहर निकलना ही बन्द कर दिया। चौथे को जाकर देखा तो वह बडे मजे से अन्य अपराधियो के साथ ताश खेल रहा था। लोग इस अन्तर को देख कर अवाक रह गये और राजा के निर्णय की भूरि भूरि प्रशसा करने लगे। अत प्रकृति से हर प्राणी भिन्न होता है। प्रकृति भावो के आधार पर ही बनती-बिगडती है। हमारे भाव सदा दूसरो का भला करने के ही होना चाहिये। सभी प्राणियो में मेरे दाता को देखते हुए व्यवहार करो। इसमें आपको आनन्द की प्राप्ति होगी।"

"ब्राह्मण कौन है ? ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म को जानता है, मानता है और वैसा ही आचरण करता है। ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ऐसा न करने वाला क्या ब्राह्मण है ? जन्म से कोई ब्राह्मण नही है। ब्राह्मण तो कर्म से होता है। वैसे ही धर्म किसे कहते हैं ? इसी धर्म के नाम पर तो सदैव झगडे होते रहते हैं किन्तु वास्तव में धर्म तो है – 'एकम द्वितीय ब्रह्म।' इस बात को मानने में कहाँ किस को एतराज हो सकता है। समाज के मखियाओं ने ही अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये गुमराह किया है और करते रह रहे हैं। वे पानी में तो खडे है किन्तु पानी की बून्दो से उन्हे भय है, यह कितने आश्चर्य की बात है। इसलिये वस्तु कोई बुरी नही, क्योकि है तो सब दाता की हा। भावो की ही बात है। यह मन तो पपीहा है। पपीहा को एक स्वाति नक्षत्र की बून्द मिली नहीं की निहाल हो जाता है।"

दिनांक ६-९-८१ को श्री दाता का पधारना भीलवाडा हुआ। शरीर से श्री दाता अस्वस्थ थे। परिचर्या के लिये जयपुर पधारना हो रहा था। भीलवाडा वाले भक्तो पर विशेष कृपा थी अतः सीधे न पधार कर भीलवाडा पधार गये। रात्रि विश्राम वहीं हुआ। रात्रिभर धीमी आवाज में भजन होते रहे। अगले दिन अर्थात् ७-९-८१ को श्री दाता प्रातः ही हॉल में आ विराजे। इधर उधर की बातें होती रही। एक बन्दे ने अपनी पत्नी के स्वस्थ होने की पुकार की। श्री दाता ने फरमाया, "म्हारा (मेरा) राम यह थोडे ही चाहता है कि यह अच्छी न हो। म्हाका (मेरा) राम का हाथ में होवे तो अभी अच्छी कर दें। किन्तु हमारे हाथ की कुछ भी बात नही है। हम करे तो क्या करे। सब उसकी महर का सौदा है। वह महर कर दे तो एक क्षण में रंक का राव कर दे। गिरनार पर चढने समय दाता ने कई लोगो पर महर की। रामसिंह जी जैसे टूटे पैर वाले, जज साहब की पत्नी जैसी वृद्ध महिला, वैद्य जी जैसे हृदय रोगी और बृजकिशोर जी जैसे ब्लड प्रेशर के रोगी क्या गिरनार पर चढ सकते थे ? जिनके लिये मकान की चन्द सीढियाँ चढना कठिन है, वे हँसते हँसते गिरनार जैसी ऊँचाई पर होकर

सकुशल लौट आये। उसकी लीला ही अपरपार है। इस बच्ची के अच्छी होने के लिये उसकी महर की ही आवश्यकता है। कर्म संस्कार की बात है। कर्म के भोग तो भोगने ही पडते हैं। देखो! म्हारा (मेरा) राम को शरीर भी तो कैसा है? दाता जैसे रखेगा, रहना पडगा। यह तो ये लोग नही मान रहे हैं इसलिये जयपुर जाना पड रहा है। इलाज कराओ चाहे न कराओ, कोई फर्क नही पडता क्यो कि कम का भोग तो भोगना ही पडेगा। वह जैसे भी रखे रहो किन्तु अपने व्यवहार में अन्तर न आने दो। देखो! यह बच्ची बीमार है, किन्तु इसने आप लोगो को सेवा का अच्छा अवसर दिया है। इसकी सेवा मेरे दाता की सेवा समझ कर ही करो। सेवा का फल आप लोगो को मिलेगा ही। आप लोग अपने व्यवहार को भी सुन्दर बनालो। अपने माता पिता की सेवा भी करो। उनकी आज्ञा का पालन करना ही उनकी सेवा करना है। घरवालो के प्रति अपने कर्तव्य का पूरी तरह पालन करो। अपने को सबसे छोटा मानकर चलो जिससे बड होने का अवसर मिल सके। कोई काम मिश्री देने से चल जाय तो जहर क्यो देते हो। यह जानते हुए भी कि दुनियाँ के सभी सम्बन्ध स्वार्थ के हैं, अपने कर्तव्य को निभाओ। आप तो साधारण व्यक्ति हो, किन्तु बडे बडे भक्तो को भी कर्मबन्धन से छुटकारा नही मिला है। आपने सदना भक्त का नाम तो सुना होगा। वह जाति से कसाई था किन्तु उच्च कोटि का भक्त था। सदैव दाता की भक्ति में मस्त रहता था।"

"एक बार भक्त सदनाजी को भगवान् जगदीश के दर्शनो की इच्छा हुई। वहाँ इच्छा होते ही फिर देर किस बात की थी। उन्हे कुछ तैयारी तो करनी थी नही। न कुछ लेना ही था। हाथ में करताले ले ली और कीर्तन करते हुए चल दिये। उन दिनों में यातायात की कोई सुख सुविधा तो थी नही। अधिकतर पैदल ही यात्रा हुआ करती थी। बड आदमी अवश्य पालकियो में चलते थे। मार्ग में अनेक कठिनाइयो का सामना करना होता था। सदनाजी के गाँव से पुरी काफी दूर थी। कई दिनो का मार्ग था व मार्ग में कई अन्य छोटे छोटे राज्य पडते थे। सदनाजी को भय किस बात का था।

पैदल ही चल पड़े। दिन को पूरे दिन कीर्तन करते हुए चलते और रात्रि पड़ने पर मार्ग में आने वाले गाँव में किसी के यहाँ टिक जाते। उन दिनों आने वाले अतिथियों को रोटी देने में गृहस्थी लोग नहीं हिचकिचाते थे। साधुसन्तों की सेवा करना और अतिथियों को भोजन देने में अपना अहोभाग्य समझते थे। अतः सदनाजी को भी मार्ग में रोटी आदि का कष्ट नहीं हुआ। कीर्तन करते हुए और भगवान का गुणानुवाद करते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। चलते चलते वे एकदिन एक छोटे से राज्य की राजधानी में पहुँचे। गाँव के बाहर ही एक कुम्हार का मकान था। वहीं वे रुक गये। कुम्हार बड़ा भला और दयालु व्यक्ति था। सदनाजी के आने पर उसने अपना अहोभाग्य माना। उसने आगे बढ़कर भक्तराज का स्वागत किया और उन्हें अपने मकान के दरवाजे में स्थित चबूतरे पर बिठाया। उसी चबूतरे पर सदनाजी ने अपना आसन लगा दिया। सत्सग वार्ता होती रही। कुछ समय बाद सदनाजी को भोजन करा कुम्हार सोने चला गया। इधर थके होने से सदनाजी भी सो गये। सोते ही उन्हे निद्रा न आ घेरा।"

'कुम्हार की पत्नी बड़ी सुन्दर थी किन्तु चचल थी और वासना-कामना से युक्त थी। उसने सदनाजी को देखा तो वह देखते ही उन पर मुग्ध हो गई। सदनाजी का शरीर हृष्ट-पुष्ट था और चेहरे पर तेज था। उनका शरीर सोने की तरह चमक रहा था। वह अपने मन को नहीं रोक पाई। रात्रि को जब सब सोगये तो उसने अपना श्रृङ्गार किया। फिर भोजन का थाल हाथ में लेकर वह सदनाजी के पास पहुँची। उसने सदनाजी को जगाया और ऋतु-दान के लिये प्रार्थना करने लगी। सदनाजी उसे देख कर हक्के-बक्के हो गये। वे घबरा गये। उनका रोम रोम सिहर उठा। उन्होने विनीत हो, हाथ जोडकर नम्र वाणी में कहा कि वह तो उनकी माँ है और वह उसका बेटा है। बेटे से इस प्रकार की याचना उसे शोभा नहीं देती है। सदनाजी ने हर प्रकार से उसे समझाने की कोशिश की किन्तु उसकी आँखो पर तो वासना का चश्मा चढा हुआ था। वह तो कामदेव के बाणो से प्रभावित थी अतः सदनाजी को कई तरह

से प्रभावित करने लगी। किन्तु सदनाजी पर तो दाता की महर थी। वे तो चट्टान के समान थे। छोटी मोटी पानी की बून्दों का क्या असर होने का था। अन्त में कुम्हार की स्त्री के मन में एक बात उठी। उसने सोचा कि उसके पति के डर से शायद वह डर रहा है। उसने कहा कि अच्छा वह समझ गई। वह अभी ठीक किये देती है। वह चुपचाप अन्दर गई। कमरे में तलवार रखी थी उसे उठाई और एक ही वार में उसने अपने पति का सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर सिर को उठा, वह सदनाजी के पास गई और बोली कि उसने उसके काटे को दूर कर दिया है। अब डरने की कोई बात नहीं। वह अब निश्चिन्त होकर उसके साथ भोग करे। सदनाजी स्तब्ध रह गये। फिर कुछ शान्त होकर उसको समझाने लगे। किन्तु वहाँ क्या असर होने को था। जब बार-बार कहने पर भी सदनाजी उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हुए तो उसने चण्डिका का रूप धारण कर लिया। कहने लगी कि उसका भला इसी में है कि उसका कहना मान ले अन्यथा उसको अपराधी बना, पकड़ा दिया जावेगा। उसका जीवन ही नष्ट हो जावेगा। इस पर भी सदनाजी टस-से-मस नहीं हुए। वे जोर जोर से भगवान का नाम लेने लगे। इधर उस स्त्री ने देखा कि उसका तो धन और धर्म दोनों ही चले गये तो जोर जोर से चिल्लाने लगी। उसके रुदन का सुनकर लोग इकट्ठे हो गये। रोते रोते उसने कहा कि इस मुसुन्डे को उसके पति ने आदर के साथ ठहराया। खिलाया-पिलाया, फिर भी इस गुण्डे ने उन बातों का अहसान न मान उसकी इज्जत पर हाथ डालने का प्रयत्न किया इसने उसके पति को मार दिया। वह तो बरबाद हो गई। लोगों ने उसकी बात पर विश्वास कर सदनाजी को पहले तो खूब पीटा, फिर उसे राजा के पास ले गये। सबने मिलकर उसको दण्ड देने की फरियाद की। राजाने सभी बातें सुनी और उसको जुर्मी ठहराया। दण्ड स्वरूप राजा ने उसके दोनों हाथों को कटवा दिया। सदनाजी कुछ भी नहीं बोले। वे चुप रहे। सोचते रहे कि जैसी दाता की इच्छा। जैसा वह रखेगा, रहना पड़ेगा। दण्ड देने बाद राजाने उसे गाँव बाहर कर दिया। गाँव के बाहर आने पर सदनाजी की आँखों में आंसू आ गये। आप बता सकते हैं कि

उसके आसू क्यो आ गये ? आसू इस लिये नही आये कि उस पर अत्याचार किया गया। आसू इस लिये आये कि अब वे किन हाथो में करताल बान्ध कर दाता को रिझावेगे। एक व्यक्ति जा रहा था। सदनाजी ने उसे रोक कर कहा कि करतालो को वह उनके पैरो में बाँध दे। उसने कृपा कर करतालो को उनके पैरो में बाँध दिया। अब वे प्रसन्न हो गये। वे उस समय अजीब से लग रहे थे। हाथ उनके कटे हुए, खून से सब कपडे सने हुए और पूरे शरीर पर मिट्टी लगी हुई, ऐसी थी उनकी स्थिति, किन्तु वे मस्त थे। नाचते और कीर्तन करते हुए आगे बढने लगे। कुछ ही दिनो में वे पुरी के निकट पहुँच गये।"

"इधर पुरी के राजा को स्वप्न हुआ। स्वप्न में भगवान जगदीश ने राजा को आदेश दिया कि वे सदेह आ रहे हैं। अमुक स्थान पर रथ लेकर वह पहुँचे। साथ में सवारी का समी सामान और साज बाज होना चाहिये। रथ यात्रा हो। उनको पहचानन का यही सकेत है कि पैरो में करताल होगी हाथ कटे होगें शरीर पर मिट्टी सनी होगी। भगवान ने राजा को यह भी कहा कि वह तनिक शका न करे। उनके स्वरूप को ठाट-बाट से शहर में प्रवेश कर मन्दिर में लाया जाय। राजा की निद्रा खुल गई। वह तत्काल उठ बैठा। उसने अपने व्यक्तियो को रथ-यात्रा की व्यवस्था का आदेश दिया। शीघ्र ही आवश्यक तैयारियाँ कर दी गई। गाजो-बाजों के साथ रथ यात्रा प्रारभ हुई। गाँव के बाहर निकले ही थे कि सदनाजी आते हुए दिखाई दिये। राजा दौडकर उसके पैरो में जा पडा। उनके आनाकानी करने पर भी उसने उन्हे कन्धे पर उठा लिया। उन्हे रथ में लाकर बिठा दिया। चँवर डुलने लगे और जय-जय के नारे लगने लगे। सवारी धीरे-धीरे आगे बढी व मन्दिर में पहुँची। सदनाजी रथ से उतर कर सीधे मन्दिर में पहुँचे। ज्योही वे भगवान के नजदीक पहुँचे की लोहे की अर्गेला अपने आप खुल गई और मन्दिर के कपाट खुल गये। जब सदनाजी भगवान जगदीश को प्रणाम करने लगे तो उनके दोनो हाथ पूर्ववत् ही आ गये। इस पर सदनाजी रो पडे और दीन स्वर में बोल उठे। उन्होने आर्त वाणी में पुकार की।

उनकी पुकार इस प्रकार थी। 'हे नाथ ! यह क्या है ? क्यो तो तुमने इतनी पिटाई करा हाथ कटाएँ ? जब तुम्हे मुझको दण्डित करना ही था तो फिर यह सम्मान क्यो करवाया ? क्यो रथ में बिठा सवारी निकलवाई और हाथ वापिस लौटाये ?' तब आकाश वाणी हुई, 'हे भक्तराज ! तुम मेरे परम प्यारे भक्त हो। मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नही रह सकता। किन्तु मै करू तो क्या करू। मै भी मर्यादा मे बधा हूँ। यह सब कर्मचक्र का खेल है। कर्मफल तो सभी को भोगना ही पडता है। पूर्व जन्म मे तुम एक सात्विक ब्राह्मण थे। एक दिन तुम घर से बाहर निकल रहे थे कि एक गाय भागती हुई आयी और तुम्हारे पास होकर तुम्हारे घर में चली गई। उसके पीछे कसाई था। वह उस गाय को मारने जा रहा था। उसने आते ही गाय की माग की। गाय रक्षार्थ तुम्हारे पास आयी थी। तुमने, बिना सोचे समझे, तुम्हारे दोनो हाथो से उसे पकड कर कसाई को पकडा दी। कसाई ने घर जाकर उस गाय को मार डाला। इस जन्म में वह गाय तो कुम्हारिन बनी। कसाई कुम्हार बना। पूर्व जन्म के कर्म-बैर के अनुसार उस गाय रूप कुम्हारी ने उस कसाई रूप कुम्हार को मार दिया। तुम्हारे दोनो हाथो ने उसे पकडा था अतः हाथ कटाने पडे। किन्तु यह अपराध अनजाने हुआ था और तुम मेरे प्यारे हो, इसलिये ये हाथ पुन तुम्हे वापिस दे दिये गये।' यह है कर्म फल। बडे-बडे भक्तो को भी कर्मफल भोगना ही पडता है। अतः आप लोग उसी का आसरा रख कर काम करो। दाता की दया से सब अच्छा ही होगा।"

"आप जानते हैं कि सामान्य जल की बून्दें हरियाली पैदा करती है, किन्तु भयकर वर्षा से सभी हरियाली नष्ट हो जाती है। भारी वर्षा विनाश का कारण बनती है। ससार का भार तो भारी शिला के समान है। जिस प्रकार शिला का भार असह्य होता है, उसी प्रकार ससार का भार भी है। शरीर से अशक्त व्यक्ति भार स्वरूप होता है वह प्रभु स्मरण भी नही कर सकता पर सशक्त व्यक्ति भी समय को व्यर्थ में गवाएँ यह तो विचित्र बात ही है

टूटी गाडी भार होती ही है, किन्तु अच्छी गाडी बेकार पडी रहे, इसमें विचित्रता है।"

"सब काम दाता के ही है अत. हमें तो किसी भी बात की चिन्ता नही करनी चाहिये। चिन्ता करना अच्छा नहीं है। चिन्ता तो चिता के समान है। यह बन्दे के शरीर को क्षीण कर देती है। शरीर को स्वस्थ रखना'जरूरी है। इस शरीर में रहकर ही हम दाता की अनुभूति करते हैं। कहा भी है कि 'सच्चा सुख निरोगी काया।' अत शरीर को निरोग रखन के लिये उसका ध्यान रखना चाहिये। चिन्ता शरीर को क्षीण कर रोगी बना देती हैं। वैसे हमें सोचना चाहिये कि जब दाता हमारे रक्षक है तब हमें चिन्ता किस बात की। दाता जो भी करता है, हमारे लिये अच्छा ही करता है।"

"हम तो सदैव दाता की मस्ती में मस्त रहना चाहिये। एक बार म्हाका (मेरा) राम वृन्दावन म गया। वहाँ एक सेठ मिला। उसने कहा कि अब सब छोडकर वृन्दावन में ही निवास कर देना चाहिये। वृन्दावन पवित्र भूमि है। भगवान कृष्ण की लीला स्थली है। अपने शेष जीवन को यही बिताना चाहिये। हमने कह दिया कि लोग-बाग छोडते ही नही हैं। वह हस पडा और बोला कि यह क्या मोह-माया है। इन सब को छोड कर यही मस्त रहना चाहिये। वह तो सभी जगह है। हमने कहा जब वह सब जगह है तो जितना वह यहाँ है उतना ही वहाँ भी है। यहाँ भी है और वहाँ भी है फिर कही भी रहो क्या फर्क पडता है? सेठ जी ने भला ही कहा था। कोई बुरा नही है। बुरा है तो अपना मन ही बुरा है। इस मन को दाता में लगाने पर ही मन अच्छा हो पाता है अत उसी में मन लगा दो।"

श्री दाता ने यह भजन बोला —

लाग्योडी कोनी छूटे रे मोहन सू प्रीतडली,
मैं जमना जल भरवा जाऊ सिर धर गागरडी,
साकरी गली म मोहे गिरधर मिलिया, आवे लाजरडी,

जमुना तट पर कृष्ण कन्हैया बजावे बासुरडी,
बासुरिया पे लगे पेरवा नाचे गुजरडी,
आमे सामे महल मालिया बीच में आमडली
आधीरात ने मोहन मिलिया होगई बातडली,
सतगुरु आया पावणा जी राधो खीचडली,
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरणों में प्रीतडली।

श्री दाता ने फरमाया, "हमारी प्रीति तो हमारे पिया से है। उससे जो प्रीति लग चुकी है वह अब छूटने की नही है। लाख प्रयत्न कोई क्यो न करे किन्तु इसमें कमी आने का कोई सवाल ही नहीं है। यही प्रीति हमें हमारे पिया से मिलाती है। पिया के मिलने की ही चाह है। पिया मिला नही कि हमारा जीवन सफल हो जावेगा। शरीर उस अनन्त प्रकाश से जगमगा उठेगा। अत उस पिया की मस्ती में खूब मस्त रहो।

० ० ०

सच्ची पूंजी

श्री दाता के शरीर के अस्वस्थ हो जाने के कारण दिनांक ७-९-८१ को उनका पधारना जयपुर हुआ। जयपुर में सेठी कॉलोनी में प्रभुनारायण जी के बगले पर विराजना हुआ। यह स्थान जयपुर के पूर्व की ओर शहर के छोर पर गलता जी के पास स्थित है। एकान्त स्थान होते हुए व शहर से दूर होते हुए भी भक्तजन मालूम होते ही उमड़ पड़े। दिनांक ९-९-८१ को कुछ डाक्टर लोग भी दाता के पास बैठे थे, उस समय एक डाक्टर साहब को सम्बोधित करते हुए श्री दाता ने कहा,–

"डाक्टर साहब! क्या बिना फ्रेम के कोई चित्र देखा है ?"

डाक्टर साहब . "देखा है! फ्रेम को हटा देने पर चित्र तो सामने दिखाई देता है।

श्री दाता (हंसते हुए)..."आपने कभी बिना फ्रेम के चित्र को नहीं देखा होगा। आप इस लकड़ी और काच के फ्रेम की बात कर रहे हैं, किन्तु इसको हटाकर देखो तो भी चित्र तो आपको फ्रेम पर ही दिखाई देगा। हां! वहाँ चित्र कागज, प्लास्टिक या अन्य किसी पर हो। कहने का मतलब है कि जितने भी शरीरधारी है वे तो फ्रेम हैं और उनमें तस्वीर मेरे दाता की है। कमरे में टंगी हुई तस्वीर की तरफ संकेत करके, इसके द्वारा ही अनुभूति एव दर्शन होते हैं। एक बच्चे के हाथ में रोशनी दे दी जाय तो वहाँ अंधेरा होते हुए भी प्रकाश हो रहेगा। ससार रूपी यह अधकार है और मन रूपी बच्चा है। यह मन रूपी बच्चा यदि दाता रूपी रोशनी को पकड़ ले तो ससार रूपी अंधेरे में प्रकाश ही प्रकाश हो जावेगा।"

श्री दाता ने एक भजन सुनाया:—

अचरज देखो भारी, साधुभाई अचरज देखो भारी।
बिना भूमि के महल बना है, जामें ज्योति ऊजारी।

अंधा देखे देख सुख पावे, बात बतावे सारी।
अचरज देखो भारी, साधु भाई अचरज देखो भारी ॥

कहने का मतलब है कि जब इन इन्द्रियों का सम्बन्ध सब खत्म हो जावेगा तब ही उस (दाता) की प्राप्ति हो सकेगी। एक वृक्ष के कितने डाले और गोरल (शाखाएँ) हैं। क्या आप उन सबकी गिनती कर सकते हैं ? यों कहो तो वे अनन्त हैं, और दूसरी तरह कहो तो वह एक है। वह एक इस माने में है कि ये सब एक वट वृक्ष का ही रूप है। एक बीज का सकल पसारा है। जैसे शरीर तो एक है, पर एक में आप अनन्त है। आप बता सकते हैं कि आपके शरीर में आप कितने हैं ? कितने बच्चे-बच्ची आप में भरे पड़े हैं ? फिर एक एक बच्चे-बच्ची में कितने बच्चे-बच्ची हैं ? आप हैं न अनन्त। और उन अनन्तों म आप एक ही हैं। वे सब आपके ही तो हैं। आपका ही तो अंश है अत आप ही हैं। इसी तरह मेरे दाता एक होते हुए भी अनन्त हैं और उस अनन्त में दाता एक है।"

"परमहंस श्रीरामकृष्ण देव एक बार मन्दिर में पधारे। कालिका के मन्दिर में द्वादश ज्योतिलिंग हैं। उन मन्दिरों में अनेक देवताओं की मूर्तियाँ हैं। परमहंस जी ने ज्योतिलिंगों को भी प्रणाम किया और उन सब देवताओं को भी। एक शिष्य से न रहा गया। उसने पूछ ही लिया कि वे सभी को प्रणाम क्यों कर रहे हैं। उनका उपदेश तो है कि केवल एक को ही नमन करो। अब उनकी कथनी और करनी में विरोधाभास क्यों है ? इस पर परमहंस जी ने "फरमाया कि उनकी दृष्टि में भेद है। उन सबको वे ज्योतिलिंग और देवता अलग-अलग दिखाई दे रहे हैं किन्तु वे तो उन सब में एक ही का दर्शन कर रहे हैं। वे तो उन सब में माँ को ही देख रहे हैं और उसे ही प्रणाम कर रहे हैं।"

"पांचों तत्वों में एक दाता ही है। तुम सबको नमस्कार करोगे तो भी एक को ही नमस्कार करोगे। सारे विश्व में जब तक पांचों तत्वों में वो ही वो दरशे (दिखाई दे) तब तक आनन्द ही

आनन्द है। यदि तुम पत्ते पत्ते और तार तार में उसे देखोगे तो सारी उम्र ही बीत जावेगी क्योंकि तुम उसके विभिन्न रूपों की गिनती नहीं कर सकोगे। यह तो अनन्त है। जितनी दौड लगावोगे उतना ही भटकोगे। अतः बीज को पकड लेने में ही सार है।'

'एक श्वास में जन्म-मरण होता है। श्वास आयी तो जिन्दा है और श्वास निकली तो मुर्दा। यह जन्म-मरण का चक्र है। यह विश्व एक घडी के सदृश है। सूर्यनारायण उत्तरायण दक्षिणायण आते जाते एक वर्ष हो जाता है। उसी तरह यह श्वासा ऊपर से नीचे आ जाती है तब ही एक जीवन हो जाता है यह पिन्ड है। एक श्वास से आनन्द ले लो तो उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता है। यह जो भौतिकता है वह सब व्यर्थ है। जब तक एक श्वास में उसकी (दाता की) झलक नहीं मिले तबतक यह सब खाक है। एकही श्वास में अनन्त जीवों की उत्पत्ति हो रही है और सहार हो रहा है। अतः इस जीवन में एक बार भी दाता की झलक के दर्शन हो जावे तो बडा अहोभाग्य है। सुन्दरी तो पिया के मिलने को शृङ्गार करके ही आती है। उसी तरह यह शरीर रूपी सुन्दरी अपने पिया से मिलने को शृङ्गार करती है।'

"लोग शिकायत करते है कि उनका मन नहीं लगता। यह कैसी विचित्र बात है। मन तो कहता है कि वे लोग व्यर्थ की बकवास करते हैं। उन्हें तो तनिक सी फुरसत नहीं मिलती। व्यर्थ में उसको (मनको) कलंक लगाते हैं। वे लोग पूरे दिन भर तो अपने घर के धन्धों में ही उलझे रहते हैं। उनको फुरसत मिले और उनसे यह ससाररूपी घर छूटे तब है न। कैसी ठीक बात कही है, मन ने। आप लोग जितने प्रपच इस ससार के लिये करते हो और जितने नाच इसके लिये नाचते हो, उसका शताश भी तो उसके (दाता के) लिये नाच कर देखो। जब इस शरीर रूपी सुन्दरी को तनिकसी भी झलक अपने पिया की मिल जावेगी तो यह शरीर ही जगमगा जावेगा। उस समय इसके सभी शृङ्गार नीचे रह जावेंगे। आप लोग क्षणिक सुख देने वाले भोगों को बहुत ही महानता देते हो। आपने देखा होगा, अमीर लोग अपने बच्चों की शादी में करोडों रुपये खर्च

करते हैं। वे लोग धन का धूआ कर देते हैं। शादी तो थोडे में भी हो सकती है। बेचारे गरीब लोग तो कुछ ही रुपयों में अपना काम चला लेते हैं। कहने का मतलब है कि हम क्षणिक भोगो को कितनी महानता दे रहे हैं। जिसको महानता देनी चाहिये उस ओर तो हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। हम लोगो ने तो वासना और कामना को ही सपत्ति समझ रखा है। हम मल-मूत्र को ही मूल पूजी समझ गोते लगा रहे हैं, और उसी में आनन्द की खोज कर रहे हैं। बलिहारी है हमारी और हमारी बुद्धि की।"

"सच्ची पूजी तो दाता ही है। उस पूजी के प्राप्त किये बिना हम सब भिखारी है। हम व्यर्थ ही गाल बजा रहे हैं। चाहे राष्ट्रपति हो, चाहे मत्री हो और चाहे कोई भी हो, इस पूजी के बिना सभी भिखारी है। आप लोग मल-मूत्र के चक्कर में मस्त हो। आपको यह भी मालूम नही है कि कब आपको फांसी के तख्ते पर लटका दिया जावेगा। जो सब कुछ है जिसने आपको सब कुछ दिया है और जो आपका पूर्ण रूप से हितु है, उसको आप अपने अन्धेपन और दीवानेपन से ही भूल रहे हो। करम-भरम आते हैं। दुख-सुख भी आते हैं, किन्तु उसको आप मत भूलो। यह सब उसकी महर का ही सौदा है।"

"दाता हर प्राणी को समझने का मोका देता है। उसकी महर का सकेत होता है, किन्तु मनुष्य तो अपने दिवानेपन में उसकी परवाह ही नही करता, तो फिर मेरे दाता क्या करे? व्यास जी मदन गोपाल जी के यहाँ लडकी की शादी थी। म्हावा (मेरा) राम को वे बीकानेर ले गये। वहाँ उन्होंने कहा कि यह भात सर जाना चाहिये। दाता की उन पर महर थी। उनको कहा गया कि यह तो ठीक है, किन्तु उन पर दाता की महर है। उनको जो भी इच्छा हो दाता से मागले। एक बार नही तीन बार उनको यही सकेत हुआ, किन्तु तीनो ही उन्होंने यही कहा कि भात जाना चाहिये। अब आप ही बतावो मेरे दाता क्या करे? हमें वहाँ से बिना भोजन ही आना पडा। भात तो इतना सरा कि बाद में भी छ. माह तक

उसे खाते और बांटते रहे। भौतिकवादी वस्तुएँ, उसकी महर है, सो मिलती ही है। जब अवसर मिला तो फिर उसे ही मागना चाहिये। जब कोठार सामने है और उसकी ताली भी ताली वाले के साथ सामने है, तब कोठार से साधारण वस्तु मागने में क्या तुक है? ऐसे समय में तो कोठार की ताली या कोठार के मालिक को ही क्यो न लिया जाय? किन्तु हमसे होना कहाँ है? हमें तो कीचड में ही फँसे रहने की आदत हो गई है हमें तो गन्दगी ही पसन्द है, अत जब अवसर आता है तो भी हम गन्दगी ही माग बैठते हैं। आप इस गन्दगी में बैठे हो इसलिये आपको आपकी लाज प्यारी है। इसीलिये तो जब दाता की ओर आपकी दृष्टि जाती है तो भी यही कहते हो कि हे भगवान् मेरी लाज रखलो।"

आप लोग कहते हो--

मेरी पत राखो गिरधारी, आया शरण तिहारी,
छोड तुम्हारा द्वार प्रभु मैं किसके द्वारे जाऊ।
जग में मेरा कौन सहारा, किसकी आस लगाऊ
देखो मेरी बीच भँवर में डूब रही है नैया।
चारो ओर है घोर अन्धेरा, तू ही है एक खेवैया।
तूफान उठा है भारी, तेरी शरण हूँ गिरधारी।

अरे! लाज आपकी कहाँ, लाज तो उसकी है जब तक आप अपनी लाज समझेंगे तब तक दु ख ही दुःख है। उसकी लाज समझलो तो सारा ही टटा मिट जावेगा। वही सत्य है और वही सार है। बस उसीका सहारा रखो, सो आनन्द ही आनन्द है।"

श्री दाता ने यह भजन सुनाया:-

बडी अनोखी रीत प्रभु की बडी अनोखी रीत,
हसना सीखा हमने रोकर, सब कुछ पाया सब कुछ खोकर,
हार में देखी जीत, प्रभु की बडी अनोखी रीत ॥
अपन पैमो में पराये जीवन साथी काम न आये,

मन ही मन को यो भरमाया, कोई न तेरा मीत,
लोक लाज को छोड सहेली, पिया मिलन को चली अकेली,
कोई न सगी कोई न बेली, जब पिया से लागी है प्रीत।
बडी अनोखी रीत प्रभु की बडी अनोखी रीत॥

हार में ही जीत है। असफलता में ही सफलता है। असफलता ही सफलता की कुञ्जी है। प्रभु की लीला ही अद्भुत है। वहाँ तो सब कुछ निछावर कर देने और उसके सम्मुख सब कुछ हार जाने पर ही वह मिलता है। वह मिल जाता है तो जीत है। इसके अलावा जीत और क्या है? आप लोग उसकी इच्छा तो करलो। आपकी भौतिक इच्छाएँ, नही होनी चाहिये। उसकी (दाता की) इच्छा के अतिरिक्त अन्य इच्छाएँ यदि हमारी पूरी न होती हो तो न हो। हमें वे इच्छाएँ पूरी न हो तो चिन्ता नहीं होनी चाहिये। हमें भौतिक इच्छाओ से बिलकुल परे होना चाहिये।" जोधपुर वाले जोशी जी ने श्री दाता को भजन सुनाये। भजन सुनने के बाद श्री दाता ने फरमाया, "महाभारत के युद्ध में कर्ण जब अपने बाणो से अर्जुन के रथ को तीन पांवडे पीछे हटा देता था तब भगवान् श्रीकृष्ण कर्ण के शौर्य की प्रशसा में 'वाह कर्ण, वाह कर्ण' कह उठते थे। इधर अर्जुन के बाण कर्ण के रथ को तीन सो पावडें पीछे हटा देता तो भी भगवान नही बोलते। इस पर अर्जुन को दुःख हुआ।"

इस प्रसंग में अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण के बीच जो बात हुई वह नीचे अनुसार है:—

अर्जुन——हे जनार्दन! हे माधव! यह आप क्या कर रहे हैं। आप मेरे रथ के तीन पावडे पीछे हटने पर, कर्ण की बडी प्रशसा कर रहे हैं। मैं भी तो कर्ण के रथ को अपने बाण से तीन सो पावडे पीछे हटा रहा हूँ। उसका बाण केवल तीन पांवडे और मेरा बाण तीन सो पावडे रथ को पिछे हटाता है। आप मेरी प्रशसा में एक शब्द भी नही कह रहे हैं।

श्रीकृष्ण——"तुम मुझ को क्या समझते हो?"

अर्जुन—"आप समस्त विश्व के मालिक हैं।"

श्रीकृष्ण—"तुम्हारे रथ पर कौन बैठा ?"

अर्जुन—"भक्तराज हनुमान बैठे हैं।"

श्रीकृष्ण—हे अर्जुन तुमने गीता के रहस्य को इतना जल्दी भुला दिया। तुम्हारे रथ पर मैं अर्थात् साक्षात नारायण ही विराजमान हूँ। तुम नर रूप में रथ पर बैठे हो। तुम्हारे रथ की पताका पर मेरा परम भक्त, परम शक्तिशाली और वीर पवन पुत्र स्थित है। कितना भार है तुम्हारे रथ पर। इतने भार को यदि कर्ण अपने पराक्रम से तीन पावडे पीछे हटा रहा है तो क्या यह प्रशंसा की बात नहीं है। कर्ण के रथ पर तो केवल एक नर का ही भार है। तुम्हारे रथ और उसके रथ की तुलना तो करो।

भगवान् श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर अर्जुन शान्त हो गया। भगवान की बात उसको समझ में आ गई। मन रूपी अर्जुन है और आत्मारूपी सतगुरु। मन जब तक सद्गुरु को नहीं पहिचानता है तब तक शंका करता है। सतगुरू के प्रति शंका होना बुरी बात है। जब दाता की इतनी महर है तो यह मन क्यों गन्दगी में भटकता है। इस मन को दाता की महर को पहिचानना चाहिये।"

श्री दाता ने जोशी जी से पूछा, "आपने अभी जो पुष्प चढाये, वे किस को चढाये।'

श्री जोशी—"जिसके थे उसी को चढा दिये।"

श्री दाता—"इसीलिये तो हमने आपको नमन किया था, क्योंकि आप रूप आपने आप रूप आपको ही पुष्प चढाये थे। इस गाड़ी का कोई मूल्य नहीं। इसमें रखे सामान का मूल्य नहीं। इसमें रखे सामान का मूल्य है। अत: इन गाडियों में जो वस्तुएं है वे ही तो प्रमुख हैं और मूल्यवान् है।"

वन्दा "फूल क्यो चढाते है।"

श्री दाता ' 'फूल का मूल बीज है और उसी बीज में सारा विश्व है। इस काया रूपी विश्व का जितना भी आकार-प्रसार है वह सब इस मनरूपी फूल का है किन्तु हम भूल जाते हैं कि इस मनरूपी फूल का बीज वह सत्य स्वरूप है।

यह तनविष की बलरी गुरु अमृत की खान।
शीश दिया जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥"

एक नव युवती वहाँ बैठी थी। श्री दाता ने उसे पूछा, 'तुम्हारा पिया कहाँ है ?" यह बात सुन कर उसने अपना शीश झुका लिया। इस पर श्री दाता ने कहा, ' ठीक है ! इसका जवाब तुम नही दे सकती हो, क्योकि यह वस्तु और पिया का प्रेम दिखाने की वस्तु नही है। यह तो अनुभूति का विषय है। जो शब्दो में नही बाधा जा सकता है। आप लोग बतावे कि सारी नदियाँ समुद्र में दौड कर जाती है या समुद्र नदियो के पास जाता है।

वन्दा ' दिखने में तो नदियो ही समुद्र में जाती हैं।"

श्री दाता' ' 'समुद्र भी तो नदियो के पास जा रहा है। समुद्र का पानी भाप बनकर उडता है और वर्षा के रूप गिरकर नदी में जाता है और फिर नदी रूप होकर वापिस अपने स्थान पर चला जाता है। नदी तो गति हीन है। उसके पास तो अपनी कोई गति ही नही है। जो कुछ है वह समुद्र ही है। उसी प्रकार हमारी तो कोई गति ही नही है। गति तो दाता की ही है।"

इसके पश्चात् जोशी जी ने भजन सुनाया। अन्तराल में श्री दाता ने कहा—

"सन्त सन्त सब बडे है, इनमें कोई न छोट।
आतम दर्शी वही है और सब चाकर मोठ॥"

जितना भी गाना-बजाना है, गाना गाने वाला, तबला, बाजा, सब एक ही सार में आजावे तब आनन्द-ही-आनन्द है।'

बन्दा "सत्गुरु कैसा है?'

श्री दाता "वह तो महान् है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उसका ही स्वरूप है।

बन्दा "यह कैसे?"

श्री दाता---' सत्गुरू अरूप है सरूप है, नामी है, अनामी है, बडनामी है और गणनामी है।

मारी हेलीए!

अगम पन्थ गली साकरी, चढणो दुस्तर होय।
जीवतडा नही चढ सके, मुडदा ने परवा नाँय ॥ मारी
जीवत मृतक दोनो तजे सो बैठे घर पाय।
नही बके और ना चुप रहे नही बैठे नही घाँय ॥ मारी
है छता वे ना रेवे, मिल गलतान समाय।
चाँद सूरज जहाँ है नही, नही सुखमण को खेल।
बिना दीपक ज्योति जगे, अनन्त सूर को तेज ॥
जीव बिना रो जीवणो, देह बिना सब काम।
मानसिंह सब ने कहे, मेरो ही रूप तमाम ॥ मारी हेलीए!

ज्ञान, ध्यान, कीर्तन, भजन सब मन के लिये है। दाता न तो मन्दिर में है, न अन्यत्र है। वह तो आप ही आप है, जो मनस्थिर होने पर प्राप्त होता है।

काजी भूला, पण्डित भूला, देख देख दफ्तर ने।
बावन अक्षर काल को चारो, उबरोला किस घर में ॥
साधुभाई नही है मन्दिर मस्जिद में, जावोला जब घर में
तब दे खोला हर दर में। साधुभाई

ज्ञान के द्वारा उसे प्राप्त करना कठिन है। काजी, पण्डित, आदि इसी ज्ञान चक्र में उलझ कर यो ही रह गये। वहाँ तो ज्ञान का अन्त कर प्रेम द्वारा जो बढना है, वही उसे प्राप्त कर सकता है। ज्ञान अथाह है उसका पार नही। अत्र ज्ञान प्राप्त करते करते ही दिन बढ गया तो जीवन ही व्यर्थ गया।

ज्ञान कथू तो पार नही भजन का है उलझाडा।
गिरधर गेला तो ऐसा वरा मारा सतगुरु जो उपर वाडा सूतेडा॥

वह न तो दूर है, न पास है। वह तो आपकी लगन में है। आप को दुःख किस बात का है।

पाच तत्व परे पार है, और पाच तत्व रे माँय। मारी हेलीए!
अन्दर बाहर सरीखो रह्यो, छिन्नभिन्न कछु नाँय।
दूजो लखे दुखिया रहे, एक लख्याँ सुख पाय॥ मारी..
मन बुद्धि चित एक है डारे कल्पित नाम।
वो ही तो जीव, वो ही ब्रह्म है, वो निज सब को राम॥
वो ही अविद्या आप है, और वो ही करत फिर नाश।
माया ने ब्रह्म दूजो नहीं माया ब्रह्म के पास॥
देवनाथ समरथ मिल्या, समरथ सैन समाय।
मानसिंह निज रूप है, दूजो कौन बिध पाय॥

मेरे दाता पाच तत्वो से परे है, और वह पाच तत्वो में है। वह एक रूप है। सब रूप उसीके हैं और वह सबो में है। जो वन्दा उसे भिन्नभिन्न रूप में देखता है वह भ्रमित होता है। भिन्न-भिन्न रूपो में उस एक को देखने में ही सच्चा आनन्द है। सब कुछ वही है। वही जीव है और वही ब्रह्म है। ज्ञान और विज्ञान सब उसीके है और वह ज्ञानविज्ञान से परे है। उसी दाता का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। दाता कैसा है इसके लिये वेदो और शास्त्रो ने भी हाथ ऊँचे कर दिये हैं। उन्होने भी 'नेति' 'नेति' कह दिया। उसके लिये कोई नही कह सकता है कि वह है क्योकि उसको किसी ने नही देखा और यदि कह दिया जाय कि वह नही है

तो कैसे काम चलेगा, कारण यह जो सब कुछ पसारा है, सब उसी का है। रोमरोम में तो वह बस रहा है उसके अस्तित्व के बारे म शका करना निरी मूर्खता है। वह तो है और 'नही के परे हैं।

है कहूँ तो ना बने, ना कहूँ कहियन जाय।
हैं नही के मध्य, याही म आप समाय॥

अज्ञान से ज्ञान की प्राप्ति होती है और जहाँ ज्ञान थक जाता है वहाँ सब कुछ मिल जाता है। ज्ञान क थकने की ही बात है, किन्तु सासारिक समस्याएँ ऐसा होने नही देतीं। इस ससार रूपी सागर की समस्याएँ बडी ही जटिल है जिनसे पार पाना कठिन है, किन्तु आप मानते कहाँ हैं? आपने तो सबको अपने सिर पर उठा रखा है। उनसे अलग होने की आपको फुरसत ही नही है। उनसे अलग होकर मन को दाता में लगाना ही होगा। आनन्द प्राप्ति का एकमात्र मार्ग यही है। दाता के अनेक रूप हैं किन्तु वे कथनी में नही आते। आप लोग इन रूपो को देखने की कोशिश ही क्यो करते है? आप तो गोपियो की तरह सब रूपो म उस एक को देखो। उसे सरलता से देखना चाहो तो ज्ञान, योग और कर्म क्षेत्र को छोड प्रेम मार्ग को अपनालो। वहाँ आपको ऐसा ब्रह्म मिल जावेगा, जो आपको गोदी म ले खिलावेगा। यह हर प्रकार से आपका होकर रहेगा। आप उसकी चाह तो करो। उसे रो कर देखो। आपकी आसू की एक एक बूद में वह स्थित है। बस उसकी लगन में लग जाओ। आपको अन्तर चाह है तो सब कुछ है।'

श्री दाता ने यह भजन गाया :—

माने देखत आवे हाँसी, पानी में मीन प्यासी।
आतम ज्ञान बिना नर भटके, कोई मथुरा कोई काशी।
जैसे मृगा नाभि कस्तुरी वनवन फिरत उदासी॥ माने
जल बिच कमल, कमल बिच कलिया, तापर भँवर निवासी।
सो मन वश त्रिलोक भयो, सब पति जाती सन्यासी॥ माने

जा को ध्यान धरे विधिहर हरि, मुनि जन सहज अन्यासी।
सो तेरे घट माहि बिराजे, परम पुरुष अविनाशी॥ माने
हैं हाजिर तो हे दूर लखावे, दूर की बात निरासी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, गुरू बिन भरम न जासी॥माने

समझ में नही आया कि समुद्र का पानी खारा है या मीठा। खारा भी है और मीठा भी है। इस ससार रुपी सागर का पानी खारा है। इसको मीठा बनादो। इस सुरता रूपी मछली को आनन्द रूपी जल पिलादो। आनन्द रूपी जल मिलते ही वह निहाल 'हो जावेगी।"

"आप उसको देखना चाहते हो क्या? हमें तो इसी में शका और भ्रम है। देखने का मतलब हुआ कि अभी तक आपको उसमे (दाता में) विश्वास नही है।' श्री दाता इतना फरमा कर बिराज गये। श्री जोशी जी ने भजन गाया। अन्य लोगो ने भी साथ दिया भजन था—

मारा जन्म मरण का साथी, थाने नही विसरू दिन राति।
था देख्या बिन कल न पडत है जानत है मोरी छाती।
ऊँची चढ चढ पन्थ निहारुँ निरख निरख सुख पाती।
यो ससार सकल जग झूठो, झूठा कुलरा न्याती।
दोऊ कर जोरी अरज करू छू सुन लीजो मोरी बाती।
यो मन मारो बडो हरामी ज्यो मद मातो हाथी।
सतगुरू हस्त दियो सिर ऊपर अकुश दे समझाती।
पल पल प्रभु को रूप निहारू निरख निरख सुख पाती।
मीरा के प्रभु गिरधरनागर, हरि चरणाचित राती॥

श्री दाता हरि चरणाचित राती। पलक की झलक में पिया की झलक मिल गई। आँख की पलक देखी या नही। वही तो श्याम है श्याम में ही श्याम है। दोनों ही उसके ही रूप हैं। वह दोनो ही रूपों में है। गति ही ऐसी है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्ह हो जाई।
एक बन्दा "पिया का नशा तो पिया स्वय ही करा सकता है।"

श्री दाता "कर्म प्रधान है। कठ पुतली का खेल रात्रि में होता है और परदे में होता है। भ्रम यही है कि कठ पुतलियाँ उस खेल को अपना समझ बैठती है। खेल खिलाडी का है। वही नचा रहा है और हम नाच रहे हैं। उसकी कोई सीमा नहीं। वह तो असीम है। कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि यदि महाभारत जीतना है तो उन्हे ही सारथी बना लो और सदैव उनको ही याद रखो। सदैव उन्ही को देखो। जीव रूप अर्जुन है। पाचो तत्व पाचो पाण्डव है। मन रूपी घोडा है और वृतियाँ रूपी वाघा (लगाम) हैं। कर्म बन्धन से मुक्त होने पर ही जीत है। आप जब उसमें लीन हो जावोग, तो न तो वह दूर है और न तुम उससे दूर हो। इस मन रूपी घोडे को खूटे से बाध दो। इसकी उछल कूद मिट जावेगी। इसको सतगुरू के चरणो में लगा दो।

बहे बहाये जात थे लोक वेद के साथ।
पैंदे में सत्गुरु मिल्या, दीपक दीना हाथ॥

इसके पश्चात् श्री दाता ने भजन बोला –

मे नही जानू सजनी प्रीतम कैसे मिले।

देखो ता इस काच की हाडी में कुछ भी नहीं है। न बल्ब में कुछ है। पावर हाऊस में भी कोई शक्ति नही है। पावर हाऊस अकेला रोशनी नहीं दे सकता है। बल्ब के माध्यम से ही रोशनी देता है। यदि स्वाद चाहते हो तो आप ऊँचे से ऊँचा भोजन कर लो आपको कोई स्वाद नहीं आवेगा। यदि भूख है तो ठण्डी रोटी में भी स्वाद आ जावेगा। भूख में ही स्वाद है। हां! आपको भूख नही हो तो भूख लगाने की कोशिश करो। अपच होती है, तो लोग वैद्यो 'और डाक्टरो' के पास जाते हैं। वहाँ जाकर चूरण लेते हैं। आप भी जाओ और चूरण ले लो। सत्सग रूपी चूरण आपकी इच्छा रूपी भूख को बढा देगा। 'लोमडी के अगूर खट्टे ना करो।'

जबतक आपकी लौ अर्थात् लगन मडी यानी कमजोर है तब तब काम चलने का नही। आप अपनी लगन को मजबूत बना लो तो आपको पलक की झलक में पिया मिल जावेगा और यह काया रूपी चूदडी अमर हो जावेगी। उसकी लगन में मगन हो जावो। इसके अलावा हमने न तो कुछ किया और न करने योग्य शरीर है। यह शरीर तो असमर्थ है। बीमारियों का घर है। उसकी महर से ही सब कुछ है।

० ० ०

आवश्यकता में कमी

दिनांक ९-९-८१ को रात्रि के बारह बजे का समय था। उस समय श्री दाता की तबीयत ज्यादा खराब थी। डाक्टर लोग, वैद्य लोग, प्रोफेसर लोग और अन्य लोग बैठे थे। श्री दाता कमरे से बाहर पधार गये। वे इन लोगो के पास जाकर विराज गये। जयपुर के अन्य लोग भी आ गये। कुछ देर बाद श्री दाता बोले। उन्होने कहा,

"कश्यप साहब ! बाजार में अनेक धातुएँ मिलती होगी। जयपुर में क्या क्या मिलती हैं।

बन्दा ' 'भगवन् धातुएँ तो करीब करीब सब ही मिलती है। लोहा, ताम्बा, पीतल, सीसा, आदि।

श्री दाता "सोना चाँदी भी मिलता होगा।'

बन्दा "हाँ भगवन्। मिलता है। जरूरत हो तो पेश किया जाय।

श्री दाता, . "जरूरत की बात नही है, योही पूछा है। इन धातुओ में ऊँची कौनसी है।"

बन्दा . . ' इस वक्त तो सोने का भाव सब से ऊँचा है। इस . समय तो १० ग्राम सोने का मूल्य १७८० रु हैं। पीतल तो ५० रु किलो मिलता है। लोहे का भावभी कम ही है। ताम्बा कुछ मँहगा है।'

श्री दाता. "तो सोना ही सब से ऊँचा है। ऊँचा इसीलिये है कि उसका भाव ऊँचा है। वैसे प्रयोग की दृष्टि से देखो तो लोहा बहुत ऊँचा है। यह सब मशीने लोहे की बनी हुई है। हथियार, जिनकी सहायता से बड़े बड़े देश जीत लिये जाते है इसी लोहे से बनते हैं, किन्तु उसका मूल्य सोने के मुकाबले कुछ नही है कारण

केवल भाव का ही है। सोने का भाव बाजार में ऊँचा है इसलिये उसको सबसे ऊँचा मानते हैं। यदि लोहे का भाव ऊँचा होता तो लोहे को ऊँचा मानने लगते। यह तो भाव की ही बात हैं। भाव की वजह से ही वस्तु ऊँची नीची है। इसी तरह जिस मनुष्य के भाव ऊँचे होते हैं वही बडा होता है। वही महान् है। उसकी ही पूछ होती है। उसकी ही लगन दाता की ओर होती है। अत आप भी इस पाच तत्वो के पिण्ड में रहते हुए अपने भाव ऊँचे करलो। ऐसा करने पर दाता आपसे दूर नही है कहने का मतलब यह है कि आपके भाव ऊँचे होना चाहिये जिससे आप बडे बन सको।'

' ज्यो ज्यो उसम (दाता में) आपको स्वाद आता जावेगा। त्यो-त्यो सासारिक कर्म नीचे होते जावेगे। एक बार आप दाता से लगन लगाकर मगन होकर तो देखो। एक लडकी ने अपने पिया से लगन लगाई और उसी लगन में पिया से एक दिन शादी हो गई। शादी के वक्त उसे खूब आनन्द आया। कुछ दिन निकल गये। एक दिन उसने पुन उसी आनन्द को जो शादी के वक्त प्राप्त किया था लेने की इच्छा की, किन्तु उसे अब वही आनन्द तो प्राप्त नही हो सकता। पति का आनन्द कम हो या ज्यादा उसे मिलता ही है किन्तु एक बार जो समर्पण का आनन्द मिला वह तो बार बार नही मिल सकता क्यो कि समर्पण तो एक बार ही होता है। आप भी दाता को पति रूप में मान अपने को समर्पण कर उस आनन्द को प्राप्त कर लो।'

"यह जीवन रूपी पखा सत्गुरू रूपी कील के सहारे चलता रहे तो घूम घूम कर सबको प्रसन्नता रूपी हवा दे सकता है। बिना कील के सहारे चल कर तो यह ऐसी गर्म हवा फेंकेगा कि सभी दुखी हो जावेगे। अत दाता का आधार रख कर ही चलना चाहिये।

दुनिया में रहता हूँ, पर तलबगार नही।
बाजार में निकलता हूँ, किन्तु खरीददार नही॥

दुनियाँ में अनेक वस्तुएँ है किन्तु हमें उनसे क्या लेना देना। वे सब हमारे किस मतलब की हैं। यदि हम उन सबको ले लेवे तो उन्हें देखते देखते और उनके भार से ही मर जावे। जो वस्तुएँ हमारे काम की नहीं हैं, उनको पाने की कोशिश ही क्या करे? हमें भूख तो दाता के नाम की है, किन्तु हम उसे ससार की वस्तुओ में लीन होकर देखना चाहते हैं तो यही बात होगी कि खोदा पहाड़ और निकली चुहिया। हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ ही जावेगा।"

"यदि कोई दाता के बारे म पूछ कि वह कहाँ है और कैसा है? मान लो कि हम उसका स्थान बता द और उसके स्वरूप को बता दे किन्तु फिर भी आप उसे मानोगे नहीं। मान लेने का क्या प्रमाण है? हमें क्या विश्वास की आप मान ही जाओगे? हम तो यही विश्वास करते हैं कि आप नहीं मानोग। नहीं मानने का कारण है, आपकी बुद्धि। अनेक तर्क और भ्रम उठ खडे होंग। आप कह दग कि यह तो मेरा भ्रम था या भूल थी। बुद्धि से परे होकर ही अब मान सकते हैं। हमारे लिये गुरु वाक्य में विश्वास करना ही हित कर है। विश्वास के आधार पर ही महर की अनुभूति होगी।"

"जितनी प्रधानता हम सासारिक वस्तुओ को देते हैं उतनी प्रधानता हम दाता को दें तो हमारा काम बन जावेगा। ज्ञानी के लिये यह कार्य कठिन है। ज्ञानी विश्वास देरी से करता है। अबोध और अज्ञानी तत्काल विश्वास कर लेता है। विश्वास कर लेने पर सब कुछ हो जाता है। विश्वास करके ही उल्टा नाम जपने पर भी वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गये। हम तो जानते कुछ नहीं है। हम तो ग्रामोफोन हैं। ग्रामोफोन पर जैसी रेकार्ड चढा देते हैं वैसी ही आवाज आने लगती है। भोपू में क्या है? बोलने वाला बोल देता है। बेचारे भोपू में कोई आवाज नहीं है। आप सब लोग इच्छाओं में फँसे हुए हो। आप ही बतावे कि आप सब लोग यहाँ क्यो आये हो? आप सब यहाँ सासारिक सुखो की इच्छा लेकर ही आये हो। कोई आया है अपनी बीमारी की पुकार लेकर, कोई सतान की इच्छा से आया है,

कोई नौकरी चाहता है, कोई पदोन्नति चाहता है और कोई धन की इच्छा लेकर आया है। सब ही अपना कुछ न कुछ काम लेकर ही आये हैं। अब तक दाता के यहां सैंकडो व्यक्ति आते हैं किन्तु हमें तो अब तक एक भी व्यक्ति ऐसा नही मिला है जो यह कहता हो कि वह दाता के लिये आया है और दाता को चाहता है। आप लोग रात-दिन व्यर्थ ही चिल्लाते रहते हो कि हमें कुछ नही मिला। उस वस्तु को लेने तो आप आते नही फिर उस वस्तु के मिलने का सवाल ही कैसा। दाता तो इतना महरबान है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करता है वह मिल ही जाती है।"

"यह प्रकृति दाता के सैन और इशारो पर नाचती है। उसके इशारे पर नही नाचता है तो मनुष्य नही नाचता है। वह तो प्रकृति के इशारे पर न नाच स्वय के इशारो पर नाच रहा है और इसीलिये दु खी भी है। पशु-पक्षी तक उसके सकेतो का आदर करते हैं और उसको मानते हैं। कई पशु ऐसे देखे गये हैं जो ग्यारस, अमावस्या और पूर्णिमा को कुछ भी नही खाते-पीते हैं। मनुष्य ध्यान नही देता है, इसका मूल कारण है कि वह वासना और कामना को ही प्रधानता देता है। उसी में वह सुख मानता है। यह मेरा घर है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा भाई है, आदि में ही आनन्द मानता है और अपने अमूल्य जीवन को खोता है।"

"दाता की इच्छा करने में और उसके पास जाने में कौन सी लाज-शरम। वह तो हमारे रोम रोम में विद्यमान है। एक स्त्री अपने पति के सामने सोलह श्रृङ्गार करके जाती है किन्तु जब वह पति के पास जाती है तो पति उसके सारे श्रृङ्गार उतर लेता है, उस समय पत्नी कौन सी लाज-शर्म करेगी? समर्पण में कौनसी लाज और शर्म। हम जब दाता को हमारा सब कुछ दे देते है, फिर उसके सामने कौनसी लाज? वहां तो सब लाज उसकी है। उसकी चूडियां पहन लेने पर तो चूडियो की लाज की जिम्मेदारी उसकी स्वय की ही होगी।"

"उसके लिये दु ख दर्द पैदा करना सीखो। दुःख और दर्द में तो वह शक्ति है जो बन्दे को दाता तक ले जाती है। कहने का मतलब

है कि उसके लिये दुख और दर्द पैदा करके तो देखो। वह स्वय ही आपको दाता तक पहुचा देगा। एक एक श्वास में दाता को याद रखो। एक बात बताओ कि यदि आपको राष्ट्रपति बना दिया जाय तो बन जावोगे या नही।"

बन्दा : "नही ! हममें एक तो राष्ट्रपति बनने की इच्छा नही है। दूसरी बात हमारे में वैसी योग्यता भी नही है।"

श्री दाता "यही तो बात है। जब तक आपको उसकी जरूरत नही हैं और जब तक आप अपने आप में उस तक पहुँचने की योग्यता नही रखते, तब तक वह दूर है। वह आपसे दूर है और आप उससे दूर हैं। वासना के तीव्र होने से मनुष्य का भाव गिर जाता है। वह रोगी हो जाता है। अतः नीरोग रहने के लिये वासनाओ को अपने जीवन में आने ही न दो। अपने जीवन को पूर्णतया वासनाओ और कामनाओ से मुक्त कर दो। आप जितनी इच्छाओ और आवश्यकताओ को बढा दोगे, उतना ही आपका जीवन कष्ट का कीर्ण हो जावेगा। आपको उदर पूर्ति यदि साधारण भोजन से ही हो जाती है, तो मूल्यवान अनेक व्यजनो की क्या आवश्यकता है। साधारण कुटिया में रह सकते हो तो बडे बडे भवन बनाकर रहने में क्या लाभ ? यह जितनी ही बढी हुई आपकी आवश्यकताएँ हैं, वे सब गरीब लोगो के शोषण पर निर्भर हैं। अन्य लोगो का शोषण क्या कभी आपको सुखी कर सकता है ? उसमें सुख कहाँ है। दूसरो की आत्माओ को दुखी कर आपकी आत्मा कहाँ शान्ति प्राप्त कर सकती है। यह आपका भ्रम मात्र है कि यह सब सुख-सम्पति, में सब सुविधाएँ आपके जीवन को आनन्दित करेगी। सुख पहुँचाना तो दूर,ये आपकी नीद तक को हर लेगी। एक मजदूर सूखी रोटी खाकर भी मस्त रहता है किन्तु एक धनी मलमल के गद्दो पर पडा रह कर एक चपाती खाकर भी डाक्टरो की सलाह लिया करता है। अत. आप अपने जीवन सम्बन्धी जरूरतो को बहुत कम करो ताकि जीवन में आप शान्ति प्राप्त कर सको। दाता सब में ही एक रस होकर विराज रहे हैं। आत्मा को ही परमात्मा कहा गया है

अत सबके साथ एक सा ही व्यवहार करो। परहित में मन लगाओ। दाता गरीब रक्षक है। यदि आप गरीब और असहायो पर दया करोगे तो निश्चय ही आप पर दाता की महर होगी। हमारे कहने का मतलब है कि आप निरन्तर उसका स्मरण करते हुए सच्चे रूप में मानव बनने का प्रयास करे। इससे न केवल आपको पार लौकिक सुख मिलेगा किन्तु ऐहिक सुख भी मिलेगा। इस ससार के सभी सुख उसकी कृपा से आसानी से प्राप्त कर सकोगे।"

० ० ०

सच्चा प्रेमी उसे प्राप्त करता है

दिनांक ११-९-८१ को सध्या के समय जयपुर सेठी कॉलोनी में श्री दाता विराज रहे थे। सभी बाहर दूब पर बैठे थे। उस समय श्री दाताने फरमाया, " ससार की उत्पत्ति भ्रम और भूल से ही है। ससार में आने जाने का अर्थात् पैदा होने और मरने का कार्यक्रम चलता ही रहता है। इस आवागमन के चक्कर में हम यदि दाता को नही भूलते हैं तो हमारा आना सार्थक हो जाता है, नही तो गटर के कीडो की तरह जीवित रहते है और मरते हैं। हमारा कोई महत्व नहीं है।"

"संसार में सब साधन होते हुए भी मनुष्य दु खी है। ऐसा वह इसलिये है क्योकि हमारी सुरता रूपी सुन्दरी को उसका प्रियतम नही मिला है। प्रियतम के वियोग में प्रत्येक पतिव्रता नारी का दु खी होना स्वाभाविक ही है। आप सुखी नही हैं उसका मूल कारण है कि आपने वासना के लिये अपने जीवन की बाजी लगा दी है। यदि दाता के लिये यह बाजी लगा दी होती तो पीछे क्या रहता ?"

"जितना समय आपकी लगन और चाह में लगे वह सार्थक है। दो प्रकार के आदमी सस्कार की बातें नही करते हैं। एक प्रेमी और दूसरा दु खी। दोनो प्रकार के व्यक्ति उसको पाने के लिये अपने जीवन की बाजी लगा देते हैं। एक गाँव में महात्माजी पधारे। आसपास के लोगो को जब मालूम हुआ तो कई लोग दर्शनो के लिये उपस्थित हुए। महात्मा जी ने जब अधिक भीड देखी तो चल पडे। दर्शनार्थी भी पीछे हो लिये। महात्माजी चलते गये और दर्शक एक एक कर रुकते गये। अन्त में तीन चार व्यक्ति ही रह गये। तब स्वामीजी ठहर गये। उन लोगो ने स्वामीजी से कहा कि आपने यह क्या किया ? हजारो आदमी आपके दर्शन करना और आपसे कुछ उपदेश प्राप्त करना चाहते थे और आप चल दिये। महात्मा जी ने बताया कि जिन मे तीव्र इच्छा थी वे दौडते रहे। दौडते दौडते अन्त में उन्होने इच्छित वस्तु प्राप्त कर ही ली। जो दाता का सच्चा प्रेमी होगा वही अपनी लगन और सच्चे प्रेम से उसे प्राप्त कर सकेगा।"

जैसा देखा वैसा पाया

दिनाक १२-९-८१ को सेठी कॉलोनी मे ही श्री दाता बिराज रहे थे। कुछ ही व्यक्ति कमरे में बैठे थे। उस समय इधर उधर की बाते और हसी मजाक चल रही थी। श्री दाता की तबीयत कुछ खराब लग रही थी अतः सभी लोग दाता प्रसन्न हों, इस बात को कोशिश में थे। उनके प्रयत्नो को श्री दाता चुपचाप देख रहे थे और उनकी बाते सुनते जारहे थे। कुछ देर बाद जब सब चुप हो गये तो श्री दाता ने फरमाया, "एक साधु था जिसके पास कई अन्धे शिष्य थे। प्रवचन में हाथी का प्रसंग आया। अन्धे शिष्यों ने हाथी को जानने की इच्छा की। सभी जिज्ञासु एव आज्ञा पालक थे। गुरू के प्रति वे पूर्णतया श्रद्धावान थे। उनकी जिज्ञासा को देख कर गुरू ने उनको हाथी की पहिचान बताई। गुरू उन्हे हाथी के पास ले गया। एक को उसके पैर बताकर हाथी का परिचय दिया। दूसरे को सूड बताई। तीसरे को कान, चौथे को धड़ और पांचवें को पूछ बताई। पैर पकडने वाले ने समझा कि हाथी एक खम्बे के मानिन्द है। कान पकडने वाले ने हाथी को सूप के समान, धड़ पकड़ने वाले ने दिवार के समान, पूछ वाले ने रस्सी के समान और सूंड पकड़ने वाले ने उसे साप के समान समझा। एक दिन वे सब एक जगह एकत्रित हुए। सभी अपना अपना अनुभव बताने लगे। अनुभव भिन्न भिन्न थे अतः विवाद का होना स्वाभाविक था। मालूम होते ही साधु उनके सामने आगया। उसने उन्हे समझा बुझा शान्त किया। उसने बताया कि यह ससार एक हाथी के समान है। जिसने इसको जैसा देखा वैसा ही पाया। मूलतत्व को तो कोई देखता नही और व्यर्थ की बातो के लिये विवाद खडा करते हैं।

० ० ०

लिप्त न हों

दिनांक १२-९-८१ को श्री दुर्गाप्रसाद जी वैद्य ने श्री दाता सहित सभी भक्तजनों को भोजन के लिये आमन्त्रित किया। श्री दाता अपने भक्तों सहित वैद्यजी के प्लाट, रामदास मार्ग जयपुर पर पधारे। यहाँ उपस्थित लोगों को श्री दाता ने फरमाया, "आप लोग जो भी इच्छा करते हैं वह वासना से युक्त होती है। उस दाता से प्रेम तो करते नहीं हो। उससे यदि आप लोग प्रेम करने लगो तो आपका काम ही बन जाय, और आपका बेडा पार हो जाय। जो असभ्य हैं, जो कुछ नहीं जानते और जो कुछ नहीं समझते हैं वे तो बताई हुई बात में विश्वास कर लेते हैं। उनका टिकाव हो जाता है। वे मू से तू हो जाते हैं। आप सभ्य और समझदार हैं। अतः आप 'मैं' में ही रहते है अर्थात् आपको उसमें विश्वास होता नहीं। आपके मन-मन्दिर के भ्रम और भूल के ताले लग जाते हैं। आपके मन-मन्दिर के ताले कैसे खुले और दाता को मन-मन्दिर में कैसे बिठावे? जब आपको विश्वास होगा तभी तो काम चलेगा।"

"गन्दगी के नाले में किसी ने गुलाब लगा दिये। बाग में भी गुलाब है। दोनों गुलाब एक ही हैं। बाग के गुलाब की सुगन्ध आप ले या न लें तो भी आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा किन्तु गन्दगी वाले नाले के गुलाब की गन्ध आप सहन नहीं कर सकोगे, क्योंकि गुलाब की सुगन्ध को गन्दे नाले की दुर्गन्ध दबा देगी। आप उसे सहन नहीं कर सकोगे। बस यही बात है। इसीलिये तो आपके लिये ये बड़े बड़े मन्दिर बनाये गये हैं। उत्तरी भारत में तो मन्दिर फिर भी छोटे हैं किन्तु आप दक्षिण भारत में जाकर देखो। मन्दिर इतने बड़े हैं जिनमें शहर समा जाय। वे इतने सुन्दर और कला से परिपूर्ण है कि देखते ही बनता है। उन्हें देखकर अनायास ही मन लगने लगता है। वैसे तो सुन्दरता और कुरूपता दोनों ही उसके रूप हैं, किन्तु मनुष्य प्रकृति कुरूपता से घृणा करती है और

सुन्दरता को पसन्द करती है। इसीलिये सुन्दरता आकर्पित करती है।"

' जब हमारा मन उसमें मस्त हो जाता है तब डोलने की कोई बात नही। एक राजा था जो स्वभाव से तो अच्छा था किन्तु दुनिया के झझटो में फसा था। वह माया से बुरी तरह जकडा था। उसको भाग्य से एक दिन सतसग का अवसर मिला। सत्सग से उसके हृदय में दाता के प्रति प्रेम के बीज अकुरित हो गये। उसने भी दाता के लिये तप करने की सोची। उसने अपने सभी बन्धु-बान्धव, नौकर-चाकर राज्य के मन्त्री, सेनापति और अन्य कार्यकर्ताओ को साथ लिया और जगल में चल दिया। चलते-चलते मार्ग में एक स्थान पर उसे कुछ बन्दर दिखाई दिये। वे वृक्षो की डालियो पर फुदक रहे थे। मस्ती से इधर उधर खेल रहे थे। उनकी मस्ती को देख वह आश्चर्य मे पड गया। उसने सोचा कि उसके पास तो सभी साधन है किन्तु इन बन्दरो के पास क्या है ? इतने साधन होते हुए भी वह दु खी है और ये बन्दर जो साधन हीन है कितने प्रसन्न है। उसकी आँखे खुल गई। उसने तत्काल सभी को लौटा दिया। वह अकेला ही गया। दाता के चाह हुई तो कृपा हो गई। कृपा होते ही जीव के सभी जजाल खत्म हुए। दुनियाँ के सभी बन्धन ढीले पड गये और बात की बात मे वह बन्धन मुक्त हो गया। बन्धन मुक्त होते ही उस पर कृपा हो गई। दाता ने अपने किसी एक रूप में दर्शन देकर उसे कृतार्थ कर दिया।"

"दाता को पाने वाले ऐसे होते है। आप लोगो के सामने ढोल भी बजावे तो भी आप लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पडता है। कैसा सुन्दर एव सुखद वातावरण है, किन्तु लगता है कि आपके दुनिया के बन्धन इतने जटिल हैं कि वे बन्धन आपकी निगाह को इधर इधर फेकने भी नही देते। हमारा कहने का यह अर्थ नही है कि आप घर-गृहस्थी छोड कर जगल में चले जाओ। आप गृहस्थ में रह कर सब काम करो किन्तु उन बन्दरो की तरह मस्त रहना तो सीखो। गृहस्थ में रहते हुए दाता को तो याद रखो। यदि आप लोग

दाता को याद रख लोगे तो फिर आप सब काम करते हुए उन कामों में तो नहीं फँसोगे अर्थात् वे काम आपको दुखी तो नही करगे। उन कामो से लाभ होगा तो भी आप यही कहेंगे कि दाता की महर है और कोई काम खराब हुआ और आपको हानि हुई तो भी आप यही कहेंगे कि उसकी महर है। बस सभी कामों में उसकी महर ही देखेंगे। फिर आप देखो कि गृहस्थ में रहते हुए उन गृहस्थ के कामो म कितना आनन्द आता है।"

"चैतन्य महाप्रभु सदैव रात्रि को किसी न किसी भक्त के यहाँ सत्सग करने जाया करते थे। एक दिन वे एक वृद्ध भक्त श्री श्रीवास के घर गये। रात्रि को वे मस्ती से कीर्तन कर रहे थे। श्री श्रीवास के एक ही पुत्र था जिसकी आयु दो वर्ष के लगभग होगी। रात्रि को अचानक उसकी मृत्यु हो गई। भक्त श्री श्रीवास ने इस बात को गुप्त ही रखा। उन्होने सोचा कि बालक तो जाने वाला ही था सो चला गया। इसके कारण कीर्तन में बाधा क्यो पहुँचे ? कैसी ऊँची भावना थी भक्त की। श्रीवासजी तनिक भी दुखी नही हुए। उन्होने दाता की यही मरजी समझी। रात्रिभर कीर्तन होता रहा। प्रात किसीने बताया तब महाप्रभु को मालूम हुआ।"

"इसी तरह की एक अन्य घटना है। भक्त गोराजी के घर कीर्तन हो रहा था भक्त मण्डली मस्ती से कीर्तन कर रहे थे। गोराजी भी हाथ में करताले लेकर कीर्तन के साथ भावमय होकर नृत्य कर रहे थे। गोराजी का एक छोटा सा बालक कीर्तन स्थल पर आगया। कीर्तन में गोराजी को ध्यान तो रहा नही। बच्चा पैरो से कुचल दिया गया। उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। जब गोराजी को मालूम हुआ तो दाता की यही मरजी समझ शान्त रहे। ऐसी स्थिति हम सबकी भी होनी चाहिये। जो कुछ वह करे उसे बिना किसी हिच किचाहट के स्वीकार कर लेना चाहिये और उसी की कृपा समझ दुखी नही होना चाहिये। आपका काम तो चुपचाप दर्शक का होना चाहिये। उसकी लीला देखने का काम होना चाहिये। फिर देखोगे कि आपको कितना आनन्द आता है।'

"आप लोग इस बात को अटपटी मानते हो, क्यो कि यह बात

आपके मन के प्रतिकूल है और करने में कठिन है, किन्तु आप जब दाना के महत्व को समझ लेगे तो आपके लिये तनिक भी कठिन नही होगा। आप किसी शहर में घूमने जाते हैं वहाँ आप होटल या सराय का कमरा किराये पर लेते हैं और एक दो दिन बडे आराम से रहते हैं। आप उस कमरे को अपना ही कमरा समझ लेते हैं। प्रस्थान के समय आप बिना किसी मोह के छोड देते हैं। छोडने में आपको तनिक भी दु ख का अनुभव नही होता है। कारण आप उस कमरे में लिप्त नही हुए हैं। उसी तरह यह ससार भी एक सराय है। इस सराय में एक आरहा है और एक जारहा है। हम इसमें लिप्त होते हैं तो छोडते वक्त दु ख होगा ही। यदि हम लिप्त नही हैं तो छोडने में तनिक भी कष्ट नही। दु ख केवल इसी बात का है कि हम इसको हमारा समझ, लिप्त हो गये हैं। यह घर मेरा है यह पुत्र मेरा है, अमुक वस्तु मेरी है, ये बाते इतनी हावी हो गई है कि हमें अन्य बाते सोचने ही नही देती। इसीलिये तो हम दु ख पाते हैं, रोते हैं और चिल्लाते हैं। आज मेरा यह हो गया। कल यह हो गया। *अरे! इस हो गया ही हो गया में अपना अमूल्य समय गँवा रहे हो।* कब्र में पैर तो लटक ही चुके हैं। जब कब्र में चले जाओगे तब क्या? फिर तो रोना ही रोना हैं। अत सोचलो कि आप लोगो को हीरा सा अवसर मिला है। इसको हाथ से न गँवाओ। अपनी लगन को उसमें लगा दो और उसकी कृति का आनन्द लो। अब मानो तो आपकी मरजी। हम तो जानते हैं कि सुधरे सो नाथ का और बिगड सो जात का।"

• • •

डटे रहो

दिनाक १२।९।८१ का दिन था । सध्या की समय था । ठण्डी बयार चल रही थी । सभी जयपुर के भक्त जन बाहर दूब पर बिराजे हुए थे । सभी दाताओ की लीलाओ का वर्णन कर रहे थे । ठीक उसी समय श्री दाता भी अपने कमरे से बाहर आकर, उन लोगो के पास ही विराज गये । आते ही पूछा, क्या हो रहा है ?

बन्दा . दाता के महर की बाते हो रही हैं । भूख मिटती नही । आपके प्रवचन सुनने की और इच्छा होती है ।"

श्री दाता . " भूख तो मिटनी ही नही चाहिये । सरकार के हुक्म में ही सरकार मिलती है । आप की लगन में आप ही है । जैसी आपकी लगन । दाता इतना दयालु है कि लोग उसको मदारी और जादूगर कह देते हैं । बावन ही अक्षर उसके हैं । कुछ भी कह दो ।"

बन्दा . ."मदारी क्यो कहते है । वह मदारी कैसे है । वह किसको नचाता है ? वह तो अकर्ता है, फिर उसको मदारी क्यो कहा गया है ।"

श्री दाता . "उसको मदारी तो इसलिये कहा गया है कि वह मद का अरि है वह मद का शत्रु है । हम आहार की वस्तुएँ जो चढाते हैं, उनको वह ग्रहण थोडे ही करता है । हम जो कुछ चढाते हैं, । अपनी रूचि के अनुसार ही चढाते हैं । स्पष्ट हैं इन वस्तुओ को हमारे लिये ही चढाते हैं । हम तो दाता के चरणो में मद अर्थात् अहकार को ही चढ़ाते हैं । दाता हमारे अहंकार को समाप्त कर हमें अहकार रहित व निर्मल कर देता है । मद का नाम अहकार से व अरि नाम शत्रु का है । मद का शत्रु ही मदारी है । वह अकर्ता होते हुए भी सभी कामो का कर्ता है । वह परदे में रह कर नचाता है । लोग उसको देख नही सकते । सच्चे माने में वह मदारी ही है । जीव रूप बन्दर को नचाने वाला बाजीगर ही है । नाथ द्वारा के महन्त महाराज श्री नाथजी के प्रति दिन छप्पन भोग लगाते थे । यह परम्परा

ही बनी हुई है। आज भी प्रतिदिन भोग के लिये छप्पन भोग ही तैयार होते हैं। महन्तजी जब भोग लगाते थे तो श्री नाथजी की इतनी कृपा थी कि वे प्रत्यक्ष रूप से आकर भोग को स्वीकार कर लेते थे। एक दिन महन्तजी भोग लगाने लगे। किन्तु भगवान का पधारना नही हुआ। महन्तजी दुखी हुए। उन्होने फिर से आर्त वाणी में पधारने का आग्रह किया। भगवान् तत्काल ही पधार गये किन्तु उनके हाथ में आधी मक्की की रोटी थी। महन्तजी ने जिज्ञासा से पूछा कि क्या रहस्य है। श्री नाथजी ने फरमाया कि एक अनन्य भक्तने बडी दीन वाणी में उन्हे पुकारा और उनसे नही रहा गया अत वे वहाँ चले गये। उसके ऊपर भी कृपा कर कुछ प्रसाद लाये हैं। इस पर महन्तजी नाराज हुए और उन्होने कहा कि वह तो बिगडा हुआ है। वह झूठी रोटी खाकर बिगडना नही चाहता। भगवान ने कहा जैसी मरजी। तभी से भगवान का प्रत्यक्ष रूप से भोग लेना बन्द हो गया। उनके लिये लाखो रुपयो का छप्पन भोग लगाया जाता है किन्तु भगवान प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी स्वीकार नहीं करते हैं। सभी प्रसाद के रूप मे बाटा जाता है। महन्तजी के परिवार वाले आज भी लगे हुए भोग से प्रसाद ग्रहण नही करते हैं। दाता किसी भी वस्तु का भूखा नही है। वह तो भावो का भूखा हैं। कैसा बाजीगर है। कितने महान् भक्त को भी भ्रमित कर दिया। भगवान के अतिरिक्त ससार में और है कौन ? किन्तु वाह रे दाता! तेरी लीला। तेरा प्रसाद झूठा हो गया।"

"बडे बडे भक्त लोग भी अहकार के कारण भ्रमित होते हुए देखे गये हैं। कामना और वासना उनका पीछा भी नहीं छोडती है। कामना और वासना तो है भी ऐसी वस्तु जिसके फेर में पड कर मनुष्य को फासी के तख्ते पर तक लटक जाना पडता है। दाता का स्थान ही एक ऐसा स्थान है जहाँ आपके कानून कायदे काम नही देते। यह कानून कायदे में आता ही नही। इस समय आप उस बैठक पर याद कर रहे हो। आपका जितनी देर मन लगा उतनी ही देर आपको आनन्द तो आया। जिसने उसमें अपनी लगन लगाई उसे तो आनन्द आगया। किन्तु जिसने लगन नहीं लगाई वह देखता ही रह गया।

संसार में प्रत्येक मनुष्य छोटी सी, वस्तु पैसे के लिये बिकना जा रहा है। वह इस के कारण बड़े से बड़े हुक्म को मानने को तैयार हो जाता है।' वहाँ एक जज साहब बैठे थे। श्री दाता ने उनको सम्बोधित कर कहा।

श्री दाता .''क्यो जज साहब ! आपको क्या वेतन मिलता है ?"

जज साहब . "भगवन् ! मुझको दो हजार रूपये माहवार मिलता है।"

श्री दाता. "बस इतनी सी तनखाह मिलती है। इसको आपने स्वीकार किया क्योकि आपको इतनी ही की जरुरत थी। इतने में ही आप बिक गये। इधर तो बिक गये किन्तु मेरे दाता की जरूरत आपको नही थी अत उधर नहीं बिक सके। मेरे दाता के लिये भी बिक कर देखो। यदि कोई दाता से प्रेम रखता है तो मेरे लिये तो उसका कुत्ता भी महान् है।

जज साहब . "बिके कैसे ! उसको तो देखा ही नही।"

श्री दाता "आपने अपनी आँखो से उसे नही देखा ? अतः मानने की बात कर रहे हो। बहुत सी ऐसी बाते होती है जिन्हे बिना देखे ही माननी पडती है। माँ ने बेटे से कहा कि यह तेरा पिता है। अब आप ही बतावे कि बेटा माँ की मानेगा या नहीं। यदि वह मानने से इनकार कर दे तो काम चलेगा क्या ? उसको मानना ही पडेगा। आपको आपके काम का वेतन मिलता है। ऐसा कौन है जो पैसा नही लेता। सभी अपने अपने काम के पैसे लेते हैं। म्हारा (मेरा) राम को एक नेता ने पूछा कि आप भजन कब करते हैं ? हमने उन्हें ही पूछ लिया कि आपको राजनीति से फुरसत कब है। उनका जवाब था कि राजनीति में फुरसत कभी भी नही है। हमने कहा कि हमारा भी हाल यही है।"

"दो पहर की वक्त ठोकर खाकर गिरते हो तो क्या आप उसे दिन कहोगे ? रात को उसकी महर के प्रकाश में आनन्द लेते रहोगे तो क्या आप उसे रात कहोगे ?"

जजसाहब ·· "ऐसा आनन्द हर समय क्यों नही आता ? ऐसा आनन्द हर समय मिलता रहे तो अच्छा है।"

श्री दाता · · "एक बच्चा परीक्षा की तैयारी करता है। उसको एक पल की भी फुरसत नही है। खेती करने वाले के लिये अकाल और सूखा भी पडता है। क्या उनके कारण वह खेती करना छोड देगा।'

जज साहब "नही।"

श्री दाता "एक समय ऐसा भी आता है जब सभी घाटा पूरा हो जाता है। उसी तरह उसके दरबार की बात है। वहाँ डटे रहो तो एक दिन आपका घाटा सभी पूरा हो जावेगा। हर समय आप उसमें लगे रहो तो हर समय आपको आनन्द आ जावेगा किन्तु आप ऐसा करेंगे नही। दस बजते ही आपको अपने घर की याद सतावेगी और भागने की तैयारी करोगे। वहाँ तो जितना खर्च करोगे उतना ही तो पावोगे। खर्च कम करना चाहते हो और पाना अधिक। आप जज हैं, आपही बतावे कि यह न्याय सगत होगा ?'

"समर्पण कर दिया तो दासी मालिक हो गई। मालिक दास हो गया। इसी तरह मेरे दाता की बात है। आप समर्पण कर दो तो वह आपका हो जावेगा। अगर आपकी लगन में कोई पाँच कदम भी आवे तो मेरे दाता पाँच मील भी आजावे तो बडी बात नही है। एक बन्दे ने श्री रामकृष्ण देव से प्रश्न किया कि जो लोग आपका सम्मान नही करते हैं फिर भी आप वहाँ जाते है और मानते हैं। वे तो हमारी परवाह भी नही करते। आप ऐसा क्यो करते हैं ? इस पर श्री रामकृष्ण देव ने फरमाया कि आदर सम्मान करने वालो के यहाँ जाने की आवश्यकता ही क्या है ? वे तो दाता को मानते ही है। जो नही मानते हैं, वहीं तो जाना ठीक है। एक वट वृक्ष की जड को सींचने पर सभी पत्ते हरे हो जावेंगे। पत्ते पत्ते को सींचने से कोई लाभ नहीं। कहने का अर्थ है कि किसी एक बडे आदमी जैसे कलेक्टर, मास्टर, डाक्टर आदि को मार्गपर ले आया जाय तो वह

अनेक को मार्ग पर ला सकता है। एक साधारण को मार्ग पर लाने के लिये तो एक मात्र वही होगा।"

जज साहब ."इच्छा तो रहती ही नहीं है।"

श्री दाता.. "आप दाता की इच्छा करते ही नहीं, फिर रहे कैसे।'

जज साहब ."इच्छा करे तो कैसे कर?"

श्री दाता . "आपने कोर्ट में आज कई केस निकाले होंगे। घर भी जाना था, फिर भी आप कोर्ट से सीधे यहाँ चले आये। यहाँ आने की इच्छा कैसे हुई। जहाँ की प्रधानता होगी वहाँ की इच्छा जागृत हो जावेगी। आप किस को ज्यादा प्रधानता देते हो?'

जज साहब . "घर को।"

श्री दाता तब बातें बनाने की जरूरत ही क्या है? आप को घर से फुरसत मिले तब बात करना। जब आपको घर से फुरसत मिलेगी तब देखा जावेगा।"

बन्दा ,'दाता बडे दयालु हैं।"

श्री दाता "दाता दयालु तो हैं ही।"

श्री दाता ने भजन सुनाया —

दया की न होती जो आदत तुम्हारी,
तो सुनी ही रहती अदालत तुम्हारी।

जो पतितो के दिल में जगह तुम न पाते,
तो किस दिल में होती हिफाजत तुम्हारी।

पतितो की दुनियाँ है आबाद तुमसे,
पतितो पर है बाद शाहत तुम्हारी।

अगर न होते हम मुलजिम,
तो तुम न होते हाकिम तो घर घर में न होती इबादत तुम्हारी।

तुम्हारी ही उलफत के आगे ये आँसू
तुम्हें सौंपते है अमानत तुम्हारी।

जिस प्रकार आज कोर्ट में जज साहब सभी को समान समझते हैं उसी प्रकार दाता के दरबार में सब चराचर समान है। अब जो जैसा करेगा वह वैसा ही भरेगा। यह ससार तो कर्म-भ्रम का जाल है। इसे पार पाने के लिये तो दाता ही एक मात्र आधार है।

काजल केरी कोटडी, काजल केरा कोट।
बलिहारी उस दास की जो रहे राम की ओट।

उसकी ओट में रहने पर ही बचाव है। एक रति बिन पाव रति। बिना उसके प्रेम के मनुष्य सारहीन है। उसका मूल्य पाव रति का भी नही। उसके नाम की बलिहारी है। उसके आसरे पडे रहना ही लाभप्रद है। वह सर्वव्यापी है। जिधर देखो उधर वही वह है।

तू तू करता तू भया बाकी रही न हू।
बलिहारी तेरे नामकी, जित देखे तित तू॥
लाली मेरे लाल की जित देखू तित लाल॥
लाली देखन मे गई, मैं भी हो गई लाल॥

मन चंचल भी है और भोला भी है। चचल इतना है कि मेरे दाता सामने आजावे तो भी शंका करने लगता है। भोला इतना है दाता के न मिलने पर छटपटाता है। आप लोगो ने शुरू में पढाई करते करते, पढाई को ही जीवन का मूल समझ लिया है, तो पढ गये। इसी तरह जब आप दाता को ही जीवन का मूल समझ लोगे तो आनन्द ही आनन्द है। दाता ही हमारा सब कुछ है। हमारी गाडी तो उसी के भरोसे पर चल रही है। आप भी उसीका आसरा पकड लो तो आपकी गाडी भी मस्ती से चलेगी। कहा भी है:—

भरोसे थारे चालगी रे, सतगुरू म्हारी नाँव।
गहरी नदियाँ नाँव पुरानी किस विध उतरू पार।
काम क्रोध मगर मच्छ डोले, खान का तैयार।
भव सागर ऊडो घणों, तिरू न पाऊ पार।
निगह करू तो नजर नही आवे, भव सागर की पाल।।
नही म्हारो कुटुम्व कवीलो, नही मारो परिवार
आप बिना दूजो नही दीखे, जग में तारण हार।
सतसग रूपी नाँव बनी है, सत गुरू खेवन हार।
सूरत चाटली तान बासला इण विध उतरो पार।
कहत कवीरा सुनो भाई साधु मौ तो था मझधार।
रामनन्द मिल्या गुरू पूरा, बेडा कर दिया पार।।

दाता के भरोसे ही हमारी नाँव चल रही है। उसी का आसरा है।

० ० ०

उसकी लगन

दिनाक १३-९-८१ को रात्रि के १० बजे श्री दाता सेठी कॉलोनी में विराज रहे थे। प्रोफेसर, डाक्टर एवं अन्य भक्तजन बैठे थे। उस समय एक बन्दे ने श्री दाता से प्रश्न किया।

बन्दा– 'क्या यह सृष्टि भी आपके सकल्प पर रची गई है ?"

श्री दाता–"होता तो यही है। दाता के सकल्प पर ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। जैसे आपके मकान में कई तरह के बीज पडे हुए है। वे तब तक सुरक्षित रहगे जब तक उन्हे बाहर की हवा नही लगेगी। उसी प्रकार माता के ससर्ग में पिता के हृदय में तनिक सा सकल्प हुआ कि रचना तैयार। जितनी देर जिस वातावरण में रहोगे, उतनी ही देर में सस्कार के बीज पनप जावेगे। एक वलाई और एक सुनार जगल में जा रहे थे। मार्ग में जाते जाते उन्हे चोरो का खतरा हो गया। सुनार चतुर था। उसने खतरे को पहले से ही भाप लिया। वह एक बडी सी झाडी की ओट में छिप गया। वलाई भोला था सो खडा रह गया। चोरो ने उसे पकड लिया और मारने लगे। वलाई ने कहा मारो मत। मेरी पगडी के पल्ले एक रुपया बधा है, सो आप ले लो। चोरो ने वह रुपया ले लिया और परखने लग। वलाई भोला तो था ही, बोला कि रुपया खरा है। खोटा नही है। खोटा हो तो उस झाडी के पीछे सुनार है उससे परखा लो। फिर क्या था ? चोरो ने सुनार को पकड कर लूट लिया। कहने का मतलब यह है कि आपको शका हो तो देखलो। एक बाप के चार बेटे हैं। चारो ही अलग अलग विचारो के हैं। हैं तो एक बाप के, किन्तु जरा सा भी सकल्प हुआ कि वे अपना स्थान छोड देते है।"

प्रोफेसर–"महाराज! स्वप्न में भी आपके दर्शन आपकी कृपा बिना कैसे हो सकते हैं।"

डाक्टर शर्मा–"स्वप्न तो जीव के लिये होते हैं।"

श्री दाता–"यदि कार्यरूप में आजावे। आपको स्वप्न ही आया। महापुरुष की महर हुई और वह सही हो गया, अर्थात् कार्यरूप में आ गया। यदि लाईन सीधी नही होती है तो स्वप्न सही नही होते। दाता की महर हो जावे तो स्वप्न में देखी हुई सभी बाते सही हो जावे। अगर आप बैठे हो और अचानक सुगन्ध आजाय तो क्या करोगे ? यह सब महापुरुषो की बाते हैं। जितनी देर आप उसकी (दाता की) लगन मे मगन रहोगे उतनी ही देर आपको उसकी अनुभूति होती रहेगी।"

एक बन्दा–"क्या साधना के लिये बैठना जरुरी है ?"

श्री दाता–"बैठना जरुरी भी है और नही भी है। प्रोफेसर साहब, क्या आपने कभी दाता को देखा है ?"

प्रोफेसर–"देखा होगा तो भी भ्रम हो गया होगा।"

डाक्टर साहब–"भजन, कीर्तन करते है। काफी समय बैठते है तो भी मन उचटा उचटा ही रहता है।"

श्री दाता–"हमेशा याद रखो, यदि आप अपने मकान की छत पर चढोगे तो जोर आवेगा किन्तु नीचे उतरोगे तो तनिक भी जोर नही आवेगा, कारण, मन की गति ही नीचे की ओर है। मन और जल सदैव ही नीचे (जमीन) की ओर जाते है। यदि आप ऊपर उठाना चाहोगे तो जोर लगाना पडेगा। यदि आप मन रूपी गेंद को छोड दोगे तो वह तो नीचे को ही जावेगी। इन्द्रिया का जितना भी भोग, वह सब नाशवान है। बडा दु खदायी है। सच्चा आनन्द तो ऊपर चढने में ही है। यदि आपको वह आनन्द मिल गया तो आपकी पूरी नगरी में ही गाजा-बाजा बज जावेगा। कहने का मतलब है कि यह आपका पूरा शरीर ही उसके प्रकाश मे जगमगा उठेगा।"

डाक्टर साहब–"भगवन्। जीव की गति तो सीमित है।"

श्री दाता–"जब आपकी उर्ध्वगति हो जावेगी तो अपने आप में सकेत मिल जावेगा। हमने पाच छै महिने के बालक को रामनाम लेते सुना है। सकेत होता है, सोने में भी व जागते में भी। उसकी

उसकी महर ही प्रधान है। यह जीव रूप बच्चा रुदन लेकर आया है। यदि रुदन न करे तो कौन परवाह करे ? न माता परवाह करेगी और न पिता ही। रुदन करने पर दोनो ही दौड पड़ते हैं। सबसे बड़ी बात यही है कि अपनी लगन कमजोर नही पडने देनी चाहिये। आपकी लगन तेज हुई कि प्रकृति नाचने लग जावेगी। ऐसी घटना हो जावगी कि आपको देखकर ही आप अवाक् हो जावेगे।"

जज साहब–"तीव्र इच्छा कैसे होती है।"

श्री दाता–"आप सत्संग रूपी चूरण लीजिए, आपको भूख लगने लग जावेगी वह तब तक परदे में रहेगा जब तक आप पूर्ण अवस्था में न आजावे। दाता के नाम का भी एक नशा है जिसको सूरमा ही कर सकते है। नशा ही ऐसा, जो थोडी सी देर में मस्त कर देता है। जब आपको इस नशे की लत पड जावेगी तो फिर आपको कुछ भी तो नही करना पडेगा।"

प्रोफेसर साहब–'तीव्र इच्छा होने पर भी काम नही सरता है।"

श्री दाता–'आप साईकिल पर आये हैं न। चलते चलते साईकिल ढाल पर दूसरी तरफ हो गई तब आप क्या करोगे ? साईकिल छाड दोगे या पकड लोगे। उसी तरह से दाता को पकड लो तो उसकी तीव्र इच्छा हाने लगेगी।"

एक बन्दा–"आपने प्रयत्न और महर, दो बाते बताई। दोनो में तो विरोधाभास है।"

श्री दाता–"प्रयत्न में महर छिपी हुई है। आप कोई काम करके तो देखो। आप देखोगे कि यह कैसे हुआ। उत्तर मिलेगा, उसकी कृपा से। आधार उसका रख कर प्रयत्न करो। आप कह दोगे कि यह तो मैने ही अपनी मेहनत से काम किया है, तो फिर देख लो क्या होता है। प्रयत्न के समय प्रतिक्रिया होती है। यह मन उल्टा चलना है। प्रयत्न करने की जरुरत क्यो है ? मन धीरे धीरे लगता है, इसी लिये प्रयत्न की आवश्यकता है। एक बच्चा पढता है। उसका मन नही लगता है तो मन लगाने के कई प्रयत्न

किये जाते है। उसे कई लालच भी दिये जाते हैं, तब जाकर वह पढना शुरु करता है।'

एक बन्दा–"गेहूँ का बीज गहूँ ही होता है किन्तु क्यों हम तो नीच हैं ?"

श्री दाता–"नही। एक वटवृक्ष को आप उठा सकते हैं ? आप नहीं उठा सकते हैं, क्यो कि जितना वह अन्दर है उतना ही वह बाहर है। वटवृक्ष में बीज कहा है जिसको पकड ले। समझे। बात ऐसी है कि कोई पत्ता ही ऐसा नही जिसमें बीज न हो। कोई कहता है कि वह नीच है। उसको कैसे मालूम हुआ कि वह नीच है। क्या उसको खबर हो गई ?"

बन्दा–"आभास होता है।"

श्री दाता–"जब बन्दा अन्तर्मुखी होगा तब ही तो आभास होगा। जिसको अपने अवगुण दिख गये वह तो महापुरुष ही है। बताईये आपके शरीर में सब से नीच जगह कौनसी हैं।

जज साहब–'वही स्थान नीच है जहाँ मलमूत्र भरा है।"

श्री दाता–"वह स्थान कैसे नीच हुआ जहाँ मलमूत्र है। उस पर तो सारा शरीर टिका है। आपके शरीर की सारी सुन्दरता तो उसी मलमूत्र की है। यदि आप कहते हैं कि मलमूत्र बुरा है, तो इसको निकालने के लिये झाड (जुलाव) ले लो। देखें, फिर आपकी क्या हालत होती है। शरीर में ऊँच-नीच सारा ही आपका है। एक लडकी को जब तक पिया के विरह की अग्नि नहीं सतावे तब तक वह तर्क वितर्क में उलझी रहती है। विरहाग्नि के प्रज्वलित होते ही उसके तर्क-वितर्क उस अग्नि में भस्म हो जाते हैं। तब दासी मालिकिन और मालिक दास हो जाता है। वहाँ तो ऊपर से नीचे, आदि से अन्त तक सब एकरूप रहता है। सूरदासजी ने कहा है.–

प्रभुजी हौ पतितन को टीको,
और पतित सब दिवश चार के, हो तो जनमत ही को,
वधिक अजा मिल गणिका तारी, और पूतना ही को

मोहि छाडो तुम और उद्धारी, मिटे शूल क्यो जी को
कोऊ न समरथ अप करिवे को, खेंचि कहूत हूँ नीको ।
करियत लाज सूरपतितन में, मोहूँ से को नीको ॥

दाता रूपी पावर हाऊस से इस मन रूपी बल्ब का कनेक्शन मिला लो तो यह रोशन हो जावेगा । इस मन के टेडे तार को सीधा कर लो अर्थात् इसकी गति ऊँची कर लो । आप उसको चाहते हो तो अपनी लगन ऊँची कर लो । ऊँचा या गन्डक ऐंडे (शिकार) नही चढता । यदि आपकी अपने पिया से सच्ची लगन लग गई तो आपके सभी सस्कारो के बीज निर्बीज हो जावेगे । शरीर रूपी सिनेमा के परदे पर आप देखोगे तो सब नाटक उस रोशनी में होगे । सब तो भूखें प्यासे है किन्तु आसिक को तो तडफन रहती है, आप ऐसा कोयला बताओ जो आग का नही है । कोयला आग का ही है । कर्म की काई आगई । आपको आग कोयले में लाना है, तो आग के सम्पर्क में लाकर मारो फूक, लगाओ रगड । देखो कुछ ही देर में आग का अगारा हो जावेगा । आपके पास सारे विश्व की आग होते हुए भी आप ठण्ड से सिकुड़ रहे हैं । आपके पास बहुत बडी शक्ति है, किन्तु जब तक प्रेम रूपी रगड नहीं लगाओगे, तब तक वह शक्ति प्रकट रूप में नही आवेगी । उसको प्रकट कर लो तो परम शक्तिशाली बन जाओगे । बस अपने पर प्रेम का रग चढालो ।"

प्रोफेसर साहब–"यही तो नही जानते कि प्रेम का रग कैसे चढता है ।

श्री दाता–"अपनी चूदडी को रग में डुबा दो । बस रग चढ जावेगा । रग रेज को जाकर पूछ लो कि वह रग कैसे चढता है । एक बच्चा रोता है तो माँ समझ लेती है कि उसे भूख लगी है । वह उसको दूध पिलाने को दौड पड़ती है । आपको भूख लगती है तो आप रोटी माग लेते हैं । बस भूख में ही स्वाद है । उसकी चाह करो, आवश्यकता महसूस करो कि प्रेम का रग चढ जावेगा । फिर मिटाये ही नहीं मिटेगा । सारे दिन का भूला बच्चा शाम को घर आ जाता है तो भूला नहीं कहलाता है । समुद्र विशाल है तो हमारे लिये किस काम का । जो हमारी प्यास बुझा दे वही हमारा समुद्र है ।

"मेरे दाता को लोग देखना चाहते हैं। देख लेना कठिन नहीं है, किन्तु बेहोश होना पड़ता है। होश-हवास खोकर ही तो उसका अनुभव किया जा सकता है। होश में होने पर तो इधर उधर की बातें ही दीख पड़ती हैं। लोग कहते हैं कि हम आनन्द लेना चाहते हैं, किन्तु उसको लेने की शक्ति चाहिये। हर निवास में कीर्तन होता था। किसी किसी पर कीर्तन के समय दाता की महर होती किन्तु उस महर को वे सहन नहीं कर सकते थे। अत कोई तो बेहोश होकर पड़ जाता और कोई जोर जोर से रोने लगता। दाता की महर से ही वे वापिस स्वाभाविक गति में आते थे। होने को तो सब कुछ हो जाय किन्तु सभालेगा कौन ? कच्ची माटी का यह शरीर है, जिसको बनाने में समय लगता है। कितने परिश्रम से यह बन पाया है, किन्तु इस घट के फूटने में कोई समय नहीं लगता। फिर यह शरीर रूपी घड़ा तो जगह जगह से फूटा हुआ है। रोम रोम में इसके छिद्र हैं। इसके जाने में क्या देर लगेगी। अब यदि आपको चाह है तो कमर कस लो। यदि कमर कस कर तैयार हो लोगे और उसके (दाता के) लिये सब कुछ कर लोगे तो तुम्हारे लिये भी सब कुछ हो जावेगा। आप लोगो पर हमें हसी आती है। सब कुछ करने की कह तो देते हो किन्तु करते कुछ भी नहीं। माग ताग तो लेनी देनी होती है। हम और हमारे दाता कैसे है यह तो देखलो। दाता कितने दयालु है और हम कैसे निष्ठुर और नीच है। हम कैसे है, तनिक आँख उठाकर अपने कर्मों की ओर तो देख लो। हमारे कर्म कितने नीचे हैं। यह तो दाता दयाल की असीम कृपा है कि वह हमारे कर्मों की ओर नहीं देखता है। एक ही महर की नजर में हमारे सभी कर्मों को समाप्त कर देता है। जैसे घनघोर अन्धकार में एक सूर्य की किरण प्रवेश करते ही रोशनी कर देती है, उसी प्रकार हमारे सब नीच कर्म दाता की महर से नष्ट हो जाते हैं। आप सब कुछ करने को तो तैयार हो जाओ। वहाँ तो दाता यदि कलेजा भी मागे तो देना पड़ता है।"

"एक व्यक्ति कहीं जा रहा था। उसको प्यास लगी। एक कुएँ पर पानी पीने गया। पानी पीते समय असावधानी से कुए में गिर गया। रास्ते चलते एक सन्त की महर हो गई। महर कर

उसने उसे निकाल दिया । इसका मतलब यह तो नही है कि वह बार बार कुए में गिरता ही रहे और सन्त महरबानी कर बार बार उसे कुए से बाहर निकाला ही करे। जानबूझ कर मरेगा तो मरेगा ही । दाता की महर हुई जो आपको इस भवरूपी कुएँ से निकाल किनारे पर ला रखा । अब आपका काम है कि उस महर का लाभ उठाओ । भगवान् की कितनी महर है, पर कोई जान सकता है क्या ? कोई पूछे कि आप मुझको कितना चाहते है । यह बात क्या पूछने की है । पूछना ही है तो तुम्हारे मन से पूछ लो कि तुम्हारा मन उसको कितना चाहता है ? डोलते क्या फिरते हो ? दर्शक क्यो बनते हो ? जिज्ञासु क्यो नहीं बनते हो ? हलवाई की दुकान के पकवानो में गुण होता तो वह दूसरो को क्यो बेचता ? अपने लिये ही क्या नही रख लेता । बाजार में अनेक वस्तुए हैं किन्तु वे सब गुणी है क्यो कि उनमे वास्तविकता नही है । वैसे आनन्द सब में है किन्तु जो आनन्द वास्तविक है और जो आनन्द आपको चाहिये वह उनमे नही है । आप अनुभव कर देख लो । आप कह दोगे कि उनमे आनन्द है तो हम मान जावेगे ।"

"आप जयपुर के बाजार मे जाते हो, वस्तुओ को देखते हो और भाव पूछते हो । भाव पूछने मात्र से जबरदस्ती आपको कोई कुछ दे नही देता । आपके पास कुछ नही है, तो आप भाव ही पूछते हैं। जिसके पास कुछ नही उसके पास सब कुछ है । जिस बात पर जोर देते हो, वही पहने होती है । आप आते ही इसीलिये हो । तुम्हारा काम हुआ की चलते बनते हो । ओम जी पर जब सकट आया तो इन्होंने पुकार की । दाता की महर हुई तो उजडे घर फिर से बस गये । जैसी पुकार हुई वैसी ही महर हुई ।"

"आप कहत हो कि हमारे हाथ में शक्ति दे दो । दाता शक्ति तो दे देंगे किन्तु उस शक्ति को पकडने के लिये ताकतवर हाथ भी तो चाहिये । एक बच्चे के हाथ में आग दे दो । क्या हाल होगा । वह-सर्वनाश नही कर देगा । जब तक शक्ति को थामने की ताकत नही तब तक उसकी कामना भी नही करना चाहिये । शक्ति तो उस सर्व शक्तिमान की है, अत उसे तो उसी के पास रहने दो ।

यदि आप यह घोषणा कर दो कि मारना और जिलाना मेरे हाथ में है तो क्या दशा होगी ? लोग मारने दौडेगे । अन्य तो आवेगे सो आवेगे किन्तु आपके घरवाले ही आपको चीर देंगे । अत शक्ति की माग ही न करो । कहा है 'जिसका काम जिसको छाजे और करे तो भूण्डा वाजे ।' आप डीग तो बडी बडी हाकते है कि आपने बहुत कुछ कर लिया है किन्तु किया कुछ नही । आप दुनिया को धोखा दे सकते हैं किन्तु दाता को नही । अत अपने आप को सरल एव सीधा बना लो और दाता के बन कर आनन्द प्राप्त कर लो ।

० ० ०

आत्म साक्षात्कार कैसे

श्री दाता का पधारना जयपुर से भीलवाडा हुआ। बगले पर विराजना हुआ। प्रात का समय था। कुछ लोग बगले के बाहर बरामदे में बैठे थे। इधर उधर की बातें चल रही थी। ठीक उसी समय श्री दाता बाहर पधारे। वे भी कमरे के एक छोर पर विराज गये। कुछ समय इधर उधर की बाते चली। एक भक्त श्री दाता को अपने नये बने हुये मकान पर पधराना चाहता था। उसने प्रार्थना की, इस पर श्री दाता तैयार हो गये। उस समय उसकी तैयारी थी नही, अत वह सिर्टपिटा गया। श्री दाता ने हसते हुए कहा, "जैसी मौज है। म्हारा राम तो हर समय तैयार है। पचायती ठीकरा (शरीर) है। जैसे चाहे काम लो। जिसमें आप राजी उसी में म्हाका राम राजी। किन्तु आप लोग मन के कहे कहे न चला करो। ससार में जितने भी दु ख है वे सब मन के दु ख है। मनुष्य का काम उसके मन के अनुसार न होने पर दु ख होता है। स्वाभाविक है, दु ख होता है। आप लोग यह वजन क्यों उठाते हो ? मन को ही दाता को सौप दो। जैसा वह चाहता है, हो जावेगा। आप तो अपने अपने जीवन को मशीनवत् बनालो। इस मशीन को दाता चाहे जैसा चलावे। चलावे तो उसकी मर्जी और नही चलावे तो उसकी मरजी। ऐसा करने में ही आनद है।''

"आज मरना कोई नही चाहता। दो बाते ऐसी है जो कोई नही चाहता है। एक तो मृत्यु और दूसरा दु ख। मनुष्य न तो मरना चाहता है और न दुःख देखना चाहता है। किन्तु दोनो ही बाते अनिवार्य है। न तो कोई व्यक्ति मृत्यु से बचा है और न कोई व्यक्ति दु ख से बचा है। मैंने तो जितने भी लोगों को देखा है उन्हें दु खी ही देखा है। किसी को किसी बात का दु ख तो किसी को किसी अन्य बात का दु ख। ससार में तो दु ख ही दुःख है। मनुष्य जीना चाहता है और सुख से जीना चाहता है। किन्तु जीना और सुख उसके हाथ में नही, इसीलिये निराश और दु.खी है। अब वास्तव में देखा जाय, तो यह सुख दु ख तो मन का है। 'मन के हारे हार है और

मन के जीते जीत ।' आप मन के गुलाम हो जाओ, आपको दु ख ही दु ख है और आप मन के मालिक हो जाओ, जीवन म सुख ही सुख है । छोटी सी बात है । मन पर अपना अधिकार जमा लो । मन पर वैसे तो अधिकार करना सरल नहीं है, किन्तु सरल भी है । सरल इस तरह है कि मन को अपना न रख कर दाता को सौंप दो । दाता के बन्द बन जाओ । बन्दा तो हर समय उसकी मस्ती म ही रहता है ।"

इस प्रकार की बातें चल ही रही थी कि एक वृद्ध ब्राह्मण सज्जन का पदार्पण हुआ । व दाता को नमस्कार कर बैठ गये । कुछ देर सभी चुपचाप बैठे रहे । एक बन्दे न उठ कर उनका परिचय कराया । इस पर वृद्ध सज्जन बोले ।

वृद्ध सज्जन—"मै बहुत दिना से आपक दशनो की इच्छा कर रहा था किन्तु सयाग नही मिल सका । बहुत पहले एक बार दूदू कम्पनी में आपक दशन हुए थ । बात करन और सुनन का मौका नही मिला । मै लगभग एक माह स एक मुनि महाराज का व्याख्यान सुनने जा रहा हूँ । एक दिन अपन प्रवचन में उन्होंने कहा कि मनुष्य आत्म साक्षात्कार कर सकता है । इसका भी उपाय है । मेरे मन में जिज्ञासा पैदा हुई । सासारिक सुखो को तो मै देख चुका हूँ । उनमें तो मैंने कुछ सार पाया नही । अब भगवान की ही चाह है । उसकी प्राप्ति की इच्छा लेकर फिर रहा हूँ । एक भूखे कुत्ते की तरह घूम रहा हूँ । कही से भी, चाहे वह किसी जाति का हो, रोटी का टुकडा मिल जाय तो खा लू । मुनि जी से एकान्त म मिलने की इच्छा से एक दो बार उनके विश्राम स्थल पर भी गया किन्तु उन्हें भी मैंने व्यस्त ही पाया । मै उनसे वह उपाय जानने में सफल नही हुआ । आज प्रात से ही अधिक अशान्ति थी अत सोचा कि शिवसदन जाकर कुछ देर बैठूं । वहाँ जान पर सूचना मिली कि दाता पधारे है । फिर क्या था ? आपके दर्शना के लिये चल पडा और आपके दर्शन हो गये । आत्म साक्षात्कार की कोई विधि हो, और यदि आप उसे बता सके तो इस दास पर बडी कृपा होगी । इसी आशा म मै आया हूँ ।" यह कह कर वे चुप हो गये । श्री दाता भी कुछ देर चुप ही विराज रहे । कुछ समय बाद जयपुरवाले वैद्य जी की ओर देख कर बोले ।

श्री दाता–म्हाके राम के पास जयपुर में एक बाबा आया। उसने कहा कि आत्मा साक्षात्कार करा दो। म्हाकाराम को हसी आ गई। म्हाकाराम कुछ जानता तो है नहीं। म्हाकाराम की कुछ इच्छा भी नहीं है। दाता को हम तो देखना भी नहीं चाहते हैं और न देखने की इच्छा ही है। हम तो उसकी महर चाहते हैं। चाहते हैं कि उसकी याद में मस्त रहे। जैसे गोपिया कृष्ण की याद में मस्त रहती थी। हर समय वे कृष्ण को याद रखती थी। गोपिया के रोम रोम में कृष्ण बस गया था उसी तरह म्हाकाराम तो चाहता है कि दाता के नाम को रटा करे। उसकी महर का भिखारी बन जाऊँ। दाता हमारे राम रोम में आ विराजें। उसकी तडपन में जो आनन्द है वह आनन्द शायद उसके मिलन पर न हो। ऐसा सुना है कि उसके मिलने पर तो आनन्द ही समाप्त हो जाता है। यदि यह बात सही है तो फिर ऐसा आत्म साक्षात्कार किस काम का जो हमारे आनन्द को ही समाप्त कर दे। ऐसा आत्म साक्षात्कार हमें नहीं चाहिये। नदी अपने रूप में रहती है तब तक वह नदी है और समुद्र का आनन्द लेती रहती है। नदी जब समुद्र में ही मिल जाती है तब तो उसका लय ही हो जाता है। वह समुद्र रूप ही हो जाती है फिर वह नदी रूप में रह कर समुद्र के आनन्द से ही वंचित हो जाती है। आप के पास यह लकडी है। इस में अग्नि मौजूद है। आग से ही यह बनी है आग विकसित हुई है, आग से ही फली फूली और आग से ही सुखी है। यह आग से लबालब भरी पडी है। किन्तु आग इसे प्रत्यक्ष नहीं। यह लकडी इस समय आग की अनुभूति कर सकती है और आग का आनन्द ले सकती है। किन्तु वही लकडी अपने आत्म स्वरूप अर्थात् अग्नि को प्राप्त करना चाहे, उसे देखना चाहे तो क्या होगा ? वह स्वयं अग्नि हो जावेगी। फिर वह न तो लकडी रहेगी और न वह उस अग्नि के आनन्द को ले सकेगी। उसका तो अस्तित्व ही समाप्त हो जावेगा। वह तो पूरी तरह अग्नि ही हो जावेगी। जो आवरण था वह नष्ट हो जावेगा। मनुष्य शरीर की भी यही अवस्था है। यदि यह शरीर आत्म स्वरूप की प्राप्ति चाहता है तो इसे तो नष्ट होना पडेगा। फिर देखेगा तो किस देखेगा। यह तो आत्म स्वरूप देखने से तो वंचित ही रहेगा। अत आत्म स्वरूप को देखा किसने है। कहा है –

लाली मेरे लाल की जित देखू तित लाल।
लाली देखन मैं चली तो मैं भी हो गई लाल॥

अत आत्म दर्शन की बात हमें तो सुहानी नहीं।

"आपने धनुर्दास का नाम सुना होगा। धनुर्दास एक सुन्दर नवयुवक था। उसका जवानी में एक वेश्या से प्रेम हो गया। वेश्या बड़ी सुन्दर थी। उस समय की अच्छी अच्छी नवयुवतियाँ सुन्दरता में उसका मुकाबला नहीं कर सकती थी। अच्छे अच्छे होनहार व्यक्ति उसकी सुन्दरता से मोहित होकर पथभ्रष्ट हो चुके थे। वेश्या तो वेश्या ही थी। उसका तो पेशा ऐसा ही होता है। उसको तो पैसे से यारी होती है। वह एक की होकर चले तो उसका काम ही कैसे चले। उसका काम तो तभी चलता है, जब कि भवरे की तरह वह नित्य नये नये फूलों की सुगन्ध लेती रहे।"

"वह अत्यधिक सुन्दर थी इस लिये धनुर्दास उसकी सुन्दरता पर मोहित हो गया। वेश्या का नाम सुजान था। जैसा नाम वैसा गुण। नाम के मुताबिक हो वह बड़ी चतुर चालाक थी। उसने भी धनुर्दास को अपनी ओर खींचने की कोशिश की। धनुर्दास धनी, सुन्दर व होनहार युवक था। वेश्या को भी यही चाहिये था। सुन्दरता के वश में होकर धनुर्दास उस वेश्या के वश में हो गया। वह उसे अत्यधिक प्रेम करने लगा। वह इतना उसको चाहने लगा कि खाते, पीते, चलते, फिरते उसको ही देखते रहना चाहता था। स्थिति यहाँ तक हो गई कि वह उसके देखे बिना जी नहीं सकता था। वह निरन्तर उसके सामने ही रहना चाहता था। वेश्या के लिये ऐसी लाभप्रद नहीं होती है। उस वेश्या ने भी ऐसा ही अनुभव किया किन्तु कुछ कारण थे जिससे धनुर्दास को वह अलग करना नहीं चाहती थी। धनुर्दास का प्रेम सच्चा प्रेम था। उसका प्रेम वासना और कामना से युक्त नहीं था। वह तो वेश्या की सुन्दरता पर ही मोहित था और इसी लिये उससे प्रेम करने लगा किन्तु उसका प्रेम निष्कलंक था। दुनिया इस बात को तो देखती नहीं। जब रात-दिन धनुर्दास वेश्या के यहाँ रहने लगा तो उसके सम्बन्धी और मित्र लोग उससे किनारा काटने लगे। एक एक कर उससे दूर हो गये।

उन्होंने धनुर्दास को समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब उनके समझाने का कोई लाभ नही हुआ तो वे उसकी निन्दा करने लगे और धीरे धीरे उससे घृणा करने लगे। स्थिति यहाँ तक आ गई कि वह पापात्मा, दुष्ट कामी और नीच समझा जाने लगा। लोग उसका मुह देखना भी पसन्द नहीं करने लगे। उसका मुह देखना पाप समझते थे। धीरे धीरे लोग उसकी शक्ल देखना और नाम लेना ही पाप समझने लग गये।"

"धनुर्दास तो अपनी मस्ती में मस्त था। पूरे दिन वह वेश्या की सेवा में रहता जिससे वह उसका मुह देखता रह सके। वह उसकी हर प्रकार से सेवा करता था। एक मात्र उसका उद्देश्य था कि वेश्या हर समय उसके सामने ही रहे। एक समय वेश्या को मेला देखने की इच्छा हुई। गर्मी के दिन थे और दोपहर का समय था। कडाके की धूप पड रही थी। ऐसे समय में वेश्या घर के बाहर निकली। धनुर्दास ने छाता चढा कर हाथ में ले लिया। वह वेश्या के आगे हो गया। उसने अपना मुंह वेश्या के सामने रखा। पीछे वह चलना नही चाहता था कारण पीछे से वह वेश्या का मुह नही देख सकता था। वेश्या के आगे रह कर भी वह अपने मुह को आगे करना नही चाहता था, कारण, आगे रहने पर भी वह वेश्या के मुह को नही देख सकता था अत उसने अपना मुह वेश्या की ओर कर लिया और उस पर छाया रखता हुआ उल्टे पैर चलने लगा। अजीब सा तमाशा था। लोग देख देख कर हँसे बिना नही रहते थे। देखने वालो में से कई लोग धनुर्दास को धिक्कार रहे थे, किन्तु धनुर्दास पर इसका कोई प्रभाव नही था। वह तो अपनी ही धुन में मस्त था। धीरे धीरे चल कर वेश्या मेले में पहुँची। काफी भीड थी। उसी भीड में धनुर्दास अपने काम में लगा था। वह तो केवल वेश्या के सुन्दर मुह को ही देख रहा था। मेले में क्या है और लोग उसके बारे में क्या कह रहे हैं इस बात का उसको ध्यान नही था। वह तो अपनी लगन में मस्त था।

"पास ही एक पहाडी थी जिस पर सन्त श्री रामानन्द जी का आश्रम था। सयोग से उस समय स्वामी जी अपने आश्रम से

बाहर निकले। अनायास ही उनकी निगाह मेले की ओर चली गई। बडी चहल पहल थी मेले में। किन्तु उन्हे वेश्या और धनुर्दास वाली बात अद्‌भुत दिखाई दी। वे न तो धनुर्दास को जानते थे और न वेश्या को। सन्तो को ऐसी बातो मे क्या लेना देना। वे तो वासना कामना और जग के जजालो से करोडो कोस दूर रहते हैं। उन्होने अपनी निगाह उस दृश्य से हटानी चाही। उन्होंने सोचा कि वह मनुष्य कामी कीडा दिखाई देता है। मल-मूत्र के पीछे पड कर अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहा है। जैसी लगन इसन इस नारी मे लगा रखी है वैसी लगन अगर वह दाता मे लगावे तो इस का जीवन ही सफल हो जावे। उन्होंने घृणा से अपनी निगाह मोड ली। किन्तु दाता की कुदरत को कौन जान सकता है। उनके हृदय में उसके प्रति आकर्षण बढा और स्नेह की भावना का स्फुरण हुआ। उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। उनकी निगाह वापस उसी दृश्य पर चली गई। ज्यो ज्यो वेश्या आगे बढती, लोग उसे मार्ग दे देते किन्तु स्वामी जी ने देखा कि आस पास के लोग पीठ फेरकर खडे हो जाते या चले जाते थे। इसका अर्थ यही था कि वह व्यक्ति इतना पापात्मा दिखाई देता है कि जन-साधारण तक उसका मुह देखना पसन्द नही कर रहा हैं। स्वामी जी की इच्छा उस व्यक्ति के परिचय लेने की हुई। उन्होने अपने शिष्यो को बुला कर यह दृश्य दिखाया और उस व्यक्ति के बारे में जानना चाहा। शिष्यो ने भी उस दृश्य को देख कर अपना मुह फेर लिया और बोले कि वह तो बडा पापात्मा है। उसका नाम लेने का धर्म नही हैं। ऐसे पापात्मा का नाम लेना और मुह देखना घोर पाप है। स्वामी जी की इच्छा उसको जानने की हुई। उन्होंने उसका पता लगाने के लिये हुक्म दिया। एक शिष्य ने हिम्मत कर उसका परिचय दिया। स्वामी जी की जिज्ञासा बढी। उन्होने अपने शिष्य से कहा वह वहा जाकर धनुर्दास को कह दे कि रामानन्द जी ने उसे बुलाया है। यह बात शिष्य को अटपटी लगी किन्तु स्वामीजी की आज्ञा टालने का साहस नही हुआ। अतः वह तैयार हो गया। वह वहाँ पहुँचा और अन्य आदमियो कि तरह धनुर्दास की ओर पीठ कर बोला कि उसको श्री रामानन्द जी बुला रहे हैं। इस समाचार को सुन कर वह स्तब्ध रह गया। उसको उसके कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। उसने सोचा, रामानन्द जी

जैसे महान सन्त उस पापात्मा को क्यो बुलाने लगे। साधारण व्यक्ति भी उसका मुह देखना नही चाहते है फिर रामानन्द जी ने उसे कैसे देखा, और क्यो बुला रहे है। शायद उसे देखकर नाराज हुए हो और उसको डाटने फटकारने के लिये बुलाया हो। सन्त से उसको क्या काम। वेश्या को छोडकर वह जा भी कैसे सकता है। उसने वहाँ नही जाने की सोची। किन्तु प्रभु की इच्छा की अवहेलना कौन कर सकता है ? तत्काल उसके मन में विचार उठे कि यदि वह नही जावेगा तो महान सन्त का अपमान होगा। कैसी विचित्र बात है ? पाप पक में लिप्त धनुर्दास जैसा व्यक्ति स्वामी जी के बारे में कैसे विचार रख रहा था। ऐसी स्थिति में धनुर्दास को पापात्मा कहेंगे या धर्मात्मा, यह निर्णय तो आप ही कर ले।"

धनुर्दास जी ने अपने विचार वेश्या को कहे, इस पर वेश्या ने अपनी स्वीकृति दे दी। दोनो ही स्वामी जी के आश्रम पर पहुचे। वेश्या को तो धनुर्दास ने द्वार के पास ही एक दिवार की ओट में इस तरह खडा कर दिया कि उसका मुह उसे दिखाई देता रहे। वह स्वामी जी के सामने पहुचा। स्वामी जी से प्रणाम कर मुँह फेर खडा हो गया। मुह इसलिये फेर लिया कि अपने कलकित मुह को स्वामी जी को कैसे दिखावे। वह तो भगवान का रूप जो ठहरे। कितने ऊचे भाव थे उस समय उस धनुर्दास के।"

"स्वामीजी उस पर तनिक भी नाराज नही हुए। उन्होंने उसे पुचकारते हुए बडे प्रेम से पूछा कि यह सब क्या है ? एक मिट्टी के शरीर से उसको इतनी ममता कैसे ? यह मिट्टी की पुतली तो नाशवान है। उसको उस अविनाशी से प्रेम करना चाहिये। धनुर्दास ने जवाब दिया कि वह मजबूर है। वह सुन्दरता को चाहता है। वेश्या अत्यधिक सुन्दर है। उसने अब तक वेश्या से अधिक सुन्दर किसी को देखा है नहीं। इसीलिये उसका वेश्या से प्रेम है और यह छोडे छूट नही सकता। वह तो उसको देखे बिना जीवित भी नही रह सकता।"

"स्वामी जी ने उसे पारलौकिक बाते बताकर समझाने की कोशिश की किन्तु सभी व्यर्थ। उसके समझ में तो उनकी एक भी बात नही आयी। कारण उसके रोम रोम में तो वही वेश्या समाई हुई थी। वह वेश्या तो उसका सब कुछ थी। वह तो उसका जीवन

ही थी। उसके बिना तो वह एक क्षण के। दाता सर्व व्यापी है। जैसे त
सकता था। अन्त में स्वामी जी ने उसे कहा कि रह कण कण मे वह व्याप्त
लिये तुम उसको चाहते हो। यदि तुम्हें वेश्या से भी सुन्दर कारण है। भ्रम
बता दी जाय तो क्या करोगे ? धनुर्दास ने थोडी देर के लिये सोचा
और फिर बोला कि यदि आप उसे सुजान से भी अधिक सुन्दर रूप
बता दो तो वह वेश्या को छोड उस रूप मे प्रेम करने लग जावेगा।
स्वामी जी ने संध्या समय उसे आने को कह कर विदा कर दिया।"

"ठीक समय धनुर्दास वेश्या सहित आश्रम में पहुंचा। आरती का समय था। रामानन्द जी भगवान की पूजा में थे। ये दोनो भी वही पहुच गये। आरती हो रही थी। बडी भावमय आरती थी स्वय रामानन्दजी आत्म विभोर होकर प्रभु की आरती उतार रहे थे। धनुर्दास चुपचाप प्रभु की मूर्ति के सामने खडा हो गया। पात्र तो था ही। सन्त रामानन्द जी की महर थी ही। प्रभु कृपा उस पर हो गई। उसने वेश्या से भी अधिक सुन्दर रूप देख लिया और वही प्रभु के चरणो मे लोट गया। उसने अपना जीवन ही सफल नही किया अपितु वेश्या का भी उद्धार कर दिया। सत्य है जिसका सच्चा और नि:स्वार्थ प्रेम होता है, और जिसमे तीव्र लगन होती है वह दाता को प्राप्त कर लेता है। धनुर्दास का प्रेम वासना कामनामय प्रेम तो था नही। उसका प्रेम तो शुद्ध और सात्विक प्रेम था। जो प्रेम आत्मा से किया जाता हैं, वह परमात्मा से हो तो होता है। सच्चे प्रेम में तो सत्य स्वरूप ही है। अत: उसका जो कुछ प्रेम था वह तो उस अविनाशी से ही था। वेश्या तो माध्यम थी।"

"धनुर्दास सा बनकर कोई दाता को देखना चाहे तो देख सकता है। उसको धनुर्दास जैसा बनना पडेगा। धनुर्दास को न तो खाने-पीने की चिन्ता थी और न रहन-सहन की। मान-अपमान को उसने तिलाञ्जलि दे रखी थी। दुनियादारी तक को छोड दिया। वेश्या ही उसके लिये सब कुछ था। वही उसकी पत्नी, माता, पिता, भाई आदि सब कुछ थी। वेश्या में भी तो आप बैठा है अत वही आप प्रकट होकर धनुर्दास को आप रूप बना दिया।"

"दाता देखने की वस्तु तो है नही। वह तो अनुभव करने की वस्तु है।"

समाप्त